



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तकालय



विषय संख्या

पुस्तक संख्या

आगत पञ्चिका संख्या १६९

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान
लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक
समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या

आगत संख्या.....

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

संग्रहाथन् पुस्तकालय-विज्ञान सिरीज, १३

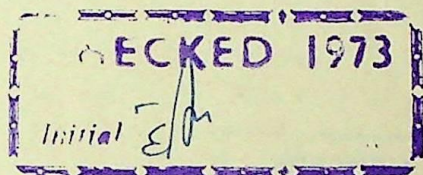
पुस्तकालय-विज्ञान
की
भूमिका

कोशवान् हि सदाचार्यः पंचसूत्रीपरायणः ।
 पुस्तानि पठितुं, तानि सर्वभ्यः, स्वस्वमानुयुः ॥
 पठन्तं समचं तस्य शेषत्, कोशः सदापि च ।
 वर्धमानः स चिन्मूर्तिः पंचसूत्रीं विदन्तिवमाम् ॥

- १ पुस्तकें उपयोग के लिए ।
- २ प्रत्येक पाठक के लिए पुस्तक ।
- ३ प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक ।
- ४ पाठक का समय बचाओ ।
- ५ पुस्तकालय विकासशील संस्था है ।

- 1 Books are for use.
- 2 Every reader his book.
- 3 Every book its reader.
- 4 Save the time of the reader.
- 5 Library is a growing organism

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका



लेखक

एस० आर० रंगनाथन्

अनुवादक

उमेशदत्त शर्मा

86,7



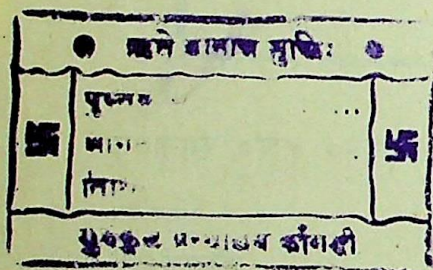
41418



एशिया पब्लिशिंग हाउस

बम्बई • कलकत्ता • नई दिल्ली • मद्रास
लखनऊ • लंदन • न्यूयॉर्क

- ① (१९६३) शारदा रंगनाथन् एण्डोमेंट फॉर लाइब्रेरी साइन्स
 ② (हिन्दी अनुवाद, १९६३) उमेशदत्त शर्मा



२
 नं ६३

भारत में मुद्रित

डी. पी. सिन्हा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी भांसी रोड,
 नई दिल्ली, से मुद्रित और पी. एस. जयसिंघे द्वारा
 एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई १, से प्रकाशित।

प्राक्कथन

इस पुस्तक का प्रयोजन है "बहुजन हिताय।" सन् १९४७ में दिल्ली विश्वविद्यालय में पुस्तकालय-विज्ञान विभाग की स्थापना हुई। इस अवसर पर दिया गया उद्घाटन भाषण ही इसका आधार है। इसी कारण यह पुस्तक सबके लिए लाभप्रद है। इसके व्याख्यानों में "पुस्तकालय-विज्ञान" शीर्षक के दूसरे शब्द "विज्ञान" को प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया है। इसके छठे, सातवें, आठवें तथा नवें व्याख्यान इसी विषय पर दिये गए हैं। अतः पाठकों को मैं यह सम्मति दूंगा कि वे इनके पश्चात् ही पहला व्याख्यान पढ़ें। इधर पुस्तकालय-विज्ञान के छात्रों को दूसरे से पाँचवाँ व्याख्यान भी पढ़ना चाहिए।

यदि पहले और अन्तिम चार व्याख्यानों को समन्वित कर दिया जाय तो हम इसे एक पुस्तकाध्यक्ष का अनुरोध कह सकते हैं। अतएव इन व्याख्यानों में आपको मेरे जीवन की कुछ भाँकियाँ भी मिलेंगी।

गणित पढ़ाने के व्यवसाय से पुस्तकालय व्यवसाय में अचानक ही मेरा आना हुआ। मैंने इस परिवर्तन पर पहले से विचार नहीं किया था। किन्तु अब मुझे यह विश्वास हो गया कि यदि मैं पिछले व्यवसाय में रहता तो सम्भवतः अपना जीवन इतना सार्थक न बना पाता जितना मैं आज बना सका हूँ, और इसका मुझे संतोष भी है। अपने पच्चीस वर्ष के पुस्तकाध्यक्ष जीवन में मैंने अनुभव किया कि जनता में पुस्तकालयों का संतोषजनक विकास हुआ है। आज जीवन में सामान्य ज्ञान की इतनी अधिक आवश्यकता है कि इसकी न तो केवल निरीक्षण और न ही वार्तालाप के द्वारा पूर्ति की जा सकती है। अतः ज्ञान के संगठन और इसकी सहायता से उपयोगी सेवा प्रदान करने के लिए नया तकनीक जानने की आवश्यकता है। आज समस्त संसार में इस तकनीक पर बल दिया जा रहा है, इसे अपनाया जा रहा है और इसका विस्तार किया जा रहा है। यह परम सन्तोष का विषय है कि भारत ने अब अपनी दासता की बोड़ियाँ उतार फेंकी हैं जो शताब्दियों से जकड़ी पड़ी थीं। अब भारत ने चेतना प्राप्त कर ली है और वह समुचित रूप से एक नई दिशा में अग्रसर हो सकता है; और इस दिशा को हम कहेंगे—पुस्तकालय-विज्ञान।

एस० आर० रंगनाथन

अनुवादक का निवेदन

पुस्तकालय-विज्ञान जैसे विषय में हिन्दी की प्रमाणिक पुस्तक प्राप्य न होने के फलस्वरूप प्रस्तुत अनुवाद करने की प्रेरणा हुई।

उक्त विषय की पारिभाषिक शब्दावली की दुरुहता तथा विवादास्पद प्रणाली सर्वविदित है। प्रस्तुत पुस्तक में शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, द्वारा दिये पारिभाषिक शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है और साथ ही कुछ शब्दों के अभाव में निजी अध्ययन, चिंतन एवं मनन से शब्दों का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्याख्यान के पूर्व सामान्यीकरण की पद्धति हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है, जिसे अपनाकर विषय को भलीभांति प्रतिपादित करने की चेष्टा की गई है।

अनुवाद करते समय विषय की महत्ता पर बल देते हुए यह भी ध्यान रखा गया है कि विचारों को हिन्दी भाषा और शैली के अनुरूप रखा जाय तथा मूल रचना की आत्मा अनुवादगत विशेषताओं के साथ समन्वित रहे। इस पुस्तक का प्रथम अंग्रेजी संस्करण १९४८ में प्रकाशित हुआ था। अतएव हिन्दी अनुवाद में कुछ अंश बदल दिये गए हैं, कुछ जोड़ दिये गए हैं तथा कुछ ऐसे अंश हटा भी दिये गए हैं जिनकी आज आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

हिन्दी वाङ्मय में योग देने के लिए पुस्तकालय-विज्ञान की अमर निधि तथा अपने विषय की अनाखी पुस्तक "प्रीफ़ेस टु लाइब्रेरी साइन्स" के अनुवाद की अनुमति देकर पद्मश्री डा. रंगनाथन् ने मुझे प्रोत्साहित किया, इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

आशा है यह पुस्तक छात्र-समाज तथा विज्ञ पाठकों को समान रूप से रुचिकर प्रतीत होगी।

जनवरी, १९६२

उमेशदत्त शर्मा

विषय-सूची

प्राक्कथन	५
अनुवादक का निवेदन	६
१ पुस्तकालय-विज्ञान तथा मूल सिद्धान्त	९
२ पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र : पुस्तकों की ओर से एक दृष्टि	२१
३ पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र : पाठकों की ओर से एक दृष्टि	३३
४ पुस्तकालय-विज्ञान के कार्यक्षेत्र का विस्तार	५५
Ref- ५ पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित विषय	६७
६ पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?	७४
७ पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त	९०
८ पुस्तकालय-विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र	११९
९ पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता	१३७
शब्द-परिचय	१५५
अनुक्रमणिका	१६१

व्याख्यान १

पुस्तकालय-विज्ञान तथा मूल सिद्धान्त

यह व्याख्यान पुस्तकालय-विज्ञान के अध्ययन की प्रेरणा देता है और जीवन के मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डालता है। स्वार्थ, सामूहिक सुख, प्रमोद तथा देशीय धर्म को स्पष्ट करता है, और इनसे आनन्द प्राप्त करने की चर्चा करता है। भारतीय परम्परागत पुरुषार्थों की व्याख्या पुस्तकालय-विज्ञान के आधार पर करता है।

पुरुषार्थ

पुस्तकालय-विज्ञान के डिग्री-कॉर्स में आप लोगों का मेरी ओर से स्वागत है। पुस्तकालय-विज्ञान के लिए आपका साहसिक समर्पण सराहनीय है। साहस इसलिए क्योंकि यह विषय अभी स्थापित हुआ है और इस कारण नवीन है। एक बात में आपको और बता दूँ कि इस विषय को चुन कर आपने कोई भी गलत कदम नहीं उठाया है। मैंने अभी कहा कि पुस्तकालय-विज्ञान एक नवीन विषय है। ऐसा कहने से मेरा तात्पर्य यह है कि इस विषय के मूल सिद्धान्त अभी अपना रूप ले रहे हैं। मैं प्रत्येक संभव मूल सिद्धान्त पर प्रकाश डालना चाहता हूँ और यह भी बताना चाहता हूँ कि वह कब और किस प्रकार प्रकाश में आया।

११. स्वार्थ

वास्तव में किसी भी विषय का अध्ययन स्वार्थवश होता है और स्वार्थ को मापने की एक सामान्य इकाई है, पैसा। इसलिए मैं आपको पुस्तकालय-विज्ञान के आधार पर स्वार्थ का इतिहास पैसे के रूप में बताऊंगा। आरम्भ में पुस्तकाध्यक्ष के कार्य का पैसे के रूप में शायद ही कोई मूल्य था। क्राइस्ट चर्च कालेज, ऑक्सफोर्ड, के पुस्तकालय इतिहास में आप देखेंगे कि पुस्तकाध्यक्ष को शायद ही कोई वेतन

१२]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

- मिलता हो जिसका यहां उल्लेख किया जाय। प्रायः एक विद्यार्थी ही पुस्तकालय का कार्यभार संभालता था। यह अवस्था अन्य कई शैक्षणिक संस्थाओं के पुस्तकालयों की थी। पुस्तकालय को संभालने वाला विद्यार्थी या तो इतना गरीब होता कि इस कार्य के संचालन के लिए जो थोड़ा भी पैसा मिलता, वह उसके लिए बहुत महत्व रखता, या वह ऐसा कोई विद्यार्थी होता जिसमें कोई कार्य करने की अत्यधिक शक्ति होती और वह अतिरिक्त कार्य के द्वारा उस शक्ति का उपयोग करता। पुस्तकालय-विज्ञान के पितामह मैलविल ड्यूवी संभवतः उपरोक्त कारणों से ही अपने विद्यार्थी काल में स्वयं एक पुस्तकाध्यक्ष रहे। अभी कुछ समय पहले मैंने पुस्तकाध्यक्ष पद के लिए एक बड़ा ही मनोरंजक आवेदन-पत्र देखा जिसमें विद्यार्थी काल में विद्यार्थी-पुस्तकाध्यक्ष रहना भी एक योग्यता दिखाई गई थी। कुछ पुस्तकालयों में तो पुस्तकालय-कार्य को ऐसा भी नहीं समझा जाता था कि विद्यार्थी पुस्तकाध्यक्ष को वेतन दिया जाए। अतः कोई भी व्यक्ति अवैतनिक रूप से रख दिया जाता, जिसका अर्थ यह था कि इस कार्य के लिए कोई स्वार्थ निहित नहीं होता। यदि यह कोई कालेज पुस्तकालय होता तो एक व्यस्त अध्यापक को अवैतनिक पुस्तकाध्यक्ष बना दिया जाता और यदि नगरपालिका का पुस्तकालय होता तो कार्य-व्यस्त नगरपालिका के कमिश्नर को पुस्तकालय का अतिरिक्त कार्यभार सौंप दिया जाता। यह सर्वविदित है कि ऐसी स्थिति हमारे देश में अभी तक विद्यमान है। संग्रहालय का अधीक्षक सार्वजनिक पुस्तकालयों का पदेन-पुस्तकाध्यक्ष बन जाता है। हमारे ही देश में इस तरह की प्रणाली अभी तक चली आ रही है, किन्तु पश्चिमी देशों में वैतनिक-पुस्तकाध्यक्षों की परम्परा दो या तीन शताब्दियों पूर्व प्रारम्भ हो चुकी है। हमारे देश में धीरे-धीरे यह अनुभव किया जा रहा है कि पुस्तकाध्यक्षों को भी वेतन दिया जाये। किन्तु उनके वेतन का मान अभी तक बहुत ही निम्न है। मैं आशा करता हूँ कि इस माह से जिस युग का सूत्रपात हमने किया है, उसमें इस प्रकार की रूढ़िवादी विचारधारा समाप्त हो जाएगी और जब आप अपने व्यवसाय में कदम रखेंगे तब आप पाएंगे कि पुस्तकालय-विज्ञान भी पैसे के रूप में आपके स्वार्थ की सिद्धि उसी प्रकार कर सकेगा जिस प्रकार अन्य व्यवसाय करते हैं।

१२. सामूहिक सुख

स्वार्थ के अतिरिक्त पुस्तकालय-विज्ञान सामूहिक सुख भी प्रदान कर सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से पुस्तकाध्यक्ष को वेतन देना तभी प्रारम्भ हुआ जब यह

अनुभव कर लिया गया कि पुस्तकाध्यक्ष उच्च पुस्तकालय-विज्ञान के सांचे में ढले हैं और वे सामूहिक सुख भी प्रदान कर सकते हैं। यह अनुभव उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व हुआ। इसके साथ ही एक अत्यन्त रोचक घटना घटी है। इस कहानी को जानने के लिए आप मेरे साथ कल्पना में उन्नीसवीं शताब्दी पूर्व ग्लासगो में पहुँच जाइए। उस पुराने समय में ग्लासगो में कोई विश्वविद्यालय नहीं था। केवल एक ही कालेज था। कालेज में एक विज्ञान का ग्रंथगुप्त नवयुवक अधिकारी वर्ग में था जिसका नाम बर्कबैंक था। उस समय विज्ञान के पाठों को रटने की आवश्यकता पड़ती थी। आप लोग यह आश्चर्य करेंगे कि जहाँ आपको प्रयोगशाला-कार्य करना पड़ता है वहाँ यह सब कैसे संभव हो सकता है? दिल्ली और अन्य स्थानों में, मुझे ठीक-ठीक मालूम है कि आपकी प्रायोगिक-विज्ञान की परीक्षा भी ली जाती है। किन्तु बर्कबैंक के दिनों में विद्यार्थियों के लिए कोई भी प्रायोगिक कार्य नहीं था। यहाँ तक कि अध्यापकों द्वारा प्रयोगात्मक प्रदर्शन भी नहीं होता था। तरुण बर्कबैंक ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। वह चाहता था कि कम से कम कुछ प्रयोगात्मक परीक्षण तो होने ही चाहिए। इस कार्य को करने के लिए उसे हर प्रकार के परीक्षण-यंत्र, छोटे से बड़े तक, का डिजाइन बनाना पड़ा। किन्तु कारीगर उसे ठीक प्रकार बना नहीं सके। अनुसंधान करने पर उसे ज्ञात हुआ कि उनका विज्ञान के तत्वों का वह प्रारंभिक ज्ञान ही अपरिपक्व है, जिस पर उनकी अपनी कला आधारित है। जो कुछ उन्होंने रटा था वही रटूँ ताते की तरह उगल सकते थे। और इसीलिए वह उनको विज्ञान के तत्व बताना चाहता था। खैर, मैं उस कहानी को विस्तार नहीं बताऊंगा। केवल इतना की कहना पर्याप्त है कि ग्लासगो-कारीगर-समाज में शीघ्र ही इस ज्ञान की परिपक्वता आ गई और अत्यधिक संख्या में लोग बर्कबैंक की कक्षाओं में आने लगे। ग्लासगो-कारीगर-जगत के इस सामाजिक उत्थान का समाचार लन्दन पहुँचा। वहीं एक अन्य नवयुवक लार्ड ब्राहम भी इसी विचारधारा से सहमत था। दोनों ने संयुक्त प्रयास करने के लिए कदम उठाया और प्रसिद्ध संस्था "सोसायटी फॉर द डिफ्यूजन ऑफ यूजफुल नालेज" स्थापित की। इस संस्था की कई प्रसिद्ध पुस्तकें प्रकाश में आईं जिन्हें पुस्तकालयों के रूप में संगठित किया गया और इन पुस्तकालयों की सेवा का उपयोग उत्सुक कारीगरों द्वारा किया जाने लगा। इस नवीन प्रणाली को अनेक नगरों ने अपनाया। इस प्रयोग द्वारा सामाजिक उत्थान में इतना विकास हुआ कि एक पुस्तकालय-अधिनियम पास किया गया और तभी से वैज्ञानिक-पुस्तकालय व्यवसाय का संगठन हुआ। हमारे अपने देश में इस प्रकार के उत्थान का अभी आरम्भ ही है। हमारे समाज में जो परिवर्तन इस काल में आये हैं वे निस्सन्देह हमारे प्रति-

- ० निनिधित्व में उत्थान लाएंगे। हो सकता है, हमारे नेता वर्तमान समस्याओं में इतने व्यस्त हों कि वे उन सिद्धान्तों पर ध्यान नहीं दे पाते जो विकासशील और स्थायी सामाजिक उत्थान को शक्तिशाली बना सकते हैं। मैं यह मानने के लिए तैयार हूँ कि वे पेचीदी समस्याओं द्वारा इतने व्यग्र हैं कि शीघ्र समाधान चाहते हैं, चाहे वह अस्थायी ही क्यों न हो। किन्तु ऐसा सदा नहीं रहेगा। उन्हें शीघ्र ही सचेत होना पड़ेगा। मुझे आशा है कि विनाशकारी दुर्घटना के पूर्व ही ये लोग चेत जावेंगे। उदाहरण के लिए अन्न समस्या को ही ले लीजिए। अन्न का आयात एक स्थायी समाधान नहीं हो सकता। कृषि के नवीन वैज्ञानिक प्रयोग ही केवल स्थायी समाधान उत्पन्न कर सकते हैं। समृद्ध खेती के लिए हमारे किसानों की तैयारी तब तक पूर्ण नहीं होगी जब तक उन्हें कृषि के विषय पर निरन्तर ताजी सूचनायें नहीं मिलतीं। जब तक हमारे पुस्तकालय उचित ढंग के नहीं होंगे उन्हें ताजी सूचनायें भी नहीं मिल सकतीं। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय भी तब तक ठीक प्रकार के नहीं हो सकते जब तक वे पुस्तकालय-विज्ञान में विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा न चलाये जायें।

हम अपनी वस्त्र-समस्या को ही ले सकते हैं। सूत और कपड़े की कमी स्थायी रूप से नहीं हटाई जा सकती, और न ही हमारा समाज पश्चिम से पूर्व में जहाज पर लाद कर लाये गए कपड़े मात्र पर पूर्णतया निर्भर रह सकता है। हमारे समाज को सुयोग्य जुलाहे और कातने वाले उद्योगशील व्यक्ति उत्पन्न करने चाहिए। इसके लिए नए तरीकों द्वारा निरन्तर प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी और इन तरीकों को भी लगातार विकसित करना होगा। इसका अर्थ हुआ कि हमें ऐसे पुस्तकालयों की आवश्यकता होगी जो योग्य तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा सुचारु रूप से चलाये जा सकें। यदि आप किसी देश के सामाजिक उत्थान का इतिहास उठा कर देखें तो आप पायेंगे कि पुस्तकालयों का उसकी उन्नति में बड़ा योगदान रहा है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राष्ट्र अमरीका में एक वार्षिक-पुस्तक अनिश्चित कालान्तर पर निकलती है जिसमें दो हजार से ऊपर औद्योगिक संस्थाओं के नाम रहते हैं। उनमें से कई संस्थाएं यह प्रगट करती हैं कि उनके यहां कितना औद्योगिक अनुसंधान हुआ है। इसमें यह भी चर्चा रहती है कि अमुक अनुसंधान में अमुक व्यावसायिक-पुस्तकालय का इतना हाथ रहा है। मैं कहता हूँ स्वतंत्र भारत ऐसे पुस्तकालयों की संस्थापना में अधिक देर नहीं कर सकता जिनकी देश में तुरन्त आवश्यकता है और जो आप जैसे योग्य व्यक्तियों द्वारा चलाये जा सकें, जिन्हें कम से कम दो वर्षों का पुस्तकालय-विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त हो। भारत सार्वजनिक पुस्तकालयों के बिना कोई उन्नति नहीं कर सकता। जब भारत इस

बात का अनुभव करेगा — और करेगा अवश्य — कि उसका सामाजिक उत्थान पुस्तकालय और पुस्तकालय-विज्ञान की सेवा के बिना संभव नहीं तो उसके नेता दिल्ली विश्वविद्यालय के दूरदर्शितापूर्ण कदम की सराहना करेंगे और सर मॉरिस ग्वायर के उदार अनुरोध की इसलिये प्रशंसा करेंगे क्योंकि उन्होंने विश्वविद्यालय को पुस्तकालय-विज्ञान में डिग्री-कोर्स स्थापित करने की सम्मति दी। यदि सरकार ने पुस्तकालय-विज्ञान की आवश्यकता पर ध्यान दिया होता तो वह ही ऐसा करती। किन्तु अब तो सारा श्रेय दिल्ली विश्वविद्यालय तथा सर मॉरिस ग्वायर को ही है जिन्होंने बिना सरकारी सहायता के ही ऐसा कर दिखाया। सरकार को यह अवश्य सांकेतिक चाहिए था कि पुस्तकालय-विज्ञान यदि अधिक नहीं तो कम से कम राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक है — सामूहिक सुख के लिए तो है ही।

१३. प्रमोद

अब मैं तीसरे उद्देश्य पर आता हूँ जिसकी पूर्ति पुस्तकालय-विज्ञान ही कर सकता है। यह पूर्ति व्यक्ति के बौद्धिक विकास के लिए किस प्रकार के रचनात्मक कार्य द्वारा होती है? पैसा, और पैसे से जो भी प्राप्त हो सकता है वह ऐसी प्रसन्नता लाता है जो केवल क्षणिक एवं अस्थायी होती है और वह प्रसन्नता उन्हीं वस्तुओं के साथ समाप्त हो जाती है जो प्रसन्नता लाती हैं। केवल रचनात्मक कार्य ही स्थायी प्रसन्नता ला सकता है, और यही प्रमोद है। रचनात्मक कार्य द्वारा किसी व्यक्ति में बुद्धि की पूर्णता या तो स्वीय धर्म द्वारा अथवा अपने प्रति दिशिष्ट कर्तव्य द्वारा ही प्राप्त होती है। मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि पुस्तकालय-विज्ञान भी आपको इतने ही अवसर देगा जितना अन्य कोई विषय आपके जीवन के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने पर देगा। मुझे आशा है कि दो वर्ष समाप्त होने से पूर्व ही आपको यह आभास होने लगेगा। मैं यह नहीं कहता कि कार्यक्षमता प्रत्येक विद्यार्थी में स्पष्ट रूप से प्रगट होगी। ऐसा किसी भी विषय में नहीं होता। ऐसी सम्भावना प्रत्येक विषय में कम ही रहती है। यदि आप संख्या में अधिक होते तो मैं यह मानने को तैयार हो जाता कि आप में से कुछ पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण के तीसरे उद्देश्य के समीप हैं। किन्तु आप थोड़ी संख्या में हैं। अतएव सम्भावना भी कम ही है, किन्तु आशा अवश्य है।

१४. देशीय-धर्म

तीसरे उद्देश्य की भांति चौथा उद्देश्य भी है जिसे हम देशीय धर्म कह सकते हैं, अर्थात् किसी भी राष्ट्र का वह धर्म जिसके कारण वह विश्व के ज्ञान एवं कल्याण

में असाधारण योगदान देता है। अवश्य ही यह पीढ़ियाँ से आ रहे प्रत्येक नागरिक के निजी धर्म का सम्मिलित परिणाम है। किन्तु एक विशिष्ट क्षेत्र में एक राष्ट्र बढ़ा-चढ़ा हो सकता है, और अपना वास्तविक योगदान दे कर अपना धर्म भी निभा सकता है। आइये! इसके लिए हम अणु-विस्फोट का उदाहरण लें। कुछ वर्षों से इसके बारे में यह धारणा थी कि अणु टूट भी सकता है और जो शक्ति उससे निकलेगी वह बहुत अधिक होगी। उदाहरणार्थ, अणु को तोड़ने के फलस्वरूप दिल्ली को सम्भवतः कई वर्षों तक विद्युत-शक्ति मिलती रहे। सामाजिक दृष्टिकोण से इस प्रकार का कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि, संभव है भविष्य में मनुष्य को कोयले की खान अथवा गंदे पेट्रोल के कुओं में धरती को तोड़ कर जाने की अमानुषिक क्रिया न करनी पड़े। यह सत्य है कि नैतिक और आध्यात्मिक अपरिपक्वता के कारण जो राष्ट्र अणु-विस्फोट में सफल हुए उनके द्वारा पहले-पहल इस शक्ति का राक्षसी नरसंहार में ही दुरुपयोग हुआ। किन्तु यह अवस्था शीघ्र ही ठीक रास्ते पर आ जायगी। अणु-विस्फोट की सम्भावना एक पीढ़ी पूर्व ही गणित के आधार पर स्थापित हो चुकी थी, किन्तु इंजीनियरिंग द्वारा कार्य रूप पाना बहुत आवश्यक था। यह आश्चर्यजनक सफलता शायद संयुक्त राज्य अमरीका पर छोड़ दी गई थी और इसी कारण संसार उसका चिर ऋणी हो गया। इस प्रकार अमरीकी राष्ट्र ने इस नवीन क्षेत्र को जन्म देकर अपने देशीय धर्म का पूर्ण रूप से पालन किया है।

भारत ने बहुत पहले ही कई क्षेत्रों में अपने देशीय धर्म का पालन किया है। गणित के क्षेत्र में भारत ने ऐसे अंकों को जन्म दिया जो अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग में आये, जैसे शून्य तथा निषेधांक। पाणिनि की व्याकरण प्रणाली अब तक एक आदर्श बनी हुई है। आत्मतत्त्व-विज्ञान एवं तांत्रिक क्रियाओं के अनुभवों के भारतीय योगदान तो विख्यात ही हैं।

हमारे अपने समय में महात्मा गांधी के द्वारा भारत में इसी प्रकार के एक नवीन राजनीतिक तकनीक का जन्म हुआ। इन्हीं के समकालीन इंग्लैंड और जर्मनी की सफलतायें क्रमानुसार डार्विन और आइन्स्टाइन जैसे व्यक्तित्वों द्वारा हुईं। विकासवाद और सापेक्षवाद के सिद्धान्त आज के अधिकांश विचारकों के मस्तिष्क में घर कर गए हैं।

इसी प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संयुक्त राज्य अमरीका भी, मैल्बल ह्यूवी (जो पुस्तकाध्यक्षता के पिता थे) तथा उनके अनुभवी सहयोगियों द्वारा, एक अन्य क्षेत्र की उद्देश्यपूर्ति की ओर अग्रसर हुआ। यही पुस्तकालय-विज्ञान का क्षेत्र है। अब समय आ गया है कि मानवता के नाते हम इस क्षेत्र में एक ऊँचा और

लम्बा कदम उठायें। कौन जानता है कि पुस्तकालय-विज्ञान का यह स्कूल जिसके आप लोग ही पहले सदस्य हैं, सहसा ऐसा प्रतिनिधि बन जाय जिसके द्वारा भारत एक ऊंची छलंग मार सके और इसके साथ ही इस क्षेत्र में भारत का उद्देश्य भी पूर्ण हो जाय ? इस विषय में मेरा यह विश्वास है कि यह विश्वविद्यालय इस विभाग को यह आज्ञा दे सकेगा कि कोई भी छात्र पुस्तकालय-विज्ञान के विषय में अनुसन्धान कर सके और डाक्टरेट भी प्राप्त कर सके।

पुस्तकालय-विज्ञान एक अन्य रूप से भी प्रकाश में आता है। चाहे एक राष्ट्र अपना उद्देश्य पूरा करने के लिये पुस्तकालय-विज्ञान को अधिक शक्तिशाली बनाये या न बनाये, अथवा वह किसी भी ज्ञान क्षेत्र में अपना लक्ष्य रखे या न रखे, किन्तु उस राष्ट्र की उद्देश्य-पूर्ति उसकी लम्बी घटनामालाओं, उसके व्यक्तित्वों तथा उसकी संस्थाओं पर ही निर्भर होगी। इसके अतिरिक्त उसकी एक महत्वपूर्ण कड़ी वहाँ की पुस्तकालय प्रणाली भी होनी चाहिये। इसलिए पुस्तकालय-विज्ञान अप्रत्यक्षरूप से प्रत्येक राष्ट्र के देशीय-धर्म के पालन में आवश्यक योगदान देता रहेगा।

१५. आनन्द

अब मैं पांचवें और उस अन्तिम उद्देश्य पर आता हूँ। इसकी पूर्ति के लिये पुस्तकालय-विज्ञान का अनुसरण किया जा सकता है। यह उद्देश्य क्षणिक प्रसन्नता अथवा सुख की प्राप्ति की भाँति नहीं है, न ही यह अल्प समय तक स्थिर रहने वाला या नाशवान् प्रमाद है। इसके विपरीत यह वह आनन्द है जो नाशवान् नहीं वरन् नित्य है, और नित्य आनन्द प्रत्येक जीव का अधिकार है।

यह आनन्द अनित्य तत्त्वों में छिपा हुआ है। इस कारण आनन्द प्राप्ति का अर्थ बहुत ऊँचा उठना अथवा कठिनाइयों को पार करना है। आनन्द के प्रतिपादन के लिए बहुधा एक तकनीकी का उपयोग होता है, जो लीन होना अथवा "लय" है, और "लय" किसी भी विषय पर चिन्तन करने से ही प्राप्त होता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि संसार में पुस्तकालय-विज्ञान के अतिरिक्त "लय" के उपयुक्त कोई अन्य विषय नहीं जो जीविका को बन्धन-मुक्त करके आनन्द प्राप्त करा सके तथा आत्मविमोचन अथवा मोक्ष प्राप्त करा सके।

१६. भारतीय परम्परा

आप में से जो भी भारतीय परम्परा से परिचित हैं उन्होंने देखा होगा कि मेरे विचार एक जाने-पहचाने पथ पर बढ़ रहे हैं। यह पथ पुरुषार्थ का है, जीवन के

१७]

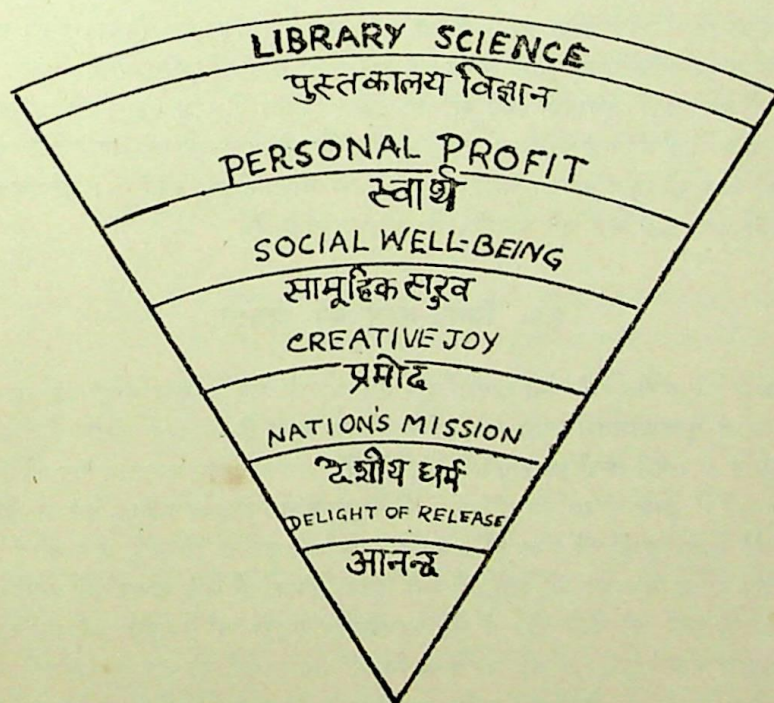
पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

मूल सिद्धान्त अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का है। मैंने बताया कि पहला उद्देश्य अर्थ (धन) के वर्ग में आता है। मैं आपको यह भी बता चुका हूँ कि भारत ने भी पुस्तकालय-विज्ञान में पर्याप्त धन लगाना प्रारम्भ कर दिया है। मुझे विश्वास है कि आपमें से जो कोई भी निष्ठापूर्वक इस विषय में अनुराग उत्पन्न करेगा वह इस लाभ से वंचित नहीं रह सकेगा। सामूहिक सुख काम के वर्ग में आता है। मैं आपको यह भी बता चुका हूँ कि हमारी जन्म-भूमि भारत को पुस्तकालय-विज्ञान की कितनी आवश्यकता है। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप पहले लाभ की प्राप्ति पर ही संतुष्ट न हो जायें वरन् दूसरे लाभ के लिए भी कार्य करते रहें। तीसरा और चौथा उद्देश्य धर्म अर्थात् रचनात्मक कार्य के वर्ग में आता है जिसका सहगामी है प्रमोद। कोई भी यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि आपमें से कौन यह लाभ उठायेगा मेरी यह इच्छा है कि कम से कम आप में से कुछ तो यह लाभ अवश्य ही उठायें। पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण का पाँचवां उद्देश्य मोक्ष से सम्बन्धित है जिसका सहगामी आनन्द है। आपके लिये यह एक आश्चर्य की बात होगी कि क्या मोक्ष भी कभी पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण से प्राप्त किया जा सकता है? मुझे कोई सन्देह नहीं। मैं एक पक्का आशावादी हूँ। मेरा विश्वास और मेरी धारणा यह है कि पुस्तकालय-विज्ञान में अटूट श्रद्धा रखने के फलस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है अर्थात् कोई भी चिर आनन्द प्राप्त कर सकता है।

१७. पुस्तकालय-विज्ञान सभी उद्देश्यों को एक ही समय में समानता से विस्तृत कर सकता है

मुझे नये चेहरों में सन्देह की झलक दिखाई देती है। मैंने किसी को यह फुस-फुसाते सुना है कि क्या मैं पुस्तकालय-विज्ञान के डिग्री-कोर्स में एकान्तवासी, फकीर या सन्यासी बनने आया हूँ? मैं यह भलीभाँति समझता हूँ कि मेरी इस पहली बात का भय आपको दूर ले जा रहा होगा, क्योंकि उसमें मोक्ष की चर्चा आ गई। आप ऐसी भूल न कीजिए। इन पाँचों उद्देश्यों का परस्पर विरोध नहीं वरन् इनमें सह-अस्तित्व है। चाहे आप यह स्वीकार करें या न करें। इनमें से किसी एक उद्देश्य पर दृष्टि डालने का अर्थ यह नहीं कि आप दूसरे किसी उद्देश्य से दृष्टि फेर लें। आप इन सभी उद्देश्यों को अपने सामने रखते हुए समान रूप से इन्हें प्राप्त करने की अभिलाषा कर सकते हैं। यदि आप ज्यामिति की परिभाषा तथा ज्यामिति के निरूपण से घबराते नहीं तो मैं आपको एक मानचित्र दिखाऊंगा जो आपके सामने इस तथ्य की वास्तविकता प्रकट कर देगा। बचपन में आपने ज्यामिति

में वृत्त तो पड़ा ही होगा। आपने इसके एक वृत्तखण्ड के केन्द्र पर बने कोण को भी देखा होगा। इसमें विभिन्न एकीन्द्रक वृत्तों के वृत्तखण्ड एक ही बिन्दु से उसी कोण में समान रूप से विस्तृत किये जा सकते हैं। यदि इनका केन्द्र एक ही हो तो ये वृत्त अपने-आप में पूर्ण होंगे। इस पृष्ठ पर दिये गए मानचित्र को देखिये। पुस्तकालय-विज्ञान एक कोण है और यह पूरे पाँचों उद्देश्यों को विस्तृत करने में समर्थ है—और विस्तृत करता भी है, जैसा कि मानचित्र में दिखाया गया है। इसके पाँचवें उद्देश्य के विस्तार के कारण पहले उद्देश्य के विस्तार में कोई बाधा नहीं पड़ती, और यही बात इसके विपरीत क्रम में भी है। यह मानचित्र इस तथ्य का निरूपण करता है कि आप निष्ठापूर्वक मनोयोग एवं बुद्धिमत्ता से पुस्तकालय-विज्ञान का अध्ययन कर के संसार की सभी वस्तुएं क्रम से प्राप्त कर सकते हैं, यथा: सामाजिक पुनर्निर्माण की कीर्ति, प्रमाद, समस्त राष्ट्र के निर्माण में निजी योगदान का यश तथा आन्तरिक सुख की अनुभूति।



१९]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

१८. विषय की शक्ति का अज्ञान

क्या आपके विचार में मैंने पुस्तकालय-विज्ञान का गुणगान बड़े ऊँचे स्वर में किया है ? सम्भवतः आप यही सोचते होंगे। किन्तु इस अवस्था में आपको मैं किसी भी रूप में दोषी नहीं ठहरा सकता। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप सहज में ही विश्वास कर लें। आप कम से कम पहले और दूसरे उद्देश्यों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करें और शेष तीन उद्देश्यों पर अपना निर्णय डिग्री कोर्स को पूर्ण करने के बाद में दे सकते हैं। मैं कह चुका हूँ कि मैं आपको दोषी नहीं ठहराता, क्योंकि मुझे अपने अनुभव द्वारा यह ज्ञान हो गया है कि क्यावृद्ध यहां तक कि अधिक शिक्षित लोग भी इन उद्देश्यों से सर्वथा अपरिचित हैं। लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व जब मेरी श्रद्धा पुस्तकालय-विज्ञान के प्रति उमड़ी तब दो शिक्षित एवं प्रौढ़ सज्जनों को मेरी दशा पर दया आई। उनमें से एक सज्जन तो उस कालेज के प्राध्यापक थे जिसमें मैं पढ़ाता था और दूसरे उस कालेज में जिसमें मैं पढ़ता था। दोनों ही मेरे शुभचिन्तक थे। यह उनका स्नेह ही था जो उन्होंने मुझे पुस्तकालय-विज्ञान की वेदी पर पूजा करते देख शोक प्रगट किया और उसका बहिष्कार किया। ऐसा इस कारण था क्योंकि उस पुराने समय में भारत में कोई भी पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र में इन चारों पुरुषार्थों की शक्ति अर्थात् जीवन के मूल सिद्धान्तों को नहीं जान पाया था। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैं भी समानरूप से अपरिचित था। मैं भी आप में से कुछ की भाँति सहज में ही विश्वास कर लेता था। मेरे विचार में यही तथ्य मेरी बात की प्रामाणिकता को बल देता है।

१९. विषय-वस्तु का अज्ञान

मैं आपको एक चेतावनी देना चाहता हूँ। जब आपके मित्र और सम्बन्धी यह जानेंगे कि आपने पुस्तकालय-विज्ञान को अपना विषय चुना है तो आप देखेंगे कि क्रोध के कारण वे अपने कन्धे इधर-उधर मोड़ेंगे और उनकी उपेक्षायुक्त दृष्टि भी आप पर पड़ेगी। आज से २० वर्ष पूर्व जब मैंने पुस्तकालय-विज्ञान पढ़ाना आरम्भ किया तब मेरे विद्यार्थियों को ऐसा ही अनुभव हुआ था। इतना ही नहीं, उन लोगों की कुटिल दृष्टि मुझ पर भी पड़ी। वे मेरी तुलना ईसप की उस लोमड़ी से करने लगे जो अपनी पूँछ खा बैठी थी। वे मेरे पुस्तकालय-स्कूल की स्थापना को मेरे स्वार्थ का कारण बताने लगे। वे यह कहते थे कि मैं नवयुवकों को फंसाकर उनकी पूँछ भी खोना चाहता हूँ, जिससे मेरा अपना भोंडापन छिप जाय। कोई कोई माता-पिता

पुस्तकालय-विज्ञान तथा मूल सिद्धान्त

[१९]

तो अपने बच्चों को मरे पुस्तकालय-विज्ञान के स्कूल में भेजने में निषेध मानते थे। यदि कोई विद्यार्थी उनकी बात पर ध्यान नहीं देता और स्कूल में प्रवेश पाने पर अड़ा रहता, और उसका पिता क्रूर होता तो वह उसे छोड़ ही देता अथवा उसका भरण-पोषण करना बन्द कर देता। यदि वह एक भला पिता होता तो वह कम से कम यह तो कहा ही करता, "मैं तब तक तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता जब तक कि तुम उस संगति को छोड़ नहीं देते।"

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि विश्वविद्यालय के वे कई महाशय, जो पुराने जमे हुए विषयों के मुख्याध्यापक थे, पुस्तकालय-विज्ञान को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में लाने का विरोध करते थे। कुछ तो इस विचार का उपहास करते और कुछ एक टन पुस्तकें शैल्फों में ही बन्द रखना चाहते थे। किन्तु वे पुस्तकालय-विज्ञान के अध्यापक की गिनती अपने समुदाय में नहीं होने देना चाहते थे। वास्तव में वे पुस्तकालय-विज्ञान के अध्यापक को पुस्तकालय की पुस्तकों से भी नीचा समझते थे। यही उनके पुस्तकालय-विज्ञान के मूल्य का मापदण्ड था। यह सब इस कारण हुआ क्योंकि ये लोग पुस्तकालय-विज्ञान के विषय से अनभिज्ञ थे, कम से कम इसके सांस्कृतिक मूल्यों के अनुशासन से तो थे ही। किन्तु दिल्ली में मैंने पर्याप्त उन्नति पाई। मुझे यह इसीलिये कहना पड़ा क्योंकि मैंने मात्रा-पिता, पतियों, तथा नवयुवक और नवयुवतियों को श्री दासगुप्ता के पास पुस्तकालय-विज्ञान की डिग्री कक्षा में स्थान लेने के लिए व्यक्तिगत रूप से आते देखा है। मैं कह नहीं सकता कि इस विश्वविद्यालय में पुस्तकालय-विज्ञान को अन्य गम्भीर विषयों के समक्ष रखने में कितनी सावधानी से काम लिया गया होगा।

बड़े व्यक्तियों में विचारों के परिवर्तन का चाहे कुछ भी कारण हो, किन्तु यह मरे लिए उचित है कि मैं आपके सामने वे वास्तविक और तथ्यपूर्ण तत्व रखूँ जिनके आधार पर पुस्तकालय-विज्ञान अनुसरण योग्य माना जा सकता है। मैं आपको उसके साधारण चित्र की रूप रेखा दिखला सकता हूँ। इसे पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र का केवल एक विहंगम दृश्य ही कहना चाहिए। सम्भवतः मैंने आज आपको उसका एक दृश्य बहुत ऊँचाई से दिखा भी दिया है — अथवा यों कहिये तहाँ के ऊपर से। दूसरे व्याख्यान में यह विहंगम दृश्य मैं आपको थोड़ा पास से दिखाऊंगा जिससे विस्तार देखा जा सके। मैं तो आपसे यह कहूँगा कि आप आज रात इस पाठ्य-क्रम को देखें, जो आपको अभी-अभी वितरित किया गया है। यह पाठ्य-क्रम आपको इस क्षेत्र का अणु-रूप में ज्ञान करायेगा। पाठ्य-क्रम एक ऐसे विधिपत्र के समान है जो नियम लागू करने के काम आता है। इसके

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

[१९]

द्वारा पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र को कई भागों में विभक्त किया गया है तथा इनका आपसी सम्बन्ध भी रखा गया है। मैं अगले व्याख्यान में आपको पाठ्य-क्रम पूर्णरूप से बताऊंगा और यह भी स्पष्ट करूंगा कि भिन्न-भिन्न विस्तार जो एक दूसरे से पृथक दिखाई देते हैं, वे कैसे एक ही विचार केन्द्र से प्रवाहित होते हैं। ये विस्तार ही पुस्तकालय-विज्ञान की आत्मा हैं।

व्याख्यान २

पुस्तकालय-विज्ञान

का कार्यक्षेत्र

इस व्याख्यान में पुस्तकों का मानवीकरण करते हुए पुस्तकालय-भवन, साज-सामान तथा फर्नीचर पर विचार किया गया है। पुस्तकालयों में पुस्तकों के उपयोग करने के पूर्व का कार्य यथा : पुस्तक-चुनाव, पुस्तक-आदेश, पत्रिका-कार्य, क्रम-करण, पुस्तकों की तैयारी, पुस्तकालय-सूची, वर्गीकरण, प्रसार एवं प्रचार-कार्य, संदर्भ-सेवा, शैल्फ-कार्य, इत्यादि— इनका विशद वर्णन किया गया है।

पुस्तकों की ओर से एक दृष्टि

पहले व्याख्यान में, आपके लिए जीवन के मूल सिद्धान्तों की ऊँचाई से मैंने पुस्तकालय-विज्ञान का एक विहंगम दृश्य प्रस्तुत किया था। इतनी ऊँचाई के कारण हमारे लिये किसी प्रकार की विवेचना करना संभव नहीं हो सका। वस्तुतः जो कुछ भी प्राप्त हो सका वह था उन मूल सिद्धान्तों का आभास मात्र। विषय का विस्तार जानने के लिये कार्यक्षेत्र में हमारा अधिक से अधिक निकट पहुँचना आवश्यक है। क्या आपने कभी किसी विशाल नगरी को बहुत दूर से देखा है, और क्या कभी अपने विचारों को उस क्रम पर कोन्द्रित किया है जिसके अनुसार उसकी वस्तुएं विस्तृत रूप में सामने आती हैं ?

इस यथार्थ चित्र को देखने के लिए हमें अपने आदि कवि तक पहुँच कर उनकी कृति रामायण के पृष्ठों को उलटना होगा। रामायण के सुन्दर कांड में जिस समय लंका की ओर आते हुए हनुमान का वर्णन किया गया है वहाँ कवि ने लंका के विस्तार का क्रमानुसार चित्रण किया है। बहुत दूरी से धुंधला सा किन्तु एक सुन्दर भूमिखण्ड दृष्टिगोचर होता है। दूर से यह प्रतीत होता है कि इसमें लोग बसते हैं। कल जो पुस्तकालय-विज्ञान का दृश्य मैंने आपके सामने प्रस्तुत

२१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

किया वह हनुमान के लंका की ओर आने के समान था। हनुमान ज्यों-ज्यों उस नगरी के समीप आते गए वहाँ के भवन, मीनारें, पर्वत श्रृंखलाएँ, घाटियाँ तथा जल एवं स्थल से बनी नगरी दृष्टि में आने लगी किन्तु अभी इस नगरी का विस्तार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं हो सका। सभी वस्तुएँ केवल तितर-बितर ही दिखाई देती थीं। यह लंका के प्राकृतिक-भूगोल का केवल अधूरा सा चित्र था। वहाँ का मानवीय-भूगोल अभी दृष्टि में नहीं आ सका। फिर वहाँ के लोगों की गतिविधियों का अनुमान होता ही कैसे? कल का व्याख्यान भी पुस्तकालय-विज्ञान का अधूरा सा चित्र प्रस्तुत करता है। कल जो मीने आपसे पाठ्य-क्रम देखने को कहा था उसमें आपको पुस्तकालय-विज्ञान का इसी प्रकार का अधूरा चित्र दिखाई दिया होगा। आगे चलकर कवि हनुमान को लंका के मार्गों पर ले जाता है और सुन्दर-सुन्दर प्रासाद और बाग-बगीचों में घुमा कर बड़े ध्यान से उन्हें लंका नगरी देखने का अवसर देता है। जैसे-जैसे वे समीप आते हैं, सभी वस्तुएँ विस्तार से देख पाते हैं। उदाहरण के लिए, हनुमान का ध्यान लक्ष्मी की एक विशाल प्रतिमा पर जाता है। जैसे ही वे उसके समीप पहुँचते हैं, पहले उन्हें लक्ष्मी की प्रतिमा के दो हाथ दिखाई देते हैं। जैसे-जैसे वे उस प्रतिमा के और समीप आते हैं, उन्हें लक्ष्मी के हाथ में केवल खिले कमल ही दिखाई देते हैं। ऐसी ही सूक्ष्म व्याख्याओं का आनन्द आप अगले दो वर्षों में होने वाले अनेक व्याख्यानों में उठावेंगे। किन्तु आज मैं पहले अनुसंधान को बहुत हल्के रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। अभी आपको पुस्तकालय-विज्ञान के अधिक विस्तार में जानने की आवश्यकता नहीं आइये। अब हम एक बड़े पुस्तकालय के भीतर जाकर घूमें।

२१. पुस्तकालय-भवन, साज-सामान एवं फर्नीचर

अच्छा बताइये। पुस्तकालय में प्रवेश करते ही आपकी दृष्टि सबसे पहले कहाँ जाती है? निश्चित है कि भवन पर ही आपका ध्यान सबसे पहले जायेगा। प्रत्येक पुस्तकालय का एक आकर्षक, सुन्दर एवं मनोहर भवन होना चाहिए। जैसे ही आप पुस्तकालय में प्रवेश करते हैं आपकी दृष्टि लेन-देन विभाग, आकर्षक शोल्फ, और चमकती हुई मोज-कुर्सियों पर पड़ती है। पुस्तकालय का साज-सामान व फर्नीचर इस प्रकार सजे हों जिन्हें देखते ही हमारा चित्त प्रसन्न हो जाय और उनका आकर्षण पुस्तकालय में बैठ कर कुछ उपयोगी कार्य करने को आमंत्रित करे। अतः पुस्तकालय-विज्ञान की एक शाखा है "पुस्तकालय-भवन, साज-सामान और उसका फर्नीचर (उपकरण)।"

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[२४१]

अब हमारा ध्यान उन पाठकों के समूह पर जाता है जिनके हाथों में पुस्तकें हैं। दूसरी ओर शैल्फों में रखी असंख्य पुस्तकों की जिज्ञासु दृष्टि पाठकों का स्पर्श पाने की इच्छुक है, जिन्हें पाठक निकाल कर उनके साथ का आनन्द उठायेंगे। भवन के उपरान्त हमारा ध्यान बारी-बारी से दो मूल तत्वों पर जाता है—पुस्तकें तथा पाठकगण। परन्तु एक समय में हम एक ही तत्व पर विचार कर सकते हैं।

आइये सबसे पहले हम पुस्तकों पर विचार करें। मैं जानता हूँ कि आप में से कई यह सोचते होंगे कि पुस्तकालय का अर्थ केवल “पुस्तकें” मात्र ही है। यदि आप पुस्तकालय का अर्थ केवल “पुस्तक-भंडार” ही समझते हैं तो मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि यह अर्थ सर्वथा भ्रमक है। पुस्तकालय का अर्थ पुस्तक-भंडार मात्र से कहीं ऊँचा है। पुस्तकालय के लिए पुस्तकें जितनी आवश्यक हैं उतने ही आवश्यक पाठक भी हैं। इसमें संशय नहीं कि हम पुस्तकालय-विज्ञान की आगे चर्चा पुस्तकों के माध्यम से ही करेंगे। पुस्तकालय में हमारे उपयोग के लिए पुस्तकों का होना आवश्यक है और हमें वहाँ पुस्तकें मिलने की आशा भी रहती है। आइये। कुछ देर इस प्रश्न पर विचार करें कि पुस्तकालय में पुस्तकें आती किस प्रकार हैं? पुस्तकाध्यक्ष पुस्तकें कैसे लाता है?

कक्षा — खरीद कर।

२४१. पुस्तक-चुनाव

मेरा विचार है कि उन्हें खरीदने के पहले भी पुस्तकाध्यक्ष को कुछ करना पड़ता है। क्या आप सोच सकते हैं कि खरीद करने — खरीद की तैयारी करने — के पहले उसे क्या करना पड़ता है?

कक्षा — उसे पुस्तकों का चुनाव करना होता है।

हां। पुस्तक-चुनाव एक ऐसा विषय है जिसका अध्ययन पुस्तकालय-विज्ञान में आपके लिए आवश्यक है। मैं समझता हूँ, आपको ज्ञात भी होगा, कि विश्व में प्राप्य पुस्तकों की संख्या विशाल है। विश्व में ऐसा कोई पुस्तकालय नहीं जो इतना धनी हो कि संसार की समस्त पुस्तकें खरीद सके। इसी कारण प्रत्येक पुस्तकालय में पुस्तक-चुनाव अनिवार्य है। पुस्तकों का संग्रह करने के लिए प्रत्येक पुस्तकालय को सबसे पहले पुस्तकों के चुनाव से ही श्रीगणेश करना चाहिए। पुस्तक-चुनाव के लिए कुछ निर्धारित-तत्त्व होते हैं, जैसे — अर्थ, पुस्तकों की उपलब्धि, संस्करणों का चयन, स्थानीय भाषा, स्थानीय व्यवसाय अथवा ऐसे ही प्रति-

२४३]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

पादित विषय जिसमें पुस्तकालय में आने वालों की अभिरुचि हो। अतएव पुस्तक-चुनाव के कार्यक्रम का विधिवत् अध्ययन करना आवश्यक है।

२४२. पुस्तक-आदेश

मान लीजिए हमने यह निश्चय कर लिया कि हमें कौन-कौन सी पुस्तकें लेनी हैं। तब हमारा अगला कार्य क्या होगा ?

कक्षा — उन्हें पाठकों को दे दें।

क्या दे दें ?

कक्षा — पुस्तकें।

किन्तु पुस्तकें हैं कहां ? हमने तो केवल यह निश्चय किया है कि हमें कौन-कौन सी पुस्तकें प्राप्त करनी हैं। क्या पाठकों को देने से पूर्व हमें पुस्तकें प्राप्त नहीं करनी होंगी ? तो हमें पुस्तकें प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा ?

कक्षा — खरीदना पड़ेगा।

हां ! पुस्तक-आदेश भी पुस्तकालय-विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है।

२४३. पत्रिका-कार्य

इस समय मैं आपको एक ऐसी बात बताऊंगा जिसे आपने कभी सोचा भी न होगा। बहुधा जब आप पुस्तकें खरीदने की बात सोचते हैं तब आप सम्पूर्ण पुस्तकों के बारे में सोचते हैं; मुख-पृष्ठ तथा विषय-सूची सहित, सजिल्द पुस्तकें। परन्तु पुस्तकालयों को कभी-कभी ऐसा प्रकाशित साहित्य भी खरीदना पड़ता है जो एक अंडे की भांति सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होता। कुछ ऐसे प्रकाशन भी हैं जिनके हमें एक समय में कुछ ही पृष्ठ प्राप्त होते हैं — जैसे ४० पृष्ठ पहले मास में, अगले ४० पृष्ठ दूसरे मास में, पृष्ठ ८१ से १२० तक तीसरे मास में — और इस प्रकार सम्पूर्ण पुस्तक को तैयार होने में एक वर्ष लग जाता है। इसके पश्चात् ही मुख-पृष्ठ तथा विषय-सूची पाना संभव होता है। जब यह पृष्ठ आते हैं तब पुस्तकालय में इन पृष्ठों को समुचित रूप से एकत्रित कर पुस्तकाकार बनाना होता है और जिल्द-बंद कराना होता है, किन्तु यह कार्य शैल्फ में अन्य पुस्तकों के साथ रखने के पूर्व होता है। शायद ही आपने इस प्रकार का विचित्र प्रकाशन पहले कभी सुना हो। हां ! तो क्या आप जानते हैं कि इस प्रकार के प्रकाशन को किस नाम से पुकारा जाता है ?

कक्षा — नहीं।

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[२४३]

जब आप "नहीं" कहते हैं तो मुझे आश्चर्य होता है। अवश्य ही आपने इस प्रकार के प्रकाशन पढ़े होंगे। किन्तु आपने इन्हें ध्यान पूर्वक नहीं देखा है। आइये! मैं आपको इस विषय में आपके ही अनुभवों की ही याद दिलाता हूँ। आप अपने कालेज के दिनों को याद कीजिये। क्या आपके कालेज अथवा छात्रावास में वाचनालय नाम का कोई स्थान नहीं था? क्या आपको याद है कि आप अधिकतर उस वाचनालय में कुछ विना जिल्द के थोड़े से पृष्ठों की एक छोटी सी पुस्तक बड़े ध्यान और मनोयोग से पढ़ते थे?

कक्षा — जी हां! "मार्डन-रिव्यू।"

क्या आपने कभी विभिन्न प्रकार के मासिक अंकों को ध्यान से देखा? भाग तथा अंक, ये कुछ ऐसे शब्द हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि आगामी अंकों को क्रमानुसार मिलाने से "मार्डन-रिव्यू" का एक खण्ड बन जायेगा।

कक्षा — नहीं।

पहले आप मुझ से पूरी बात सुन लीजिये तब बाद में निर्णय करते रहिये। पृष्ठ संख्या आगामी अंकों में क्रमानुसार चलती रहती है। आपने "मार्डन-रिव्यू" का जिल्दबंद सम्पूर्ण खण्ड तो अवश्य देखा होगा। आपके विचार में वह कौन है जो उन पृष्ठों को क्रमबद्ध करके पुस्तकाकार बना देता है? अस्त-व्यस्त "मार्डन-रिव्यू" के अंकों को प्रतिमास आपके वाचनालय से निकाल कर कौन जिल्दबंद पुस्तक बना देता है? तदनन्तर आप बहुधा इसे अन्य पुस्तकों के साथ शैल्फ में पाते हैं। मैं जानता हूँ कि आपने "मार्डन-रिव्यू" के अंकों को सम्मिलित कर पुस्तकाकार बनाने की बात सोची भी नहीं होगी। किन्तु मैं इतना अवश्य बता दूँ कि जब आप पुस्तकाध्यक्ष बनेंगे तब आपका इस प्रकार के प्रकाशन से सम्बन्ध रखना एक आवश्यक कार्य होगा। पुस्तकालय-सम्भाषण में इसे पत्रिका-कार्य कहते हैं। पत्रिकाओं में अनेक बाधाओं का आना स्वाभाविक ही है। कई पत्रिकाओं के अंक निश्चित अवधि की घोषित तिथि पर प्रकाशित नहीं हो पाते। कई डाक में ही अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। आपको सदैव सतर्क रहना होगा और यह निश्चित रूप से देखना होगा कि पत्रिका का प्रत्येक अंक पुस्तकालय में ठीक समय पर आता है या नहीं? जब एक भाग सम्पूर्ण हो जाय तब आप एक पत्रिका के समस्त अंकों को एकत्र करें, मुख-पृष्ठ को ऊपर रखें, सूची-पत्र को अंत में रखें और सभी पृष्ठों को क्रमानुसार लगा कर जिल्द-बंद करा दें। आपको नियत समय पर उस पत्रिका का शुल्क अवश्य भोजना होगा। कई पत्रिकाओं के अतिरिक्त-प्रकाशन भी होते हैं, जैसे एकत्रित-सूची-पत्र तथा परिशिष्ट। आपको सदैव उनकी खोज रहनी चाहिये और पुस्तकालय के संट की पूर्णता के लिए उनकी उपलब्धि का

२४४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

प्रयास करते रहना चाहिए। इस प्रकार पत्रिका-कार्य भी पुस्तकालय-विज्ञान का एक विषय हो जाता है।

२४४. क्रम-करण

मान लीजिये, पुस्तकालय में पुस्तकें आ गईं और पत्रिकाओं के सम्पूर्ण भाग भी जिल्द-बंद कर पुस्तकों में सम्मिलित कर लिये गए। अब पुस्तकों से सम्बन्धित हमारा अगला कार्य क्या होगा ?

कक्षा — पाठकों को पुस्तकें देना।

एक अन्य छात्र — उन्हें शैल्फों में रखना।

नहीं नहीं। आप बड़ी शीघ्रता करते हैं। आप से अधिक स्वयं पुस्तकें जानती हैं। वे शैल्फ या पाठकों के पास जाने को तैयार नहीं होंगी, क्योंकि ऐसा करने से पुस्तकाध्यक्ष की असुविधा बढ़ जायेगी। यदि आप कोई पुस्तक अपने ही उपयोग के लिए खरीद कर लायें हों तो आप सीधे उसका उपयोग कर सकते हैं या शैल्फ में रख सकते हैं, किन्तु एक सार्वजनिक संस्था में — पुस्तकालय एक सार्वजनिक संस्था है — आपको पुस्तक के उपयोग के पूर्व एक अन्य आवश्यक कार्य करना होगा। यह कार्य आपको उन समस्त वस्तुओं के उपयोग के पूर्व करना पड़ता है जिन्हें आप सार्वजनिक संस्था के लिए खरीदते हैं — चाहे वह पुस्तक हो या फर्नीचर अथवा लिखने की सामग्री हो या यंत्र। इन सभी वस्तुओं का वास्तविक उपयोग तभी संभव हो सकता है जब आप उनसे सम्बन्धित कुछ एक प्राथमिक कार्यों की पूर्ति कर चुके हों। अच्छा। अनुमान लगाइये कि वह कार्य क्या हो सकता है ?

कक्षा — हमें उनकी सूची बना लेनी चाहिए।

आप लोगों ने ठीक ही कहा। सूची शब्द का प्रयोग बहुत सामान्य सा है। सामान्यतः उसके लिए एक पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया जाता है। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि वह शब्द क्या हो सकता है ?

एक छात्र जो दो वर्ष तक व्यापार में रह चुका था — किसी स्टॉक रजिस्टर में चढ़ा लिया जाय।

एक दम ठीक। व्यापारी वर्ग यही करता है। किन्तु पुस्तकालय-व्यवसाय इतना अभिजातीय वर्ग का व्यवसाय है कि उसमें व्यापारियों में प्रचलित साधारण शब्दों को नहीं अपनाया जा सकता। इस व्यवसाय में इस कार्य को क्रम-करण कहा जाता है। इसका अर्थ केवल स्टॉक-रजिस्टर में चढ़ा लेना मात्र नहीं है। यहां तक कि जब कभी कोई विश्वविद्यालय फर्नीचर खरीदता है — जैसे कुर्सियां और मेज —

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[२४५]

तो इनका स्टॉक रजिस्टर में चढ़ा देना इतना उपयोगी नहीं होता कि जितना क्रम-करण होता है। बताइये भला उसमें क्या-क्या करना होता है? तनिक अपनी-अपनी कुर्सी और मंज के पीछे तो देखिए कि वहां क्या लिखा है?

कक्षा — डी. यू. और कुछ अंक।

इसका क्या अर्थ हुआ? ये चिह्न क्या संकेत देते हैं? दिल्ली विश्वविद्यालय जो कि अधिकार-चिह्न है। और अंकों का अर्थ?

कक्षा — कुर्सी के प्राप्त होने का क्रमांक।

हां। एक सार्वजनिक संस्था में प्राप्त प्रत्येक वस्तु पर अधिकार-चिह्न और क्रमांक होने चाहिए, और ऐसा ही चिह्न पुस्तकों पर होना चाहिए। पुस्तकालय के नाम की मोहर पुस्तक के कुछ नियत स्थानों पर होनी चाहिए। पुस्तकालय-विज्ञान में क्रम-संख्या को क्रमांक कहते हैं। इतना सब करने के बाद ही पुस्तकों का मूल्य चुकाया जाता है। पुस्तकें, मंज और कुर्सी की भांति नहीं होतीं। जैसा कि मैंने पहले बताया, कुछ एक पुस्तकें कई भागों में आती हैं। कई बार अनेक छोटी-छोटी पुस्तकों को एक साथ जिल्द बन्द कर एक पुस्तक बनाई जाती है और उस पर एक ही क्रमांक हो सकता है। इसके विपरीत कई बार एक बड़ी पुस्तक को अनेक भागों में विभक्त करके छोटी पुस्तक का रूप दे कर उन पर पृथक्-पृथक् क्रमांक लिखे जा सकते हैं। समय आने पर आपको क्रम-करण की कठिनाइयों का भी बोध हो जायगा। अब आगे देखें कि पुस्तकों के सम्बन्ध में पुस्तकालय का अगला कार्य क्या है?

२४५. पुस्तकों की तैयारी

क्रम-करण के बाद भी पुस्तकें पाठकों को देने अथवा शैल्फ में रखने योग्य नहीं हो पातीं। इससे पहले कि पुस्तकें अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करें, उनकी तैयारी आवश्यक है। वास्तव में, पुस्तकों का भाग्य तो पाठकों के हाथों में ही है। अच्छा! अनुमान लगाइये कि मेरा अभिप्राय किस प्रकार की तैयारी से है? यदि आपने अपने स्कूल या कालेज के पुस्तकालय से कभी कोई पुस्तक ली हो तो मुझे बताइये कि उसमें ऐसी क्या नवीनता थी जो सामान्यतः आपकी अपनी पुस्तकों में नहीं होती?

कक्षा — पुस्तकालय की मोहर तथा क्रमांक।

हां। किन्तु इस विषय में तो हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। और कुछ नहीं! इसके अतिरिक्त आपने पुस्तक के आरंभ या अंत में कुछ नहीं देखा?

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

[२५१]

कक्षा—एक तिथि-पत्र जिसमें दिनांक होते हैं तथा एक जंब जिसमें पुस्तक-कार्ड लिख कर रखा जाता है।

आपने यह भी देखा होगा कि पुस्तक की पीठिका के निचले भाग पर एक लेबुल भी चिपका रहता है जिस पर कोई संख्या लिखी होती है। यह कार्य भी आवश्यक है। कई बार पुस्तकों के पृष्ठ कटे हुए नहीं होते। यदि पुस्तकों को उसी रूप में पाठकों को दे दिया जाय तो वे पृष्ठों को अपनी उंगली अथवा पेंसिल से काट कर फाड़ देंगे और इस प्रकार पुस्तक के किनारों को नष्ट कर देंगे। मुझे इस विषय के विस्तार में जानने की आवश्यकता नहीं किन्तु इतना ही कहना पर्याप्त है कि पुस्तकालय-कार्य में “पुस्तकों की तैयारी” भी अत्यन्त आवश्यक है।

२५५. पुस्तकालय-सूची

पुस्तक की तैयारी से सम्बन्धित अभी एक और भी कार्य है। पुस्तकाध्यक्ष को पुस्तकें उपयोग के लिए देने के पूर्व अभी कुछ और भी करना होगा।

कक्षा—उनकी सूची बना ली जाय।

हां। पुस्तकालय-सूची पुस्तकालय-विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। मैं नहीं कह सकता कि आपने कभी यह सोचा भी होगा कि पुस्तकालय-सूची बनाना जितना जटिल कार्य है उतना ही वह एक सक्षम यंत्र भी है। इसके अनेक भेद हैं। इसको सिद्ध-हस्त करने के लिए कई नियमों का पालन करना आवश्यक है। इसकी तैयारी के लिए पर्याप्त अभ्यास भी चाहिए। आपका बहुत सा समय सूचीकरण सीखने में ही व्यतीत हो जायगा। सूची की तैयारी भी पुस्तकों की भांति जटिल है। हां! पिछली तैयारी से यह तैयारी सर्वथा भिन्न है क्योंकि वह तैयारी पुस्तक के शरीर से सम्बन्ध रखती थी, किन्तु यह वैसी तैयारी नहीं है। अच्छा बताइये कि यह कौनसी तैयारी हो सकती है?

कक्षा—इसकी विषयसूची और प्रतिपादित विषय।

हां। मैं इसे इस प्रकार कहूंगा कि यह तैयारी पुस्तक की आत्मा से सम्बन्ध रखती है। पुस्तक के शरीर मात्र की तैयारी ही पर्याप्त नहीं वरन् एक पुस्तकालय वह तैयारी भी आवश्यक रूप से करता है जो पुस्तक की आत्मा से सम्बन्धित है।

२५१. पुस्तकालय-वर्गीकरण

पुस्तक की आत्मा से सम्बन्धित एक कठिन कार्य और भी है। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं? याद कीजिये यदि आप कभी किसी पुस्तकालय में गए हों और

हमें बताइये कि आपने अपनी इच्छित पुस्तक किस प्रकार मांगी ?

कक्षा—मैंने सूची से पुस्तक का नाम लिख लिया और उसे पुस्तकाध्यक्ष को दे दिया।

मैंने आपसे आपकी कार्य-रीति नहीं पूछी। क्या आप बिना कागज के पत्र पर लिखे अथवा बिना पुस्तकाध्यक्ष की सहायता के शैल्फ पर नहीं गए ? मुझे खुशी है कि आप ऐसा भी कर चुके हैं। आप किस प्रकार निश्चित पुस्तक की प्राप्ति के लिए वहां पहुंचे ? निश्चय ही आप उस विषय में शैल्फ में गए होंगे जिसमें आपकी इच्छित पुस्तक रखी होगी। मान लीजिये आप भौतिक-विज्ञान के छात्र हैं तो आप भौतिक-विज्ञान के विषय के शैल्फ पर ही जायेंगे। आपने उसमें सभी पुस्तकें भौतिक-विज्ञान पर ही देखी होंगी। सम्भवतः आपने सोचा होगा कि भौतिक-विज्ञान पर समस्त पुस्तकें (जितनी पुस्तकालय ने खरीदी हैं) केवल इसी शैल्फ में हैं अन्यत्र कहीं नहीं। आपको विश्वास होगा कि जैसे ही नई पुस्तकें पुस्तकालय में आती हैं वे सब इन्हीं शैल्फों में रख दी जाती हैं। आपके सहपाठी भी उन्हें दिन-प्रतिदिन या घंटे-प्रतिघंटे ले जाते हैं और वापिस कर जाते हैं। आपने यह भी देखा होगा कि बिना किसी भूल के वे पुनः अपने-अपने नियत स्थानों पर पहुंच जाते हैं। तनिक सोचिये! शैल्फ में यह उचित व्यवस्था आप कैसे रख सकते हैं ? यह इतना सुगम कार्य नहीं जितना आप सोचते हैं। यदि आपके पास केवल एक दर्जन पुस्तकें हों तब यह कार्य सुगम हो सकता है। किन्तु यदि आपको ५०,००० पुस्तकों का प्रबन्ध करना हो तो यह कार्य कितना कठिन हो जायगा ? शायद यह असम्भव सा कार्य व्यवस्थित रूप में न चल पाये। तथापि पुस्तकालयों ने इस कठिन कार्य पर विजय प्राप्त करली है। भला सोचिये तो कि वे किस प्रकार करते हैं ?

कक्षा—पुस्तकों पर संख्या डालने की उनकी एक रीति होती है। हम यह संख्या पुस्तकों की पीठिका पर देख सकते हैं।

हां। ये संख्या पुस्तकालय-कार्य में एक महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। इन्हें “वर्गी-संख्या” कहते हैं। इन संख्याओं का निर्धारित करना भी एक कठिन कार्य है। इसे वर्गीकरण कहते हैं। पुस्तकालय-वर्गीकरण भी पुस्तकालय-विज्ञान की एक महत्वपूर्ण तथा मूल शाखा है। वर्गीकरण करने के लिए एक सूक्ष्म तथा विश्लेषणात्मक बुद्धि, पुस्तक-जगत से घनिष्ठ परिचय तथा पर्याप्त अभ्यास की आवश्यकता है। पुस्तकालय-वर्गीकरण में दक्षता प्राप्त करने के लिए कुछ कड़े और ठोस नियमों का पालन करना आवश्यक हो जाता है। आप वर्गीकरण करना केवल अभ्यास मात्र से नहीं सीख सकेंगे वरन् उसके लिए आपको पूर्ण-अभ्यास करना पड़ेगा और अपना अधिकांश समय लगाना पड़ेगा। वास्तव में आप आगे जाकर देखेंगे कि यह कार्य

२७]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

कितनी कीठनाइयों से भरा है। इसकी अनेक समस्याओं का कोई समाधान नहीं हो सका है। वस्तुतः इसके समाधान के लिए प्रत्येक शताब्दी में नये सिरों से डट कर काम करने की आवश्यकता पड़ती है। आप यह भी देखेंगे कि यह बात पुस्तकालय-विज्ञान की सभी शाखाओं में प्रतिष्ठित है। इतना ही नहीं जीवन के प्रत्येक मोड़ तथा प्रत्येक विचारधारा में सन्निहित है।

२६. प्रसार-कार्य

अब पुस्तकों पाठकों को दी जा सकती हैं। परन्तु यह असंयत रूप में उनके हाथों में नहीं पहुँच सकतीं। पुस्तकों का जाना भी सुव्यवस्थित होना चाहिए। इनका ठीक-ठीक लेखा होना चाहिए। अतः एक ऐसी विशेष कार्य-विधि का होना आवश्यक है जिसके द्वारा इनका पता भी चलता रहे और पुस्तकालय में भी पुस्तकों उचित रूप से वापस आती रहें। पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित इस शाखा को "प्रसार-कार्य" कहते हैं।

२७२. पुस्तकालय-प्रचार-कार्य

तनिक सोचिये! क्या पुस्तकों स्वयं प्रसारित हो सकती हैं? क्या बिना किसी सहायता के एक पुस्तक अपने पाठक को ढूँढ़ लेगी? क्या प्रत्येक पाठक आपकी सहायता के बिना अपनी इच्छित पुस्तक प्राप्त कर सकेगा? यहां आपको एक ऐसी समस्या का सामना करना पड़ रहा है जो व्यावसायिक संसार में प्रचलित है। यदि आप कोई वस्तु बेचते हैं तो क्या आप ग्राहक पर निर्भर करते हैं कि वह आकर उस वस्तु को खरीदता है या नहीं, अथवा आप जनता की दृष्टि में उस वस्तु-विशेष को लाने के लिए विशेष प्रयत्न करते हैं? आप इस कार्य-विशेष को क्या कहते हैं? कक्षा—विज्ञापन।

हां। पर इसका एक अन्य उपयुक्त पर्यायवाची शब्द है। इसे हम पुस्तकालय-प्रचार-कार्य कहते हैं।

२७. संदर्भ सेवा

प्रचार-कार्य का आशय है जनता को पुस्तकालय-सेवा से परिचित कराना। फलतः लोग पुस्तक-सेवा का लाभ उठाएं और पुस्तकालय में आयें। किन्तु यह पर्याप्त

नहीं। पुस्तकालय में कितने ही विषयों पर पुस्तकें होती हैं। प्रत्येक विषय पर भांति-भांति की पुस्तकें होती हैं। प्रत्येक विषय पर अनेक पुस्तकें अनेक मान-दण्डों द्वारा निर्धारित होती हैं और उनमें प्रतिपादित विषय का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण होता है। पुस्तकालय में असंख्य पुस्तकों की भी एक समस्या है—मीलों लम्बी पुस्तकों की पंक्तियां किसी भी पाठक को दुविधा में डाल सकती हैं। अतएव पाठकों को पुस्तकों का ज्ञान कराना आवश्यक है। यह पुस्तकाध्यक्ष पर ही निर्भर होता है कि वह उन पुस्तकों के लिए ठीक प्रकार के पाठक को कैसे ढूँढ़ निकालता है। क्या आप नहीं जानते कि प्रचार के भी दो ढंग हैं—पहला, समाचार पत्र इत्यादि का अवैयक्तिक और दूसरा व्यक्तिगत सम्मति का ढंग। वास्तव में दूसरा ढंग पहले से अधिक कार्यक्षम है। व्यक्तिगत सम्मति के ढंग में प्रतिनिधि अपने कार्य में समयानुसार अदल-बदल कर सकता है। मान लिया जाय आप “हॉरलक्स-मिल्क” के प्रतिनिधि हैं। यदि आप एक सम्भावित ग्राहक के यहां जायें और देखें कि वह एक डाक्टर है तो आप सम्भवतः कहेंगे कि “हॉरलक्स” रोगियों के लिए गुणकारी है। दूसरी ओर यदि किसी घर में आप मां के हाथ में एक छोटा सा शिशु देखेंगे तो आप मां को बताएंगे कि “हॉरलक्स” बच्चों के लिए सर्वोत्तम दूध है। यह व्यक्तिगत सेवा पुस्तकों के प्रसार, समाज में जनसाधारण की अधिक से अधिक जानकारी एवं कुशलता के लिए परम आवश्यक है। आप पुस्तकालय-विज्ञान के इस विभाग को क्या कहेंगे?

कक्षा—अनुयाचना विभाग।

नहीं नहीं। मैंने आपको पहले ही बताया कि पुस्तकाध्यक्ष अपनी भाषा में शिष्ट होते हैं। हमें इसे व्यापारियों के साधारण शब्द-भंडार से भिन्न रखना है। हम इसे शिष्ट नाम संदर्भ सेवा से सम्बोधित करते हैं।

२८. शैल्फ-कार्य

अन्त में हमें देखना है कि पुस्तकें यथा स्थान रखी गईं और उनका ठीक-ठीक प्रदर्शन हो गया है या नहीं। ऐसा लगता है कि पुस्तकों का प्रदर्शन भी प्रचार-कार्य की एक शाखा है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। पुस्तक-प्रदर्शन का यहां यह अर्थ नहीं कि कुछ पुस्तकों को दुकान के शीशे की खिड़की में ढंग से लगा दिया जाय। यह सारा कार्य बड़ी चतुराई, अनेक निर्देश-पत्रों तथा सतत् परिवर्तन द्वारा ही हो सकता है। पुस्तकों की सुव्यवस्था को बनाये रखना और उनको सुचारु रूप से रखने को “शैल्फ-कार्य” कहा जाता है।

२९]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

अब मैं आपको पुस्तकालय में होने वाले पेंचीदे कार्यों से निकाल लाया हूँ। प्रसंगवश मैंने उन बारह कार्यों को भी आपके सामने स्पष्ट कर दिया जो पुस्तकालय में किये जाते हैं। इनमें ६ प्रसार-कार्य, ७ संदर्भ-सेवा तथा ७२ प्रचार-कार्य द्वारा पाठकगण पुस्तकों के समीप आते हैं। किन्तु यह ज्ञान हमें तब हो सका जब हमने पुस्तकालय में पुस्तकों की गतिविधियाँ देख लीं। दूसरे शब्दों में पुस्तकालय-विज्ञान की यह विभिन्न शाखाएँ तभी दृष्टिगोचर हो सकीं जब हमने पुस्तकों की ओर से यह दृष्टि डाली। अगले दिन हम पाठकों की ओर से दृष्टि डालेंगे और देखेंगे कि हमारे सम्मुख कौन सी अन्य शाखाएँ आती हैं।

२६. सारांश

आइये! अब तक जिन बारह समस्याओं को हमने पृथक् कर लिया है उनका गिनने के बाद आज का अध्ययन समाप्त करें—

- १ पुस्तकालय-भवन
- ४१ पुस्तक-चुनाव
- ४२ पुस्तक-आदेश
- ४३ पत्रिका-कार्य
- ४४ क्रम-करण-कार्य
- ४५ पुस्तक की तैयारी

- ५१ पुस्तकालय-वर्गीकरण
- ५५ पुस्तकालय-सूची
- ६ प्रसार-कार्य
- ७ संदर्भ-सेवा
- ७२ प्रचार-कार्य
- ८ शैल्फ-कार्य

व्याख्यान ३

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

यह व्याख्यान सभी पुस्तकालयों यथा : राष्ट्रीय पुस्तकालय, नगर पुस्तकालय, तथा अभिलेख पुस्तकालय इत्यादि के संगठन पर प्रकाश डालता है। किस प्रकार के पुस्तकालय की क्या विशेषता है यथा : राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय ! किस प्रकार के पाठक किस प्रकार के पुस्तकालय से लाभ उठा सकते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस व्याख्यान में मिलता है। पाठकों और पुस्तकों के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करता है।

पाठकों की ओर से एक दृष्टि

आज हम पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र पर पाठकों की ओर से दृष्टि डालेंगे। इस दृष्टिकोण से हम नाना प्रकार के पुस्तकालयों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इनमें हम प्रत्येक पुस्तकालय के सम्बन्ध में निम्नीलिखित ६ प्रश्नों का अनुशीलन करेंगे :

- (१) पुस्तकालय-विज्ञान से लाभ उठाने वाले व्यक्तियों का विशेष वर्ग;
- (२) अधिकार;
- (३) अर्थ-व्यवस्था;
- (४) संग्रह की जाने वाली पुस्तकों के लक्षण;
- (५) सेवा की रीति; और
- (६) भवन।

में प्रारम्भ ही में यह बता दूँ कि हम आज की यथासंभव सबसे बड़ी राजनीतिक इकाई, राष्ट्र तक ही अपने विषय को सीमित रखेंगे। विषय की स्पष्टता के लिए

३११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

हम भारतवर्ष पर ही ध्यान देंगे। किन्तु भारत को केवल उदाहरणस्वरूप ही लिया जाएगा। वस्तुतः जो कुछ हम विचार करेंगे वह समान रूप से किसी भी अन्य राष्ट्र पर घटाया जा सकता है।

३११. राष्ट्रीय पुस्तकालय

आइये! हम सर्वप्रथम ऐसे पुस्तकालयों पर विचार करें जिसके पाठक समस्त राष्ट्र के लोग बन सकें। क्या ऐसा भी कोई पुस्तकालय हो सकता है? यदि इस प्रकार का कोई पुस्तकालय होगा तो प्रत्येक नागरिक को उसके उपयोग का समान अधिकार होगा। अतः यह एक बहुत बड़ा पुस्तकालय होना चाहिए। साथ ही वह एक ऐसा पुस्तकालय होना चाहिए जो शीघ्रता से विकसित होता रहे। क्या आपने भारत में किसी ऐसे पुस्तकालय का नाम सुना है?

कक्षा—इम्पीरियल लाइब्रेरी।

ठीक है! परन्तु अब हमने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। और आज इस विशेषण से कोई भी व्यक्ति भूम में पड़ सकता है।

आपके विचार से “इम्पीरियल” शब्द को किस शब्द से बदला जाय?

कक्षा—नेशनल (राष्ट्रीय)।

यह ठीक है। सबसे पहला तथा भव्यतम पुस्तकालय जो एक देश या राष्ट्र में होना चाहिए और जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं—वह राष्ट्र का प्रधान पुस्तकालय—राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय है। कलकत्ता स्थित इम्पीरियल लाइब्रेरी की स्थापना का उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीय पुस्तकालय बनाना था। मैंने “उद्देश्य” शब्द का प्रयोग इस कारण किया क्योंकि उसके नियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक को पुस्तकों दी जानी चाहिए, चाहे वह कहीं भी रहता हो। उद्देश्य शब्द से यह भी सुझाव है कि यह अपूर्ण उद्देश्य है। यद्यपि आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व यह पुस्तकालय लार्ड कर्जन द्वारा स्थापित किया गया था, किन्तु इस वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। इस पुस्तकालय में पुस्तकों के लिए कोष की कमी सदैव ही रही। सरकारी प्रकाशनों को हटा देने पर इसकी पुस्तकों के वार्षिक क्रमांक में इतनी अधिक कमी रहती है कि यह स्थिति शोचनीय है। इसके अतिरिक्त भारत के नागरिकों को स्वतंत्र रूप से इसके उपयोग के लिए ठीक प्रकार से प्रोत्साहित भी नहीं किया गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रादेशिक सरकारी गजट में इसका वर्णन किया जाता है। किन्तु क्या आपको यह ज्ञात है कि ऐसे कितने लोग हैं जिनमें इस गजट का वितरण किया जाता है? न केवल

इस पुस्तकालय के पाठकों की संख्या और न ही इसकी पुस्तकों का भण्डार बल्कि इसके भवन को भी राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता। सत्य तो यह है कि हमारा राष्ट्रीय पुस्तकालय केवल नाम मात्र को ही है। परन्तु बहुत से अन्य देशों में ऐसा नहीं है। ग्रेट ब्रिटन का लोकप्रिय ब्रिटिश संग्रहालय वहां का राष्ट्रीय पुस्तकालय ही है। यदि इसकी समस्त पुस्तकों की एक पीकट बनाई जाये तो ५० मील से भी अधिक होगी। इसके वाचनालय में बड़े-बड़े रचनात्मक कार्य होते देखे गए हैं। इसका वाचनालय यद्यपि क्रियात्मक दृष्टि से प्राचीन हो गया है तथापि कला की दृष्टि से यह इतने सुन्दर शिल्प का नमूना है कि राष्ट्र के लिए एक गौरव की बात है। इसकी सजावट आधुनिकरूप से की गई है। कहते हैं कि इसमें पाठक को अधिकाधिक आराम उपलब्ध है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को अपने राष्ट्रीय पुस्तकालय पर गर्व करना स्वाभाविक ही है। इसका पारिभाषिक नाम है लाइब्रेरी आफ कांग्रेस। ऐतिहासिक कारणों से इसका संचालन राष्ट्रीय विधान के अन्तर्गत होता है। ब्रिटिश राष्ट्रीय पुस्तकालय से दो शताब्दी छोटा होते हुए भी यह आकार-प्रकार, संग्रह एवं समृद्धि की दृष्टि से कहीं आगे बढ़ गया है। फ्रांस की जनता अपने राष्ट्रीय पुस्तकालय को ठीक नाम से पुकारती है— बिब्लियोथेक नेशनल। रूस की ऐतिहासिक क्रान्ति के उपरान्त मास्को स्थित राष्ट्रीय पुस्तकालय ने तो विश्व के अन्य समस्त राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालयों को प्रत्येक दृष्टि से पीछे छोड़ दिया है। हम आशा करते हैं कि भारत, जिसे स्वराज्य मिल चुका है, अपना राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय ऐसा बनाएगा जिसके द्वारा वह अपने महान् पूर्वजों के गौरव, अपने देश के आकार के गौरव और अपने महान् भविष्य को सजीव रखने में उपयुक्त सिद्ध हो सके। इसलिए ऐसे पुस्तकालय पर अभी से विचार करना है और उसे स्थापित और विकसित करना है। मैंने इस दिशा में अपने कर्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय पर एक विस्तृत स्मरण-पत्र भारत सरकार को भिजवा दिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालय-विज्ञान का विभाग एक दिशा का संकेत करेगा। सरकार को इसके निर्माण के लिए चतुर एवं दूरदर्शी व्यक्तियों की खोज करनी होगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत के राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय के विस्तार का सुख आप में से कुछ अथवा आपके पश्चात् आने वालों को अवश्य होगा।

अब इस विषय को यहीं छोड़ दें और राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय का अध्ययन उन छः प्रश्नों को दृष्टि में रखते हुए करें, जिनकी मैंने आरम्भ में ही चर्चा की थी। ऐसा पुस्तकालय किस प्रकार के लोगों की सेवा करे ?

३११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

① कक्षा—भारत के सब लोगों की।

हां। मैं कहूंगा कि भारत राष्ट्र के “सब सदस्य” कहावत में निहित “सब” शब्द की शंकाओं का समाधान कर लें। क्या आप शंकाओं का अनुमान लगा सकते हैं ?

कक्षा—यह भारत स्थित विदेशियों की सेवा नहीं करेगा।

मैं नहीं कह सकता कि राष्ट्रीय शब्द की इतनी सीमित व्याख्या विवेकपूर्ण है, या आवश्यक ? यदि हम किसी पुस्तकालय को राष्ट्रीय कहते हैं तो हमें इस शब्द का प्रयोग सीमित अर्थों में करने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि यह पुस्तकालय राष्ट्र में रहने वालों की सेवा करता है। हमारे पूर्वजों ने हमें एक विज्ञान दिया। वह है मीमांसा शास्त्र, उससे हमें मीमांसा-न्याय की प्राप्ति हुई। इसमें सूत्रों की व्याख्या है। इसमें एक ही सूत्र हमारे दृष्टिकोण को विस्तृत कर देगा, संकुचित तथा निषेधक प्रवृत्ति को हटा देगा, और हमारे राष्ट्रीय शब्द का प्रयोग स्पष्ट हो जायगा। यह सूत्र है आम्वनन्याय अर्थात् आम के उपवन का न्याय। यह सूत्र क्या कहता है ? जब आप किसी उपवन को आम का उपवन कहते हैं तो उससे यह अभिप्राय नहीं कि वहां आम के वृक्षों के अतिरिक्त और कोई वृक्ष ही नहीं होगा। आपका अर्थ है कि आम के वृक्षों की वहां अधिकता है। यदि आपका यजमान सायंकाल आपको घुमाता हुआ उस स्थान पर ले जाय जिसे वह आम का उपवन कहता है तो आप वहां कुछेक नारियल के पेड़ देख कर चिंतित तो नहीं होंगे ? और यहां तक कि कोई नीम का वृक्ष भी हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं ? आप अपने यजमान को यह सुझाव तो नहीं देंगे कि उसे आम के अतिरिक्त अन्य वृक्ष उखाड़ फेंकने चाहिए ? इस आम्वनन्याय को स्मरण रखिये। राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय की सेवा से उन कुछ को क्यों वंचित रखा जाय जो कुछ समय के लिए या सदा के लिये हमारे बीच रहते हैं, या कभी-कभी विदेशी भूमि में सेवा के लिए आते हैं। आपने जब यह कहा कि राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय को उन सबकी सेवा करनी चाहिए जो भारत राष्ट्र के सदस्य हैं तब मैंने आपसे “सब” शब्द की शंकाओं का समाधान करने को कहा था। ताकि आप राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय की सेवा का विस्तृत दृष्टिकोण अपना लें। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि आपका उत्तर दूसरी ओर जाये और इस शब्द की सीमा-निर्धारण करने के लिए एक प्रस्ताव के रूप में आये। पर हां ! आप तो इसके विपरीत चलें गए।

अबकी बार मेरी कही हुई इन सब बातों पर विचार कर पुनः उत्तर देने का प्रयास कीजिये।

② कक्षा—हमारे राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय को उन भारतीयों को भी पुस्तकें देनी चाहियें जो विदेशों में हैं।

में मानता हूँ। किन्तु इस प्रकार के राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय की सेवा का कितना विस्तार हो जायगा? आखिर कितने प्रतिशत हमारे देशवासी विदेशों में हैं जो हमारी राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय की सेवा पर निर्भर करेंगे? ऐसी दशा में क्या आपके विचार में यह सम्भव है कि हमारी सेवायें उन लोगों तक पहुँच जायेंगी? क्या यह उचित नहीं होगा कि पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर विदेशी राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय हमारे देशवासियों के लिये वह सब कुछ करें जो हमारा राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय वहाँ के लोगों के लिये करने को तत्पर है?

आप पुनः विचार कीजिये कि इस सेवा का विस्तृत रूप क्या हो सकता है? इस विषय में आपको काकाक्षिगोलकान्याय के अनुसार चलना चाहिए अर्थात् काँवे के आंख की पुतली का सूत्र। यदि एक दिशा में खोजने से आपको कुछ नहीं मिलता तो दूसरी दिशा में अपनी दृष्टि डालिये। आप “सब” शब्द का विस्तार स्थान की धुरी से खोज रहे थे और आपने सारे स्थान को भारत तथा भारत-से-बाहर दो भागों में विभक्त किया। जब आपने भारत में खोज की तो इस निश्चय पर पहुँचे कि “सब” शब्द के क्षेत्र में भारत स्थित कुछ विदेशी भी सम्मिलित हैं, और जब आपने भारत-से-बाहर दृष्टि डाली तो आपको स्वीकार करना पड़ा कि कुछ ही लोग “सब” शब्द के क्षेत्र में आते हैं। इस प्रकार स्थान की धुरी पर आपने “सब” शब्द की खोज पूरी करली है। मैंने आपसे पहले ही कहा है कि इस स्थान की धुरी से होने वाली खोज से मुझे संतोष नहीं हुआ। अतः आप “काँवे की दृष्टि के सिद्धान्त” को अपनाइये और अपनी खोज स्थान की धुरी से हटाकर किसी अन्य धुरी से अथवा समय की धुरी से प्रारम्भ कीजिये और तब बताइये कि “सब” शब्द के विषय में आप कितना अधिक विकास पाते हैं?

कक्षा—भावी सन्तान।

बहुत ठीक! “सब” शब्द की परिधि भारत की वर्तमान जनता तक ही सीमित नहीं है वरन् भावी जनता तक भी है। और इससे ही “सब” शब्द के रूप का क्रियात्मक विस्तार होगा। अब हमें “सब” शब्द की एक महत्वपूर्ण आशंका का समाधान करना चाहिए। राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय में पुस्तकों केवल हमारे समकालीनों के लिये ही नहीं वरन् भावी सन्तति के लिये—अर्थात् ई० शताब्दी ६००० के भारतीय नागरिकों के उपयोग के लिए भी हैं। यह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय का पुस्तकों के प्रति यह उत्तरदायित्व कैसा है? उसे अपनी पुस्तकों की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई पुस्तक शीघ्र ही नष्ट न हो जाय। ज्ञात होता है, हम भूम में पड़ गए हैं। यदि हम वर्तमान सन्तति के उपयोग के

३११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

लिए पुस्तकें देने को प्रोत्साहन देंगे तो भावी सन्तति के आने तक तो वे कभी की नष्ट हो चुकेंगी, और यदि हम भावी-सन्तति के लिए पुस्तकों को एक ओर रख देंगे तो हम वर्तमान-सन्तति के उपयोग का निषेध करेंगे। ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए हमारे राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय सम्भावित का दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे वर्तमान पाठक का सर्वथा निषेध नहीं करते वरन् पुस्तकों के उपयोग को संयम में बांध देते हैं। इससे पुस्तकें कम नष्ट होती हैं और अधिक समय तक चलती हैं। पुस्तक को पुस्तकालय के बाहर उपयोग के लिए भेजने और वापसी में बड़ा भय रहता है। यदि यह अतिरिक्त सेवा न की जाय और पुस्तकालय-भवन में ही पुस्तकों को उपयोग करने के लिए दिया जाय तो पुस्तकें वर्तमान एवं भावी दोनों सन्ततियों के लिए काम आ सकती हैं। वास्तव में अधिकतर राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय ऐसा ही करते हैं।

मेरे विचार में इस विषय पर तर्क करने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय राष्ट्र की ही सम्पत्ति होनी चाहिए तथा देश की सरकार द्वारा उसका आर्थिक प्रबन्ध भी होना चाहिए।

अब हम पाठकों के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय शब्द की सम्पूर्ण व्याख्या कर चुके हैं। किन्तु यह न भूलिए कि एक पुस्तकालय में केवल पाठकगण ही नहीं होते वरन् पुस्तकें भी होती हैं। अतः हम एक बार पुनः काकाक्षिगोलकान्याय का प्रयोग पुस्तकों पर करें और देखें कि इससे हमें क्या प्रकाश मिलता है। किस वर्ग या श्रेणी की पुस्तकें एक राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय को प्राप्त करनी चाहिए?

कक्षा—देश में प्रकाशित समस्त पुस्तकें।

हां! और इसके अतिरिक्त क्या? अपने देश से बाहर भी देखिये और बताइयें कि विदेशों में प्रकाशित कौन सी पुस्तकों को राष्ट्रीय पुस्तकालय प्राप्त करे?

कक्षा—विदेशों में भारतीयों द्वारा प्रकाशित पुस्तकें।

हां। किन्तु क्या आप उन सारी पुस्तकों को सम्मिलित नहीं कर लेंगे जो भारत पर प्रकाशित हुईं हैं? यदि आप सहमत हैं तो क्या हम एक सूत्र अपना सकते हैं कि राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय को उन सभी पुस्तकों को प्राप्त करना चाहिए जो किसी भी भारतीय की कृति हों, भारत में अथवा भारत पर रची गई हों। इस प्रकार आपको राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय का पुस्तक प्राप्ति से सम्बन्धित कर्तव्यों का अच्छा चित्र दिखाई देने लगा। किन्तु आपने पूरा चित्र भी देखा? क्या राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय यह आश्वासन नहीं देता कि वह राष्ट्र के किसी भी व्यक्ति को ऐसी कोई भी पुस्तक देगा जो न केवल भारत की हो, भारत पर हो, भारत में प्रकाशित हो, अपितु कोई भी पुस्तक किसी भी विषय पर कहीं भी और किसी

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[३१२]

भी समय प्रकाशित हुईं हों ? हाँ ! यह भी राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय का कर्तव्य हो जाता है। यदि यह पुस्तकालय ही राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता तो और कौन सा पुस्तकालय करेगा ? अब आपको राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय के पुस्तक-संग्रह का पूर्ण चित्र प्राप्त हो गया। आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि अमेरिकन “कांग्रेस पुस्तकालय” प्रति वर्ष एक लाख पुस्तकों की अभिवृद्धि करता है। भारत का राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय कब स्थापित होगा ? वह इस स्थिति से आगे कब विकसित होगा ? भारतवासी पुस्तक क्षेत्र में अमरीका से आगे कब बढ़ेंगे ?

राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय के विषय में हम यहां तक पहुंच गये कि छठे प्रश्न पर अब विचार कर सकते हैं—अर्थात् पुस्तकालय-भवन। ऐसे पुस्तकालय के भवन का निर्माण-कार्य सरल नहीं जिसमें एक लाख से भी अधिक पुस्तकें प्रति वर्ष प्राप्त की जाती हों।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अमेरिका का राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय ६००० पुस्तकों के संग्रह से खुला, किन्तु अब उनकी संख्या तीन लाख से भी अधिक है। वास्तव में भवन और सामग्री की समस्या राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय पर लागू करने के कारण बहुत ही जटिल हो जाती है। इसके लिए भारी इंजीनियरिंग दक्षता, उच्चतम भवन-निर्माण-कला की बारीकी तथा पुस्तकाध्यक्षां में दूरदर्शिता का दृष्टिकोण होना आवश्यक है।

३१२. राष्ट्रीय दायक पुस्तकालय

समय की धुरी से “सब नागरिक,” इस सीमा की परिभाषा का विस्तार जानते हुए हमने देखा कि राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय किसी को भी ऋण पर पुस्तकें दे, यह सम्भव नहीं। एक नागरिक के पुस्तकाधिकार में यह एक शांचनीय घटना है। इसको आवश्यक रूप से रोकना चाहिए। लगभग तीस वर्ष पहले ग्रेट ब्रिटेन ने इसे रोकने की योजना बनाई थी। यहां मजदूर शिक्षा संघ के प्रधान अलबर्ट मन्सब्रिज की दूरदर्शिता सराहनीय है। इनके कारण लंदन में छात्रों के लिए राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय का समारम्भ हुआ। तभी से इसे राजाज्ञा मिली। इसमें किस प्रकार के पाठक आते हैं ? देश के किसी भी कोने में रहने वाला प्रत्येक वह पाठक यहां आता है जो अपने स्थानीय पुस्तकालय में पुस्तक न मिलने पर यहां से पुस्तक लेना चाहता हो। तब से यह चला आता है कि यह पुस्तकालय ऐसी ही पुस्तकें खरीदता है जिनकी इस कारण आवश्यकता होती है। अतः इसका

३१३]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

पुस्तक-संग्रह-कार्य सन्तुलित नहीं हो सकता। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका पुस्तक-संग्रह इतना पूर्ण नहीं होता जितना राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय का होता है। इंग्लैण्ड में यद्यपि यह एक व्यक्तिगत संस्था है और व्यक्तिगत सहायता पर ही चलती है तथापि मुझे विश्वास है कि आप इस बात पर सहमत होंगे कि इसके स्वामित्व तथा आर्थिक प्रबन्ध के उपयुक्त वहाँ की राष्ट्रीय सरकार ही है। चाहे कुछ भी हो, भारत को भी इस प्रकार का पुस्तकालय इसी आधार पर बनाना है।

३१३. मुद्रणाधिकार पुस्तकालय

जब हम प्रथम प्रकार के पुस्तकालयों पर विचार कर रहे थे, तो हमने देखा कि—राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय में उन सब पुस्तकों को खरीदना आवश्यक है जो भारत में, भारत पर, या भारतीयों द्वारा रची गई हों, साथ ही वे सब विदेशी पुस्तकें जिनकी भारतीयों को आवश्यकता है। किन्तु इसके लिये तो बहुत अधिक धन की आवश्यकता होगी। इस धन में कमी करने के लिए बहुत से राष्ट्र एक युक्ति अपनाते हैं। वे सरकार की इस कार्यवाही को किसी दूसरी कार्यवाही से जोड़ने का प्रयास करते हैं। अब हमें देखना है कि वह दूसरी कार्यवाही क्या है? आपको विदित ही होगा कि नया विधान पुस्तकों की सम्पत्ति को मान्यता देता है। इसके भौतिक रूप में ही नहीं जिसे पुस्तक कहते हैं, अपितु पुस्तकों के विचार-तत्त्व को भी, जो स्थूल रूप में सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार की सम्पत्ति को सर्वथा अमूर्त या निरवयव कहा जाता है। पुस्तकों में सन्निहित विचारों की इस अमूर्त सम्पत्ति को विधान ने लगभग तीन शताब्दी पूर्व मान्यता देना प्रारम्भ कर दिया था। जब एक बार सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार कर लिया जाता है तो, आपको मानना होगा कि, इसके सम्बन्ध में वैमनस्य स्वाभाविक रूप से उठते हैं। न्यायालय को इसके विधिगत स्वामित्व के बारे में निर्णय देना होगा। अचल अथवा भू-सम्पत्ति के बारे में विधिगत स्वामित्व न्यायोचित ठहराने के लिए प्रमुख आधार क्या है?

कक्षा — दस्तावेज !

हाँ, रजिस्ट्री किये हुए दस्तावेज अर्थात् ऐसे दस्तावेज जिनका सरकार के किसी ऐसे विभाग में पंजीकरण किया गया हो जो इसी कार्य के लिए स्थापित किया गया है। इसी प्रकार पुस्तक के विषय-वस्तु के सम्बन्ध में स्वामित्व के विवादास्पद अधिकार के बारे में आप आशा कर सकते हैं कि सरकार द्वारा एक निश्चित

विभाग में मुद्रणाधिकार का पंजीकरण करा लेना ही पर्याप्त होगा। यद्यपि मैं आपको बताऊंगा कि मुद्रणाधिकार का इस प्रकार का पंजीकरण आवश्यक तो है, किन्तु पर्याप्त नहीं। भू-सम्पत्ति के सम्बन्ध में पंजीकरण आवश्यक भी है और पर्याप्त भी। परन्तु मुद्रणाधिकार सम्पत्ति के सम्बन्ध में—जैसा कि मेरी पुस्तक “लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन” का पंजीकरण हो गया है, इससे न्यायालय को सभी वाञ्छनीय सहायता नहीं मिलेगी। प्रतिवादी कहेगा कि लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन पर उसकी पुस्तक मेरी पुस्तक से पहले प्रकाशित हो गई है और उसकी पुस्तक की अनुलिपि करके मैंने ही मुद्रणाधिकार को भंग किया है। इस प्रकार वह मेरे विरोध में खड़ा हो जायगा।

कक्षा—प्रकाशन तिथि से समस्या हल हो जायगी।

नहीं, तब भी हल नहीं होगी। प्रतिवादी कह सकता है कि उसकी पुस्तक का एक संस्करण भी छप चुका है और हो सकता है कि उसने इसकी रजिस्ट्री कराई हो। चलिए हम मानते हैं कि उसका एक संस्करण पहले प्रकाशित हो चुका है। मेरा तर्क यह है कि उसका प्रथम संस्करण विवादास्पद नहीं। परन्तु दूसरा संस्करण जो मेरी पुस्तक के बाद प्रकाशित हुआ है उसमें मेरी पुस्तक का विषय चुरा कर रखा गया है, तब ? न्यायाधीश सभी पुस्तकों की प्रतियां मंगा सकता है। किन्तु इससे एक दूसरा ही विवाद खड़ा हो जायगा। प्रत्येक पक्ष प्रस्तुत प्रतियों को प्रमाणित करने के लिए विवाद करेगा। अमूर्त सम्पत्ति के लिए यह एक पेचीदा उलझन है। भू-सम्पत्ति के सम्बन्ध में यह उलझन नहीं उठ सकती। इस प्रकार के विवादों से न्यायाधीश के कार्यों में अनावश्यक वृद्धि रोकने के लिए समाज ने यह रास्ता निकाला है कि जब किसी पुस्तक के मुद्रणाधिकार का पंजीकरण कराया जाय तब उसकी एक अधिकृत प्रति पुस्तकों के पंजीकार के यहां जमा करा दी जाय, जिसे वह आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय में प्रस्तुत कर सके। इस प्रकार वैधानिक उद्देश्य के लिए देश में प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक की एक प्रति मुद्रणाधिकार का पंजीकरण कराते समय जमा की जाती है। राष्ट्र में प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक की प्रति प्राप्त करने में सरकार इस तथ्य का उपयोग करती है। परन्तु सरकार के पुस्तक अधिकारियों का एक और कर्तव्य हो जाता है कि वे मुद्रणाधिकार पुस्तकालयों में जमा की हुई प्रतियों को सम्हाल कर रखें और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें प्रस्तुत करें। प्रारम्भ में सरकारें इस कर्तव्य के प्रति बहुत सावधान रहीं। मुद्रणाधिकार पुस्तकालय को लगभग पूर्ण रूप से सदैव बन्द रखा जाता था।

३२१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

किन्तु कुछ शताब्दियों के अनुभव के पश्चात् अधिकतर सरकारों ने मद्रणाधिकार पुस्तकालय का राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालयों के साथ एकीकरण कर दिया। इससे यह सुविधा हुई कि मद्रणाधिकार द्वारा प्राप्त पुस्तकों को दूसरी प्रणालियों द्वारा प्राप्त की गई पुस्तकों से अलग रखा गया। इसका प्रभाव यह भी पड़ा कि राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय के निर्माण में धन की बचत हुई और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुस्तकालय सेवाओं तथा पुस्तकालय-विज्ञान के सुधार में कई प्रकार से उन्नति हुई; जैसाकि आपको पुस्तकालय-संगठन का अध्ययन करते हुए ज्ञान होगा। इस स्थल पर मैं कह सकता हूँ कि भारत को अभी राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय की स्थापना करनी है। इसकी स्थापना में भारत को राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय के विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं को छोड़ देना चाहिए। अन्य राष्ट्रों के अनुभवों से कुछ सीखना चाहिए और यदि सम्भव हो सके तो उनसे आगे कदम बढ़ाना चाहिए। उदाहरणार्थ मैं इस पक्ष का समर्थन करता हूँ कि राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय, राष्ट्रीय दायक पुस्तकालय और मद्रणाधिकार पुस्तकालय सब को मिलाकर एक राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय बना देना चाहिए। इसको कई नये कार्य करने चाहिए। जब आप पुस्तकालय संगठन पढ़ेंगे उस समय आप मेरे इस सुभाव के विवरणों को पूर्ण रूप से देख सकेंगे।

३२१. नगर पुस्तकालय

अब तक हम इस प्रकार के पुस्तकालयों पर विचार कर रहे थे जो समस्त राष्ट्र की सेवा की क्षमता रखते हैं। अन्य पुस्तकालयों पर विचार करने की एक तो यह रीति है कि हम राष्ट्र के विभिन्न वर्गों की श्रेणियां बना कर विभिन्न पुस्तकालय रीतियों पर विचार करें। ऐसा करने में या तो पुस्तक-सेवा की एक प्रणाली की, अथवा एक विशेष प्रकार के पुस्तक-संग्रह की आवश्यकता होगी। वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनके द्वारा हम राष्ट्र के अपेक्षाकृत छोटे समूह पर विचार कर सकते हैं और उस समूह की एक विशेष प्रकार के पुस्तकालयों द्वारा अधिक अच्छी सेवा हो सकती है? ऐसा एक सिद्धान्त "निवास" है — समस्त देश की अपेक्षा एक छोटे से समीपस्थ क्षेत्र में निवास। विभिन्न उद्देश्यों के लिए, देश के विभिन्न क्षेत्रों के भाग किये जा सकते हैं। ये भाग अथवा श्रेणियां पृथक इकाई के रूप में इस प्रकार हो सकते हैं: राज्य, जिला, नगर, उपनगर, ग्राम तथा उपग्राम।

अब हमें यह देखना है कि इनमें से किस इकाई के लिए किस प्रकार के पुस्तकालय की आवश्यकता है। क्या राज्यों में आवश्यकता है? तब तो केंद्रीय राज्य

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[३२२]

पुस्तकालयों की इसी प्रकार आवश्यकता होगी जिस प्रकार राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय की है। ऐसा भारत और अमेरिका में ही होगा जहां क्षेत्रफल के कारण सरकार की एक इकाई सम्भव नहीं वरन् वहां संयुक्त राज्य सरकारें हैं। इंग्लैण्ड जैसे छोटे देश में संयुक्त राज्यों का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः वहां प्रान्त अथवा राज्य पुस्तकालयों की आवश्यकता ही नहीं होगी। इतिहास साक्षी है कि अपने ढंग के पुस्तकालय सर्वप्रथम नगरों की इकाई में ही स्थापित किए गए थे। ऐसे पुस्तकालयों को हम नगर पुस्तकालय कह सकते हैं। इस प्रकार के पुस्तकालयों का अभिप्राय स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करना, और सभी नगरवासियों की सेवा करना है। इस पुस्तकालय में ऐसी पुस्तकें नहीं खरीदी जातीं जिनका राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय अथवा राज्य केंद्रीय पुस्तकालय में यदावदा उपयोग किया जाता हो अपितु राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बचत का ध्यान रखते हुए बहुधा अधिक उपयोग में आने वाली पुस्तकें ही नगर पुस्तकालय में खरीदी जाती हैं। इस प्रकार के पुस्तकालयों में नगरवासियों द्वारा एकत्र की गई पूंजी लगाई जाती है और उन्हीं का उस पर अधिकार होता है। दूसरे शब्दों में कहिये नगर-पालिका अथवा नगर-निगम इसका संचालन करते हैं। ऐसे पुस्तकालय का भवन नगर के विस्तार पर निर्भर करेगा। एक नगर में एक विशाल केंद्रीय पुस्तकालय-भवन हो सकता है और कुछ छोटे पुस्तकालय-भवन नगर के विभिन्न भागों में शाखा पुस्तकालय के रूप में भी खोले जा सकते हैं।

३२२. ग्रामीण पुस्तकालय

जिले के लोग, या कहिए एक जिला — जहां सरकारी आय का साधन होता है, (जो स्थानीय ढंग के कार्यक्षेत्र की प्रबन्ध समस्याओं के लिए एक सामान्य इकाई कहा जा सकता है) इनको नगरों और जिलों के अन्य क्षेत्रों में विभक्त कर दिया जाता है। ऐसे भागों को सामान्य रूप से ग्रामीण क्षेत्र कहा जाता है। वैसे तो यह अन्तर भारी जनसंख्या के आधार पर ही किया जाता है किन्तु व्यावहारिक रूप में स्थानों की श्रेणी स्थानीय जनसंख्या के आधार पर ही निर्धारित की जाती है। ऐसा किसी विशेष आधार पर नहीं होता वरन् स्वच्छंद रूप से ही किया जाता है। पुस्तकालय के प्रयांजन के लिए तो १,००,००० की जनसंख्या वाला स्थान नगर कहलायेंगे और इससे कम जनसंख्या के अन्य स्थान ग्रामीण क्षेत्र कहलायेंगे। इस ग्रामीण क्षेत्र में भी हम तीन भाग कर सकते हैं, उपनगर — जिसकी जनसंख्या ५,००० से १०,००० के बीच हो, ग्राम — जिसकी जनसंख्या १,००० से ५,००० के बीच हो, तथा

३२२]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

उपग्राम — जिसकी जनसंख्या १,००० से कम हो। उपनगर, ग्राम, एवं उप-ग्राम में कहीं भी लाभदायक पुस्तकालय नहीं खोला जा सकता, क्योंकि इन स्थानों के आय के साधन और यहां के निवासियों की कर देने की क्षमता सीमित होती है। अतएव पुस्तकालय प्रायः जिले में खोला जाता है और इसके द्वारा ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। इंग्लैण्ड में लगभग ५० प्रतिशत लोग नगरों में रहते हैं। इस कारण वहां ग्रामीण पुस्तकालयों का विकास देर से हुआ। इसके विपरीत भारत की लगभग ७५ प्रतिशत जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। अतः भारतीयों के लिए पुस्तकालय-सेवा मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों पर ही निर्भर करेगी। इस प्रकार के पुस्तकालयों पर हमें विशेष ध्यान देना होगा। ग्रामीण क्षेत्र में पुस्तकालय की स्थापना एक बड़े क्षेत्र में बिखरी होती है। किन्तु नगर में पुस्तकालय के सदस्य एक छोटी परिधि में सिमटे होते हैं। अतएव नगर-पुस्तकालय सेवा एवं ग्राम-पुस्तकालय सेवा की रीतियों में अन्तर होना ही चाहिए। उचित तो यह होगा कि पुस्तकालय की स्थापना एवं प्रतिपादन का भार उस क्षेत्र के जिले अथवा तालुक-बोर्ड के हाथ में हो। इसके केन्द्रीय भवन में वाचनालय की आवश्यकता नहीं क्योंकि नगर-पुस्तकालय की भांति यहां पाठकगण इसमें नहीं आ सकते। वे पुस्तकालय तक आने में असमर्थ होंगे। हां, यहां मोटर गाड़ियों के लिए गैररेज का स्थान अवश्य होना चाहिए। निश्चित समय की अवधि पर पुस्तकें उपनगरों, ग्रामों तथा उपग्रामों में पहुँचाई जानी चाहिए। उपनगरों में इसकी शाखाएं तथा ग्रामों में इसके पुस्तकें साँपने के स्थान भी होने चाहिए। यह सब बताने का मेरा तात्पर्य यह है कि नगर तथा ग्रामीण पुस्तकालयों को हमने उचित रूप से दो प्रकार के पुस्तकालयों में विभक्त कर लिया है। किन्तु दोनों की विशेषता एक ही है। दोनों स्थानीय आवश्यकताओं को ही पूरा करते हैं और दोनों अपने विधि-विधान में स्थानीय ही हैं। अतः हम इन दो प्रकार के पुस्तकालयों के समुदाय के लिए एक सामान्य लेबुल का प्रयोग कर सकते हैं। आप लोग क्या नाम सुझाते हैं?

कक्षा — स्थानीय पुस्तकालय।

हां, मैं मानता हूँ। किन्तु मैं आपको यह बता दूँ कि इसके प्रयोग के लिए एक अन्य शब्द सार्वजनिक पुस्तकालय भी मिलता है। इस विचित्र से शब्द का अर्थ आपको पुस्तकालय-संगठन के अध्ययन के समय बताया जायगा। अभी तो आप सार्वजनिक पुस्तकालय शब्द का अर्थ स्थानीय-पुस्तकालय ही समझिये।

३३. शैक्षणिक पुस्तकालय

अब, उदाहरण के लिए, हम उन पुस्तकालयों पर विचार कर सकते हैं जो संस्थाओं से सम्बन्धित होते हैं। इनमें वे संस्थाएँ हैं जहाँ पुस्तकालयों को बहुत पहले से मान्यता दी जाती रही है। इन संस्थाओं में विधिवत् शिक्षा दी जाती है, जैसे स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय। इन्हीं संस्थाओं के साथ हम शोध-संस्थानों को भी मिला सकते हैं, जैसे बंगलौर की इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स और बंबई की टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेंटल रिसर्च। इस प्रकार के पुस्तकालय राष्ट्र की जनसंख्या के केवल उस भाग की सेवा करते हैं जो ऐसी संस्थाओं में अध्यापक हों अथवा विद्यार्थी हों। यह भी मान लेना चाहिए कि ऐसे पुस्तकालयों का आर्थिक प्रबन्ध एवं उन पर अधिकार उनसे सम्बन्धित संस्था का ही होता है। यहां पुस्तकें भी केवल संस्था की आवश्यकता के अनुसार ही निर्धारित की जायेंगी। इसके अतिरिक्त पुरानी पुस्तकों के स्थान पर बहुधा नई पुस्तकें बदलनी होंगी। अच्छा हो यदि ऐसे पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या की सीमा निर्धारित करली जाय। पुरानी पुस्तकों के निकालने के बाद ऐसे पुस्तकालय के विकास में पुरानी पुस्तकों के स्थान पर नई पुस्तकें बदलना ही रह जाता है। अन्य नई पुस्तकें लाकर वृद्धि नहीं की जाती। ऐसे पुस्तकालय-भवन का इतना अप्रत्याशित विकास सम्भव नहीं जितना राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय अथवा स्थानीय पुस्तकालयों का हो सकता है। अतः हम इस प्रकार के पुस्तकालयों को शैक्षणिक पुस्तकालय का नाम देंगे।

शिक्षा संस्थाओं में केवल चार प्रकार के उपरोक्त पुस्तकालय हो सकते हैं जैसे स्कूल पुस्तकालय, कालेज पुस्तकालय, विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा शोध संस्थान पुस्तकालय। अब हमें अन्य संस्थाओं पर भी दृष्टिपात करना चाहिये।

३४. व्यावसायिक पुस्तकालय

३४१. औद्योगिक पुस्तकालय

बड़े पैमाने के औद्योगिक उत्पादनों में यंत्रों का प्रयोग तथा बढ़ती हुई जनसंख्या की मांग की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि वस्तुओं में तथा उत्पादन-रीति में निरंतर प्रगति होती रहे। इसके लिए शोध एवं अनुसंधान के द्वारा उद्योगों का बुद्धिमत्तापूर्ण अध्ययन आवश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन का प्रभावपूर्ण विस्तार कारीगरों में भी होना चाहिए। बहुत समय बाद इस बात का यह प्रभाव हुआ कि उद्योग-भवनों तथा व्यवसाय-केंद्रों में सुयोग्य शोध-कार्यकर्ता एवं सामान्य

३४२]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

कारीगरों के लिये पुस्तकालयों की स्थापना करनी पड़ी। इस प्रकार के पुस्तकालयों को हम औद्योगिक-पुस्तकालय कह सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनकी अर्थ-व्यवस्था का भार और उत्तरदायित्व इनसे सम्बन्धित व्यावसायिक केंद्रों पर ही होगा। इनमें पुस्तकों का संग्रह भी एक विशेष प्रकार का होगा। उद्योग-विशेष की आवश्यकतानुसार ही इनमें संग्रह होगा। इनमें बिल्कुल ताजी सूचना निरन्तर विकसित होनी चाहिए और पुरानी और बेकार सामग्री को एकदम छांट कर अलग कर देना चाहिये। इस प्रकार का पुस्तकालय अपने से सम्बन्धित उद्योग के प्रत्येक कर्मचारी की आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान देगा। इसमें केवल आवश्यकता के लिए ही नहीं बरन् पूर्वज्ञान कराने के लिये पाठ्य-सामग्री प्रकाशित करनी होगी। इसलिए इसकी सेवा का रूप विशिष्ट और सजीव होना चाहिये। इस प्रकार के पुस्तकालय-भवन का विस्तार सीमित ही होता है।

३४२. समाचारपत्र कार्यालय पुस्तकालय

मेरे विचार में समाचारपत्र उद्योग एक विशेष प्रकार का उद्योग है। यह मेरा विचार ही नहीं अपितु दृष्टिकोण भी है। यह प्रकाशित रूप में मिश्रित सामग्री प्रस्तुत करता है। संवाददाता मानव-समाज तथा उनकी प्रवृत्तियों के निरीक्षण से आधार-सामग्री एकत्रित करते हैं। किन्तु संशोधन करने एवं आधार-सामग्री को सहायक क्रम में रखने के लिये पूर्व प्रकाशित सामग्री से पर्याप्त सहयोग लेना पड़ता है। मद्रास के समाचारपत्र कार्यालयों में इस कार्यवाही के भार का अनुभव मैं प्रतिदिन ही करता था। उस समय उनका पुस्तकालय शिक्षित कार्यकर्ताओं से इतना सुसंगठित नहीं था कि उनके पुस्तक-संग्रह से कोई सूचना प्राप्त की जा सके। इसी कारण मेरे पुस्तकालय (मद्रास विश्वविद्यालय पुस्तकालय) का टेलीफोन बहुधा उनसे ही मिला रहता था। समाचारपत्र पुस्तकालय में विदेशी घटना का कोई भी तार आता तो मेरे पुस्तकालय के कर्मचारी घटना के स्थान की प्राकृतिक स्थिति, वहां के भवन और वहां के प्रसिद्ध व्यक्तियों के विषय में विश्वस्त सूचना खाजने में व्यस्त हो जाते। कहीं बार तो उनके अपने समाचारपत्रों से मुझे ही कच्चा सूत्र खोजने पड़े। वे समाचारपत्र उनके ही कार्यालय में अव्यवस्थित रूप में निरर्थक से पड़े रहते। किसी पुस्तकालय-विज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्ति के हाथों में उनकी देखरेख नहीं थी। दैनिक समाचारपत्रों में चित्र देना उन दिनों प्रचलित हुआ जब मद्रास विश्वविद्यालय पुस्तकालय का प्रबन्ध मेरे हाथों में था। प्रारम्भ में तो हमारी पुस्तकालय-सामग्री में पुस्तकों के चित्र उन्हें असमंजस में

हाल देते और उनसे ही वे चित्र उद्धृत किया करते। बाहर के पुस्तकालयों पर निर्भर करने के इस प्रकार के अनुभव के कारण समाचारपत्र कार्यालयों को शीघ्र ही अपने पुस्तकालयों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस प्रकार के पुस्तकालय के सदस्य केवल समाचारपत्र कार्यालय के कर्मचारी ही होते हैं। ऐसे पुस्तकालयों पर कार्यालय का ही अधिकार होता है और आर्थिक-व्यवस्था भी वही करता है। इसकी सामग्री एवं सेवा की एक विशेषता यह होनी चाहिए कि पुस्तकालय प्रस्तुत-संदर्भ-सेवा करने में पूर्ण समर्थ हो सके। इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रकार के पुस्तकालय के कर्मचारियों का एक विशेष कार्य यह है कि वे मुद्रित समाचारों एवं चित्रों की सूची बनाने का सदैव ध्यान रखें। यह स्थानीय समुन्नत सूची “हूज हू” तथा “शब्दकोश” जैसे प्रस्तुत-संदर्भग्रन्थों की शेषपूर्ति करेंगी। इस पुस्तकालय-भवन का विस्तार सीमित ही होगा।

३४५. वाणिज्य पुस्तकालय

आज हमारे युग में एक प्रकार का जो कार्य-व्यापार जटिल होता जा रहा है, वह है वाणिज्य। वे शक्तियाँ जो वाणिज्य का स्तर, विस्तार तथा दिशा निर्धारित करती हैं—अब सरल एवं स्थानीय नहीं रहीं। आजकल तो वाणिज्य निश्चय ही एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय घटना है जिसमें सभी असुविधाएं उत्पन्न होती हैं। राष्ट्रों के आधार पर राजनैतिक हठधर्मियों के कारण उत्पन्न होने वाले विघ्नों से आशंकाएं और आश्चर्य बढ़ते हैं। कोई घटना किसी भी स्थान में हो जाय, वाणिज्य की गति में उतार-चढ़ाव हो जाता है, चाहे वह घटना संसार के किसी भी भाग में क्यों न घटी हो। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार की घटना हो, वायुमण्डल, बाढ़ अथवा अग्नि सम्बन्धी, धार्मिक, दार्शनिक अथवा विचारों का परिवर्तन, राजनैतिक अथवा आर्थिक नीति, एक या अनेक राष्ट्रों में राजनैतिक सम्बन्ध अथवा किसी भी विज्ञान-क्षेत्र में अनुसंधान होना, इत्यादि, इत्यादि। यदि वाणिज्य-व्यवसाय को दबाव सहना है तो उसे इस प्रकार की घटनाओं की सूचना प्रतिपल मिलती रहनी आवश्यक है—तभी उन्नति हो सकेगी। व्यापार से सम्बद्ध पुस्तकालयों में वाणिज्य सलाहकारों की वार्षिक-पुस्तकों तथा खड़ी फाइलों द्वारा आश्चर्यजनक सहयोग मिलने लगेगा। वाणिज्य पुस्तकालयों को एक ऐसी युक्ति निकालनी चाहिए जिससे स्वतः ही पूर्ण सावधानी एवं तीव्र गति से वार्षिक-पुस्तकों और फाइलों संजोकर रखी जा सकें तथा उनमें से आवश्यक सूचनाएं इस प्रकार एकत्र कर ली जायें जिनका सदुपयोग हो सके। इस प्रकार की सेवा की आशा किसी

३४८]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

साधारण स्थानीय पुस्तकालय से नहीं की जा सकती। उदाहरणार्थ, अखिल भारतीय वाणिज्य संघ यदि अपने पुस्तकालय पर ध्यान दे तो अपनी क्षमता दस गुनी बढ़ा सकता है। एक ऐसे योग्य व्यक्ति को पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त करे जिसकी अच्छी सामाजिक स्थिति हो। उसकी योग्यता के कारण उसमें श्रद्धा बढ़ेगी और वह अपनी सुविधा के लिए कर्मचारी भी नियुक्त कर लेगा। वह भारतीय वाणिज्य की प्रगति में भी पर्याप्त सहयोग दे सकेगा। किसी एक वस्तु अथवा वस्तुओं से सम्बन्धित वाणिज्य-केंद्रों को इस प्रकार के विशेष पुस्तकालयों का प्रतिपादन करना चाहिए। संसार में बहुत से देशों के वाणिज्य-केंद्रों ने अपने पुस्तकालयों के साथ उपरोक्त व्यवहार प्रारम्भ कर दिया है। परिणामस्वरूप वे उन देशों से आगे निकल गए हैं जिनमें यह सब नहीं होता।

३४८. विभागीय पुस्तकालय

किसी भी देश में आज का सर्वाधिक शक्तिशाली, जटिल एवं प्रभावशाली कार्य है वहां की अपनी सरकार। पिछली शताब्दी में राज्य के अधिकार-क्षेत्र का अपरिमित विस्तार हुआ है। संघर्षों के कम होने पर भी आज के युग में हम बिना पक्षपात के यह कह सकते हैं कि प्रत्येक देश की शासन-व्यवस्था इतनी जटिल होती जा रही है कि केवल प्रेरणा, अनुभव अथवा व्यावहारिक बुद्धि के बल पर शासन ठीक प्रकार नहीं चल सकता। ठीक शासन-व्यवस्था अच्छी सूचनाओं पर निर्भर होनी चाहिए। जनसंख्या एवं प्राकृतिक-साधनों की अपनी दौड़, शासकीय-नीति और प्रबन्ध संचालन पर सब ओर से भार बन रही है। यह भार उचित सूचनाओं द्वारा ही उठाया जा सकता है और ये सूचनाएं मान्यता प्रदान सांख्यिकी रीति द्वारा वास्तविक तथ्यों पर आधारित होनी चाहियें। आज छोटे-बड़े सभी प्रशासकों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उन्हें संसार के भौतिक पदार्थों की सम्पूर्ण स्थिति तथा उनकी उपलब्धि के उपायों का पूरा-पूरा व्योरा मिलता रहे, जो आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं से ही प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी स्थिति को बिना श्रम-विभाजन के नहीं सुलभाया जा सकता। मंत्री तथा प्रशासक-गणों को अपना कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने-अपने विभागों में एक-एक पुस्तकालय-विभाग खोलना चाहिए। यह सच है कि भारत सरकार के कुछ विभागों में स्वतंत्र रूप से अपने पुस्तकालय विद्यमान हैं। उनमें पर्याप्त सुधार भी हुआ है। किन्तु ये पुस्तकालय केवल नाममात्र हैं। इनमें नियुक्त पुस्तकाध्यक्षों के स्तर में एवं पुस्तकालयों के संगठन तथा साज-सामान में कुछ ही उन्नति

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[३५१]

हुई हैं। किन्तु आज के प्रशासकीय-विभागों में संसार में हो रही हलचल और उसके अनुकूल राष्ट्र के करोड़ों लोगों में मिल कर काम करने की भावना जागृत करनी है। यह कार्य अन्य राष्ट्रों से पृथक रह कर नहीं हो सकता। ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब विभागों के अधिकारी दूसरे नये प्रकार के अधिकारियों से एकता का व्यवहार करें जो हर प्रकार से उनके समक्ष हों और जो प्रकाशित सामग्री के एकत्र करने में, संगठन करने में और रूप बनाने में विशेषज्ञ हों। इस प्रकार विभाग की कोई भी समस्या तुरन्त ही उचित रीति से सुलभ सकेगी। विभागीय पुस्तकाध्यक्ष को अन्य अधिकारी वर्ग के समक्ष रखने पर ही ऐसा सम्भव हो सकेगा।

३५. विशेष पुस्तकालय

हमने राष्ट्रवासियों के निवास-स्थान तथा संस्थाओं से उनके सम्बन्ध के आधार पर अब तक कुछ भाग बनाए। इन भागों से हमें अन्य भाग भी मिले जिनमें दो प्रकार के स्थानीय पुस्तकालय, चार प्रकार के शैक्षणिक पुस्तकालय तथा चार प्रकार के व्यावसायिक पुस्तकालय भी सम्मिलित हैं। अब हम कुछ विशेष प्रकार के पुस्तकालयों के भाग बनाएंगे जो जनता के विशेष वर्ग की सेवा करेंगे—ऐसा वर्ग जिसमें कुछ न कुछ कमी है।

३५१. बाल पुस्तकालय

मैं जिस वर्ग की सर्वप्रथम चर्चा कर रहा हूँ वह जनता का ऐसा वर्ग है जिसका मस्तिष्क अब तक अपरिपक्व है—किसी रोग के कारण नहीं वरन् प्राकृतिक अवस्था के कारण। राष्ट्र के बालक अथवा कहिये राष्ट्र के वे लोग जो १५ या १६ वर्ष की आयु के नीचे हैं—पुस्तकालयों के दृष्टिकोण से एक विशेष वर्ग में आ जाते हैं। मस्तिष्क के अविकसित होने के कारण वयस्कों के उपयोग में आने वाली पुस्तकें उनके लिए अनुपयुक्त हैं। पहली बात तो यह है कि ऐसी पुस्तकों की भाषा बालकों की सहज बुद्धि के परे होती है। दूसरे उनकी विचारधारा एक विशेष प्रकार की होती है जो सरलता से समझ में नहीं आ सकती। तीसरे प्रारम्भिक ज्ञान के कारण इनका मस्तिष्क ठूसने के बजाय नवीनता चाहता है। बालकों के सहज प्राकृतिक ज्ञान के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनकी पुस्तकें प्राँदों की पुस्तकों की अपेक्षा अधिक चित्रित एवं आकर्षक होनी चाहिए। बाल-पुस्तकों में

३५३]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

कुछ सुधार अवश्य हुआ है किन्तु यह सन्तोषजनक सुधार नहीं। इन पुस्तकालयों में सेवा की रीति भी बालकों की वृद्धि के अनुसार ही होगी। इसके अतिरिक्त उनकी अविकसित शारीरिक अवस्था के अनुसार ही पुस्तकालय का साज-सामान होगा। बाल-पुस्तकालयों में साज-सामान की सामान्य ऊँचाई प्राँदों के पुस्तकालयों से कम होगी। इतना ही नहीं इसका प्रभाव इस प्रकार के पुस्तकालय के विस्तार पर भी पड़ेगा। किसी भी स्थान के बालक अपने स्थानीय पुस्तकालय से लाभ उठा सकते हैं। अतएव बाल-पुस्तकालयों पर स्थायी-प्रशासन का अधिकार और उसी के द्वारा अर्थ-व्यवस्था भी होनी चाहिए। पश्चिमी देशों में स्थानीय पुस्तकालयों में ही — जिन्हें वे सार्वजनिक पुस्तकालय कहते हैं — एक बाल-विभाग होता है।

वक्षा — क्या यह स्कूल पुस्तकालय से भिन्न है ?

यह एक तर्कसंगत विषय है। ऐतिहासिक कारणों से बालकों की स्कूल में अध्ययन की अनिवार्य आयु बहुत दिनों तक १६ वर्षों से भी कम रही। इसी कारण बहुत से बालक स्कूल पुस्तकालयों का लाभ नहीं उठा सके। अतः पश्चिमी देशों को अपने सार्वजनिक पुस्तकालयों में बाल-विभाग खोलने पड़े। किन्तु भारत वर्ष में स्थिति सर्वथा भिन्न है। हमारी बहुत सी वस्तियों में स्थानीय पुस्तकालय नहीं हैं और स्कूल-शिक्षा के लिए अनिवार्य आयु भी निर्धारित नहीं है। हमें इन दोनों समस्याओं पर प्रारम्भ से ही विचार करना है। मेरे विचार में हम इन दोनों समस्याओं का आपसी सम्बन्ध भी देख लें। ये समस्याएँ हमारे सम्मुख और देशों की अपेक्षा बड़ी दूर बाद आईं। अतः हम दूसरे देशों के अनुभवों से कुछ सीख सकते हैं। मेरी अपनी धारणा है कि हमें अपनी शिक्षा तथा पुस्तकालय पद्धति को इस प्रकार उन्नतिशील बनाना चाहिए जिसमें अधिक व्यय न हो। यह तभी सम्भव हो सकेगा जब हम अपने स्कूलों तथा बाल-पुस्तकालयों को उन देशों के समक्ष इस युक्ति से लाएं जिससे दोहरा काम न बढ़े। इन समस्याओं की विशुद्ध व्याख्या तब की जायेगी जब आप पुस्तकालय-संगठन विस्तार से पढ़ेंगे।

३५३. बन्दीगृह पुस्तकालय

एक विशेष प्रकार के पुस्तकालय की आवश्यकता हमारे समाज के उस वर्ग को भी है जो कारागार में बन्द है। इसमें तो कोई संशय नहीं कि बन्दी स्थानीय पुस्तकालयों में प्रवेश नहीं पा सकते। इसके अतिरिक्त जेल के अधिकारी जो व्यवहार उनसे करते हैं, उसके अनुसार कुछ पुस्तकें बन्दी नहीं पढ़ सकते, जैसे खून खोलाने वाले खूनी, डकैती तथा जासूसी उपन्यास उनके लिये

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[३५४]

हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। शिक्षाप्रद तथा ऐसी व्यवसाय सम्बन्धी पुस्तकों ही उनके लिए उपयुक्त होंगी जिस व्यवसाय में जेल के अधिकारी किसी बन्दी को डालना चाहते हैं। बन्दीयों की मानसिक अवस्था या तो असामान्य अथवा विषम तो होती ही है। उनकी संदर्भ-सेवा के लिए असामान्य मनोविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य है। बन्दीयों के लिये पुस्तकालय का स्थान बन्दीगृह ही है और यह भी आवश्यक है कि इनका अधिकार तथा अर्थ-व्यवस्था बन्दीगृह-अधिकारियों के ही हाथों में हो। किन्तु संसार में कहीं भी अभी तक पूर्णरूप से ऐसा नहीं हो सका। बन्दीगृह-पुस्तकालय का विचार ही अभी नवीन है। अभी तक यह मानव कल्याण की व्यक्तिगत भावनाओं पर ही आधारित है। महायुद्ध के पूर्व एक ऐसा पुस्तकालय मद्रास में था। किन्तु मानव कल्याण की भावना पर आधारित होने के कारण वह पुस्तकालय शीघ्र ही समाप्त हो गया। वहां बन्दीगृह-संगठन का एक विभाग खोल दिया गया। अब स्वतंत्र भारत दूसरे देशों के साथ इस कार्य में प्रगति करेगा। बन्दीगृह पर वास्तविक अधिकार तो सरकार का होता है। जब हमारी सरकार बन्दीगृह-पुस्तकालयों की स्थापना करने का विचार कर लेगी तब इनका नाम डिग्री पाठ्यक्रम के विशेष विषयों की निर्धारित सूची में आ जायेगा और दूसरे वर्ष में अध्ययन भी होने लगेगा। तब सरकार को अपने बन्दीगृह-पुस्तकालयों के लिए सरलता से विशेषज्ञ मिल सकेंगे।

३५४. अस्पताल पुस्तकालय

एक विशेष प्रकार के पुस्तकालय की एक अन्य वर्ग के अपाहिज लोगों को आवश्यकता रहती है। ये वे लोग हैं जिन्हें कुछ समय के लिए अस्पताल में रोगियों के रूप में रख दिया जाता है। उनमें भी विभिन्न उप-वर्ग हैं। सरजिकल-वार्ड के रोगी दिमाग से व्यवस्थित और सचेत रहते हैं। बिस्तर की लम्बी अवधि में आलस्य दूर करने के लिए उन्हें पुस्तकों का आनन्द देना आवश्यक है। उनको मनोरंजनात्मक और हल्का-फुल्का साहित्य ही नहीं देना चाहिए—बल्कि उनके विशिष्ट विषयों पर उपयुक्त पुस्तकों और ऐसी पुस्तकों देनी चाहियें जो उनके मानसिक विचारों का उत्थान कर सकें। फिर दूसरी ओर वहां ऐसे तेज बुद्धि से पीड़ित रोगी भी हैं जिनका पुस्तकों पढ़ना हानिप्रद है। फिर वहां ऐसे मानसिक रोगी भी हैं जिनकी चिकित्सा कुछ निश्चित पुस्तकों के अध्ययन से ही होती है। दूसरे शब्दों में "बिब्लियोथैरेपी" अर्थात् पुस्तक-चिकित्सा भी हो सकती है। वहां भी पुस्तकालय कर्मचारी को रोगी-मनोविज्ञान की विशेष शिक्षा मिलनी चाहिए और

३५६]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

रोगी की सेवा विशेष प्रकार से होनी चाहिये क्योंकि पुस्तकों को टाली में रखकर बिस्तर से बिस्तर तक ले जाना होगा। अस्पताल पुस्तकालय की सामान्य व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था का पूर्ण अधिकार स्वयं अस्पताल को ही होना चाहिए—जां दूसरे रूप में सरकार हुई। बन्दीगृह-पुस्तकालयों की ही तरह अस्पताल-पुस्तकालय लगभग सभी देशों में व्यक्तिगत जनकल्याण की भावना पर आधारित हैं। मद्रास में १९३० से १९३६ तक अस्पताल पुस्तकालय सेवा की रोगियों ने बड़ी सराहना की। यह जनता की मांग पर आधारित है, और अभी यह देखना है कि सरकार इसका ठोस और परिपक्व बनाने के लिए कौन से अगले कदम उठाती है।

३५५. नाविक पुस्तकालय

एक विशेष प्रकार के पुस्तकालय की आवश्यकता एक अन्य वर्ग को भी है—वे हैं राष्ट्र के समुद्री नाविक। यह वर्ग किसी सार्वजनिक पुस्तकालय से सीधा सम्बन्ध नहीं रख सकता क्योंकि इसका अधिकतर समय समुद्र की गाँव में व्यतीत होता है। इन लोगों को मनोरंजनात्मक, सूचनात्मक और आध्यात्मिक पुस्तकों की आवश्यकता है क्योंकि उनका मानसिक विकास भी होना चाहिये। उनकी सेवा के लिए पुस्तकालय के प्रकार में लगभग सभी भाँति की विशिष्ट समस्याएँ हैं—जैसे पुस्तक-चुनाव, अधिकार और अर्थ-व्यवस्था। यह रूप अभी कहीं-कहीं मिलता है। किन्तु विश्वास है कि यह पुस्तकालय शीघ्र ही स्थापित होगा। (नोट : आजकल ऐसे पुस्तकालय देखने में आ रहे हैं।)

३५६. अंध पुस्तकालय

क्या कोई अन्य अपाहिज व्यक्तियों का वर्ग भी है जिन्हें विशिष्ट प्रकार के पुस्तकालय की आवश्यकता है ?

कक्षा—गूंगे और बहरे लोगों के लिए।

मैं जानता हूँ कि गूंगे और बहरे, विशेष वर्ग के अपाहिज लोगों में हैं। उनकी शिक्षा किसी अन्य रूप से होती है, सो गूंगे और बहरे लोगों का स्कूल एक विशेष स्कूल है। पर एक बार वे शिक्षित हो गये, तो क्या यह सत्य नहीं कि वे किसी स्थानीय पुस्तकालय से पुस्तकें ले सकते हैं ? मैं मानता हूँ कि उनमें से कई तो किसी शिल्प में प्रशिक्षित हो जायेंगे और उस शिल्प से सम्बन्धित पुस्तकों की उन्हें आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु स्थानीय पुस्तकालय केवल स्थानीय अभिलेखि

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

[३९]

के अनुसार ही कला एवं शिल्प पर पुस्तकों संग्रहीत करेंगे। इस आधार पर मैं बहरे और गुंगों के लिए विशेष पुस्तकालय की आवश्यकता नहीं समझता। क्या आप किसी अन्य अपाहिज वर्ग या शारीरिक रोग से सम्बन्धित वर्ग का सुभाव दे सकते हैं ?

कक्षा—अंधे व्यक्ति।

हां, क्या आप सोच सकते हैं कि अंध पुस्तकालय का कोई अर्थ हो सकता है ? पढ़ने के लिए जो प्रारंभिक इन्द्रियां उपयोग में आती हैं, उनमें से एक आंख भी है। बिना आंखों के व्यक्ति कैसे पढ़ सकता है ? अंधों के लिए पुस्तकालय किस प्रकार संभव हो सकता है ?

कक्षा—उनके लिए एक विशेष प्रकार की पुस्तक होती है जिसे वह अपनी अंगुलियों के पोरों से पढ़ते हैं।

आपने ठीक कहा। मानवीय कल्पना-शक्ति ने ब्रैल-पुस्तकों का आविष्कार कर लिया है। इनमें उभरे हुए बिन्दुओं से भरा पृष्ठ होता है। जो सांकेतिक रूप में निश्चित प्रकार से व्यवस्थित होता है। अपनी अंगुलियों के पोरों से उन उभरे बिन्दुओं को अनुभव कर अंधे लोग भी पढ़ सकते हैं। मैं कई अंधे लड़कों को जानता हूँ जिन्होंने ऐसी पुस्तकें पढ़ कर विश्वविद्यालय की डिग्री-परीक्षा पास कर ली है। अंध पुस्तकालय को ब्रैल-पुस्तकों के निर्माण का अलग विशेष विभाग खोलना पड़ता है। यह विभाग अंधे पाठकों के घर में पुस्तकें भेजता है, जो सारे देश में जगह-जगह रहते हैं। संभवतः एक बस्ती में एक अंधे से अधिक तो नहीं होगा। अंधों का यह दूर-दूर का विभाजन यह प्रदर्शित करता है कि अंधों के लिए पुस्तक-सेवा स्थानीय पुस्तकालयों के संरक्षण में लाभदायक रूप में नहीं हो सकती। ऐसे पुस्तकालय भी अभी तक नाम मात्र हैं। सारांश यह कि एक राष्ट्र में अंधों का राष्ट्रीय पुस्तकालय एक से अधिक नहीं होना चाहिए जिसका अधिकार और अर्थ-व्यवस्था सरकार के हाथों में हो। मैं सोचता हूँ कि इसे राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय का भाग बनाना अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। उसे स्वतंत्र संगठन नहीं बनाया जाए। मेरे विचार से इसके लिए विशिष्ट प्रकार के पुस्तकालय पर ही विचार होना चाहिए।

३६. विशिष्ट सामग्रियों का पुस्तकालय

विशिष्ट पाठकों के वर्ग को बनाने की एक अन्य रीति भी है और वह है विशिष्ट प्रकार की सामग्री, जो उनके उपयोग के लिए सम्भव हो। इन पुस्तकालयों

३११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

को अपनी विशिष्ट सामग्री के आधार पर ही पुराता जायगा, और वह सामग्री विशिष्ट वर्ग के लिए ही होगी।

३६१. अभिलेख पुस्तकालय

हमारे यहां एक अभिलेख पुस्तकालय भी होना चाहिए। स्पष्ट है कि यह राष्ट्र के अभिलेखों का संग्रह करे, संगठित करे और अपने राष्ट्र के अभिलेखों की रक्षा भी करे।

व्याख्यान ४

पुस्तकालय-विज्ञान के कार्यक्षेत्र का विस्तार

यह व्याख्यान पुस्तकालय-संगठन के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं की व्याख्या करता है। स्थूल-पुस्तक-सूची में कागज, मुद्रण, जिल्दबंदी तथा संपूर्ण-पुस्तक के अंगों का वर्णन करता है। परिगणन-पुस्तक-सूची, ज्ञान-क्षेत्र एवं अपर-पुस्तकालय-विज्ञान, जैसे जटिल पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण करता है।

अपर-पुस्तकालय-विज्ञान

४१. पुस्तकालय-संगठन

नाना प्रकार के पुस्तकालयों में उलझा देने वाली सूची की चर्चा हम पिछले व्याख्यान में ही कर चुके हैं। अतः इन पुस्तकालयों का एक दूसरे से वास्तविक सम्बन्ध जानना आवश्यक है। इस विचार से हम यह कह सकते हैं कि अनेक पुस्तकालयों को सहायक भागों में रखा जा सकता है। उदाहरणार्थ—एक भाग को हम शैक्षणिक पुस्तकालय कहते हैं। कालेज पुस्तकालयों का ही रूप ले लीजिए। मुझे विश्वास है कि आप यह अनुभव करेंगे कि प्रत्येक कालेज पुस्तकालय का व्यय विश्वविद्यालय पुस्तकालय से असम्बद्ध रहने पर अधिक ही होगा। दूसरी ओर—विश्वविद्यालय के सभी कालेज पुस्तकालयों से हम पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं। ये ही एक रूप में बंध कर विश्वविद्यालय पुस्तकालय बन जाते हैं। इस कार्य प्रणाली में एक निश्चित विशेषता का होना आवश्यक है। पुस्तकालय-कार्यः यथा, वर्गीकरण, सूचीकरण तथा शैल्यवस्था में एकरूपता होनी चाहिए। समूचे भारत को समक्ष रखते हुए ऐसी ही समानता सभी विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में अनिवार्य है। अन्तर-पुस्तकालय-लेन-देन कार्य, ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में निश्चित विशेषता

तथा पुस्तकालय कार्यवाही में एकरूपता का होना अनिवार्य है। इससे न केवल विश्वविद्यालय पुस्तकालयों की आर्थिक स्थिति ही अच्छी होगी वरन् वे अपने उन पाठकों के लिए भी लाभदायक सिद्ध होंगे जो एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में आते-जाते रहते हैं। हमें यह याद रखना होगा कि प्रत्येक कालेज एवं विश्वविद्यालय स्वयं एक स्वाधीन संस्था है। सहयोग एवं समानता के लिए उनके विभागों में एक सुन्दर, संगठित तकनीकी रूप की आवश्यकता है।

इस प्रकार के लक्षण व्यापार पुस्तकालयों में भी अधिक स्पष्ट रूप से पाये जाने चाहियें। आइए, मैं पुस्तकालयों के एक वर्ग को चित्रित करता हूँ, जैसे औद्योगिक पुस्तकालय और इसका ही एक रूप है कपड़ा-उद्योग पुस्तकालय। भारत में प्रत्येक कपड़ा-उद्योग-व्यापार में एक अपना पुस्तकालय होना चाहिये। इस प्रकार कपड़ा-उद्योग पुस्तकालय देश के विभिन्न नगरों में फैले होंगे, जैसे मद्रास, कोयम्बतूर, बम्बई, अहमदाबाद तथा कानपुर। किन्तु इन पुस्तकालयों का व्यय बहुत अधिक होगा और कभी-कभी तो ये आत्मनिर्भर भी नहीं हो सकेंगे। इनका परस्पर सह-अस्तित्व आवश्यक है। जिस प्रकार हम विश्वविद्यालय पुस्तकालयों के विषय में कह चुके हैं ठीक उसी प्रकार ये पर्याप्त उच्च स्तर पर अपनी आर्थिक क्षमता तथा कार्यक्षमता को तो तभी बढ़ा सकते हैं जब कपड़ा-उद्योग पुस्तकालय एक अखिल-भारतीय केन्द्रीय-कपड़ा-उद्योग पुस्तकालय खोलने में समर्थ हो जाय। इस प्रकार की उन्नति संभवतः बम्बई राज्य के भारतीय केन्द्रीय रुई-उद्योग-संघ के पुस्तकालय ने की है। इन पुस्तकालयों का विशेष कार्य निरन्तर उच्च स्तर पर पुस्तक-सूची का निर्माण करना है, जो कि एक सामयिक पत्रिका के रूप में भारत की प्रत्येक औद्योगिक संस्था में पहुँचती रहे। इस प्रकार के पुस्तकालयों का क्रम सभी उद्योगों में होना चाहिए। हमारी राजनैतिक शिथिलता के कारण पुस्तकालय कार्य का विस्तार हमारे देश में अभी तक पूर्ण प्रगति पर नहीं है। किन्तु यह शिथिलता, स्वतंत्र भारत में अधिक समय तक नहीं चल सकेगी। यह एक असन्तोषजनक बात है कि अभी तक न तो औद्योगिक संस्थाओं ने, और न ही राष्ट्रीय अथवा सरकारी अधिकारियों ने इसकी आवश्यकता का अनुभव किया है। अब हमें यह देखना है कि हमारे चारों ओर पाश्चात्य देशों में यथा इंग्लैण्ड एवं अमेरिका में कितना विकास हो चुका है। यहां संगठन-समस्याएं काफी जटिल हैं जो व्यापारिक पुस्तकालयों से ही उत्पन्न होती हैं और इन्हें पुस्तकालय-व्यवसाय से ही सहायता मिलती है, तथा इन्हें "स्पेशल लाइब्रेरी एसोसियेशन" (विशेष-पुस्तकालय-समिति) ही सुलभाती है। इस एसोसियेशन की पत्रिका और कार्यवाही विचारों के आदान-प्रदान की नवीनता का ज्वलन्त प्रमाण है।

पुस्तकालय-विज्ञान के कार्यक्षेत्र का विस्तार

[४१]

मैं संगठन के सामान्य सिद्धान्तों के बारे में पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूँ। इनका प्रयोग पुस्तकालय-जगत में पुस्तकालय-विज्ञान की आवश्यक शाखाओं में किया जाता है। पुस्तकालय-संगठन कई रूपों और समस्याओं में हमारे सम्मुख आता है। यह विभिन्न स्तरों पर विभिन्न समाधान भी प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय का संगठन निजी समस्याएं उत्पन्न करता है। ये समस्याएं विभिन्न पुस्तकालयों के विभागों की सेवाओं और पुस्तकों से सम्बन्धित होती हैं। इसी प्रकार दूसरे देशों के राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालयों का अन्तर्राष्ट्रीय-पुस्तकालय-केंद्रों से सम्बन्ध रहता है, जो इस समय यूनेस्को स्थापित कर रहा है। यूनेस्को पुस्तक-सूची के निर्माण-कार्य को भी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित कर रहा है। इसके साथ ही यूनेस्को को पुस्तकालयों के तकनीकी ज्ञान को निखार कर व्यवस्थित करने और उसे बढ़ावा देने का कार्य भी करना है। इसे मुद्रणाधिकार नियम के संचालन का उत्तरदायित्व भी लेना चाहिए। विश्वविद्यालयों को भी इसे अपना सहयोग देना है। किन्तु इसमें पुस्तकालय-कर्मचारी और अर्थ-व्यवस्था की समस्याएं भी सम्मिलित हो जाती हैं। इस प्रकार की आवश्यक समस्याएं सबसे पहले मस्तिष्क में ही उद्भूत होती हैं। राज्यों के सम्बन्ध में संगठन अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। भारतीय संविधान में, अथवा अधिकतर सभी संयुक्त संविधानों में सार्वजनिक पुस्तकालय की सुविधाएं सरकार के संयुक्त भागों में विभक्त होती हैं। संसार की वर्तमान आधुनिक विचार-धारा सार्वजनिक पुस्तकालय का कार्य वैधानिक रूप में ला रही है। परिणामस्वरूप सरकार का एक अंग पुस्तकालय का उत्तरदायित्व स्थानीय विभागों को सौंप दे और वे उसका निर्देशन स्वयं करें, उसे जांचें और स्थानीय पुस्तकालयों की अर्थ-व्यवस्था को विकसित करें। इन सबका अर्थ, पूर्ण रूप से संगठित-कार्य है। स्थानीय स्तर पर पुस्तकालय-संगठन का अध्ययन स्थानीय विभाग की गाड़ी, पुस्तकालय समिति और पुस्तकाध्यक्ष से सम्बन्धित होगा। इसके द्वारा शाखा-पुस्तकालयों और चलते-फिरते-पुस्तकालयों की योजना के विकास में सहयोग प्राप्त होगा। ये एक महत्वपूर्ण सेवा की अपेक्षा रखते हैं। चलते-फिरते-पुस्तकालयों के प्रतिपादित-स्थानों और शाखा-पुस्तकालय के संस्थापन से शाखा-पुस्तकालय-समिति या ग्रामीण-पुस्तकालय-समितियों का विकास होगा। यह भी पुस्तकालय संगठन का एक अंग बन जायगा।

पुस्तकालय में ही संगठन का कार्य, प्रतिदिन का कार्यक्रम और कर्मचारियों का पुस्तकाध्यक्ष के प्रति व्यवहार तथा सम्बन्ध बहुधा संगठन के क्षेत्र में न आकर संचालन क्षेत्र में आते हैं। पुस्तकालय के संचालन में पुस्तक-चुनाव से लेकर कर्म

चारियों के कार्य तक का विवरण पहले व्याख्यान में दिया जा चुका है। इसी सूची में हम साधारण कार्यालय की कार्यवाही भी रख सकते हैं। जैसे—कर्मचारियों का कार्य, अर्थ-व्यवस्था, लेखा-जोखा, और संग्रह, इत्यादि। इतने विस्तार के बाद पुस्तकालय-संगठन में हमारा यह वैज्ञानिक कर्तव्य हो जाता है कि पुस्तकालय-विकास का आपसी सम्बन्ध स्थापित कर दें। आप कह सकते हैं कि अब एक राष्ट्र की सामाजिक रूपरेखा बन गई। दूसरे शब्दों में, पुस्तकालय-विज्ञान अन्य विषयों का भी निरूपण करे। जैसे—शिक्षा, राजनीति-शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र एवं विधि। ये विषय सामाजिक रूपरेखा का निरूपण करते हैं। अब आप यह अनुभव करेंगे कि पुस्तकालय-संगठन भी पुस्तकालय-विज्ञान की एक बहुत बड़ी शाखा है। इसे हम दूसरे व्याख्यान में बताई गई बारह समस्याओं में सम्मिलित कर सकते हैं।

४२. स्थूल-पुस्तक-सूची

अभी हमने पुस्तकालय-विज्ञान की समस्त समस्याओं पर विचार नहीं किया है। हमें यह स्मरण रखना है कि भौतिक रूप में जो वस्तु हमें पुस्तकालय में उपलब्ध होती है—वह है पुस्तक। हमने देखा कि पुस्तकों का क्रय करना और उससे पूर्व पुस्तकों का चुनाव करना, पुस्तकालय के आवश्यक कार्य हैं। चुनाव और पुस्तकों का क्रय तभी सुव्यवस्थित हो सकते हैं जब वे अपनी विशेषताओं की निश्चित परिधि के ज्ञान पर आधारित हों। आप साड़ियों को एकदम नहीं चुन सकते और न ही उन्हें खरीद सकते हैं, जब तक कि आप उनकी स्थिरता, काल्पनिक मूल्य, तथा बाजार में विविध डिजाइनों का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा लेते। अपने दैनिक उपयोग के लिए सज्जियों का चुनाव करने और खरीदने के लिए यह वांछित है कि आपको उसके स्वाद का ज्ञान, उसमें पौष्टिक तत्व तथा उसके वास्तविक मूल्य का ज्ञान हो। साज-सामान के चुनाव और खरीदने के लिए भी उसकी लकड़ी का ज्ञान, उसके निर्माण का क्रम और डिजाइन जिनमें वह प्राप्त होता हो—इन सभी बातों की जानकारी आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं कि आपको लकड़ी के सामान के निर्माण का अनुभव हो, या आपने सज्जियों के बाग में बागवानी की हो, या आपको बड़ईंगरी या खेत जोतने-बोने का कार्य आता हो। यही बात पुस्तकालयों में पुस्तकों के चुनाव और खरीदने के लिए भी है। इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए आपको पुस्तक-जगत से सम्बन्ध रखना आवश्यक है पर उतना नहीं जितना एक पुस्तक-व्यापारी रखता है।

पुस्तकालय-विज्ञान के कार्यक्षेत्र का विस्तार

[४२१]

इस अवस्था में मैं आपको और एक बार एक ओर तो पुस्तक तथा दूसरी ओर साड़ी, सब्जी और फर्नीचर का एक अनिवार्य अन्तर बतला दूँ। दूसरी ओर की वस्तुएँ केवल भौतिक श्रेणी में आती हैं—शुद्ध और साधारण भौतिक वस्तुएँ। किन्तु पुस्तकों के दो रूप हैं—मूर्त तथा अमूर्त। जैसा कि मैंने दूसरे व्याख्यान में बताया था कि पुस्तक का शरीर भी है और आत्मा भी। पुस्तक सशरीर विचार प्रकट करती है। इस प्रकार पुस्तक के चुनाव में हमें शारीरिक रूप और तात्त्विक रूप, दोनों का ही मूल्यांकन करना होता है। हम सबसे पहले उसके शारीरिक रूप का मूल्यांकन करेंगे। इस अध्ययन को हम स्थूल-पुस्तक-सूची कहते हैं। शारीरिक दृष्टि से, पुस्तक किस वस्तु की बनी है? इसके कितने मौलिक अंश हैं? वे कौन से मूल तत्व हैं जिनकी हमें जानकारी करनी चाहिये?

४२१. कागज

कक्षा—कागज !

हां। निश्चय ही कागज का अध्ययन पुस्तक के शारीरिक-विज्ञान की एक शाखा है। कागज की जिन समस्याओं पर हमें विचार करना चाहिये, वे ये हैं :

- १) वे वस्तुएँ जो उसके आधार और उसकी मजबूती को बढ़ा सकें;
- २) वह क्रियाविधि जिसके द्वारा मूल पदार्थ को कागज के रूप में परिवर्तित किया जाता है, विशेष रूप से उसकी मजबूती, स्थिरता तथा रूप अर्थात् संक्षेप में, कागज की किस्म (कोटि) पर विचार;
- ३) सहायक वस्तुएँ जो इसमें प्रयुक्त होती हैं, विशेष तौर से उनका उपयोग और उनका मूल वस्तुओं पर प्रभाव;
- ४) वे नाप जिनमें कागज का निर्माण होता है और वे निर्धारित रीतियाँ जिनके अनुसार कागज को पुस्तकाकार बनाने के लिए मोड़ने की क्रिया-विधि हो; और
- ५) कागज की किस्म का इतिहास, जल-निचह, आकार-प्रकार (यदि हम पुराने संस्करणों को उनके ऐतिहासिक महत्व के कारण खरीदने के इच्छुक हों।)

इतना सब आपको कागज के बारे में जानना चाहिए। पर मैं इतना आपको और याद दिला दूँ कि मेरा उद्देश्य आपको कागज-निर्माता बनाने का नहीं, बरन् यह कि आप पुस्तकों का चुनाव उनके आकार-प्रकार तथा शारीरिक बनावट के

४२२]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

आधार पर योग्यता से कर सकें। आइए हम पुस्तकों के निर्माण-विज्ञान पर दृष्टि डालें।

कक्षा—जिल्द-बन्दी ?

क्या यह संभव है ? आप किस वस्तु को जिल्द-बन्द करेंगे ? आपके पास जिल्द-बन्द करने के लिए है क्या ? क्या आप कोरे एन्नों को इकट्ठा कर पुस्तक के रूप में जिल्द-बन्द कर देंगे ? तब आप एक कृत्रिम पुस्तक पाएंगे, वास्तविक पुस्तक नहीं !

४२२. मुद्रण

कक्षा—मुद्रण।

बिल्कुल ठीक। अब स्थूल-पुस्तक-सूची के अन्तर्गत आप दूसरा विषय पढ़ेंगे—“मुद्रण।” आइए हम इसका अनेक भागों में विश्लेषण करें। मुद्रण क्या है ? सम्भवतः आप कभी इस प्रकार की समस्या को वास्तविक रूप में नहीं आंक सकते हैं ! पुस्तकाध्यक्ष के नाते आपको ऐसे जटिल कार्य का अध्ययन सूक्ष्मता से करना होगा, और उस प्रत्येक पेचीदा समस्या का बड़े सुलभे हुए तरीके से समाधान करना होगा जो आपके दैनिक कार्यों में उत्पन्न होती है।

ऐसी समस्याएं जीवन के प्रत्येक मोड़ पर अनिवार्य रूप से आती हैं। किन्तु हमारी शिक्षा-प्रणाली का पिछली शताब्दी से एक दुर्भाग्यपूर्ण रूप रहा है। एक ओर तो हमारे विद्यार्थी इतने शिक्षित नहीं हैं कि वे एक समस्या पर गंभीरता-पूर्वक प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार कर पाएं, उसकी चरमता और परिणाम को जानने के इच्छुक हों, और उस समस्या को दोबारा उठाने का अवसर ही न दें। दूसरी ओर हमारी शिक्षा का ढंग प्रोत्साहित करने का नहीं बरन् अत्यन्त छिछला और बेढंगा है। केवल कंठस्थ करना अर्थात् समस्या के मौखिक रूप तथा अध्यापक के शब्दों को रटना ही अध्ययन रह गया है। आपको कोई सरोकार नहीं कि अध्यापक क्यों और क्या कह गया और उन शब्दों में निहित अर्थ क्या है ? मुद्रण की कुछ शब्दों में व्याख्या करने में आप असमर्थ रहे जबकि बाल्यकाल से ही आप मुद्रित सामग्री का उपयोग करते आये हैं। यही शिक्षा प्रणाली की अपरिपक्वता का प्रमाण है। आपको केवल रटना ही सिखाया गया है। आप मुद्रण को धुंधले रूप में अच्छी तरह जानते हैं, किन्तु आप इसे कुछ शब्दों में प्रगट नहीं कर पाते। जब तक कि आप समस्याओं को बिल्कुल स्पष्ट रूप से नहीं देख लेते तब तक आप उन्हें उन्हीं शब्दों में नहीं कह सकते। आप यह नहीं जानते कि मुद्रण में आपको क्या अध्ययन करना है ? शब्दकोश देखिए, वहां मुद्रण के कई

पुस्तकालय-विज्ञान के कार्यक्षेत्र का विस्तार

[४२२]

अर्थ मिलेंगे। अब अभ्यास करिए, चाहे गलत ही हो, उसकी उस व्याख्या को चुनिए, जो आपके मस्तिष्क में धुंधले रूप में गुंथी है। चलिए यह कोश में मुद्रण का अर्थ उत्पन्न करना है। (पुस्तक, चित्र इत्यादि को स्याही की टाईप, ब्लाक, प्लेट, कागज या चमड़ा इत्यादि के माध्यम से।)

इस प्रकार मुद्रण की परिभाषा में पांच तत्व प्रकाश में आए :

- १) कागज, चमड़ा इत्यादि—(यह हम पहले ही स्थूल-पुस्तक-सूची में सम्मिलित कर चुके हैं);
- २) टाईप (मुद्र), ब्लाक (ठप्पा), प्लेट (पत्र);
- ३) कम्पाज करना (मुद्रयोजन करना);
- ४) स्याही;
- ५) स्याही के विभिन्न भाग, (३ उपरोक्त) और
- ६) जोड़ना; (१ और इसके पश्चात् ५)।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि हमें स्थूल-पुस्तक-सूची में निम्नलिखित बातें सम्मिलित करनी हैं :

- १) टाईप, टाईप-ढालना, टाईप-रूप, उनका प्रकार व माप, टाईप कम्पाज करना;
- २) ब्लाक, उसकी विभिन्नताएं और उनसे सम्बन्धित उपयोग;
- ३) प्लेट जिसका टाईप के आकार के अनुसार उपयोग होता है;
- ४) मुद्रण की स्याही और उसकी प्रयोग विधि; तथा
- ५) कागज पर मुद्रण।

इतना सब आपको अध्ययन करना है। इसको मैं पुनः दोहरा दूँ, जिससे आप अच्छे मुद्रक तो नहीं, बल्कि आप :

- १) विभिन्न मुद्रण सामग्रियों को उस कोण से जांचें कि पाठक में सुगमता से पढ़ने का प्रभाव पड़े;
- २) यह जान सकें कि किस प्रकार की मुद्रण भूलें पुस्तकों की महत्ता और पुष्टि को नष्ट कर देती हैं;

४२४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

- २) उनके टाइप-रूपों और मुद्रण-अभ्यास का इतिहास। (यदि हम पुराने संस्करणों को उनकी प्राचीनता के कारण प्राप्त करना चाहते हैं।)

४२३. जिल्द-बन्दी

अब जिल्द-बन्दी की बारी है। इसके बारे में किसी ने कुछ देर पहले कहा था। अब मैं पुस्तक की अपरिपक्व अवस्था को ठीक रूप से आपके सामने रखूंगा। कागज के पृष्ठों पर मुद्रण होने पर प्रत्येक पृष्ठ को मोड़ा जाता है और पुस्तकाकार बनाया जाता है, उनको आपस में बांधा जाता है और सिया जाता है, फिर पुस्तक को मोटे गत्ते से दोनों ओर से बांधा जाता है। ये गत्ते किसी स्थायी एवं चमकीली या आकर्षक वस्तु से ढक दिये जाते हैं, जैसे—चमड़ा, कपड़ा या कागज। और अंत में लेखक का नाम और पुस्तक का शीर्षक उस ढकी वस्तु पर अंकित किया जाता है। अधिकतर लेखक का नाम पुस्तक की पीठिका पर या मुख-पृष्ठ पर अंकित किया जाता है। आजकल पुस्तकों को कागज-जाकिटों से ढकते हैं। इस प्रकार जिल्द-बन्दी के अध्ययन में हमको निम्नलिखित बातें सीखनी होंगी :

- १) सीने के उपयोग में आने वाला डोरा तथा टेण और सीने का ढंग। हम एक दृष्टि उसकी दृढ़ता या नष्ट-प्रायता पर भी डालेंगे जिससे सिलार्ड अच्छी हो। चित्रों को जोड़ने का कार्य, प्लेटों और सब सामग्रियों का सम्मिलन;
 - २) गत्तों के लक्षण और वे किस प्रकार पुस्तक में लगते हैं। यहां एक बार और उसकी दृढ़ता या नष्ट-प्रायता की संभावनाओं पर दृष्टि डालनी होगी;
 - ३) कितने प्रकार की ढकने की वस्तुएं उपलब्ध हैं, उनके आन्तरिक लक्षण जिससे वे शीघ्र कटें-फटें नहीं, उनका निर्माण और चमड़े को कमाने की कला, उसका पुस्तक के कागज पर क्या प्रभाव पड़ता है, और गत्तों को ढकने की सामग्री किस प्रकार की है;
 - ४) उपयोग में आनेवाला सरेंस जो सूखने पर पुस्तक को दृढ़ करे, किन्तु कीड़ों के आकर्षण से पुस्तकों को नष्ट न होने दे;
 - ५) अंकन।
- ये सभी वर्ग स्थूल-पुस्तक-सूची के अध्ययन में आते हैं।

४२४. सम्पूर्ण पुस्तक

ये पुस्तक की अपरिपक्व अवस्थाएं थीं। किन्तु स्थूल-पुस्तक-सूची में सम्पूर्ण पुस्तक का ज्ञान भी सम्मिलित है। पहले पृष्ठ से लेकर अन्तिम पृष्ठ का मुद्रण,

पुस्तकालय-विज्ञान के कार्यक्षेत्र का विस्तार

[४२५]

निश्चित स्थिति जो स्पष्टरूप से प्रगट हो जाय, जैसे आरम्भ के पृष्ठ, पुस्तक का मूल तथा सूचीपत्र, इत्यादि।

४२५. पुस्तक विवरण

प्राचीन एवं संग्रह करने योग्य पुस्तकों की व्याख्या करने के लिए स्थूल-पुस्तक-सूची में एक तकनीकी पारिभाषिक शब्द निकाल लिया गया है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है जिसकी आवश्यकता प्राचीन पुस्तकों के प्रबन्ध में होती है; विशेषतया उन पुस्तकों में जो धातु के टाइपों के द्वारा मुद्रण के आविष्कार की पाँच दशाब्दियों तक मुद्रित होती रहीं। इन पुस्तकों को "इनकुनाबुला" कहते हैं अर्थात् आदि-पुस्तकें। मुद्रण कार्य उस समय अपने बचपन में ही था। भारतवर्ष को "इनकुनाबुला" से अधिक सम्बन्ध नहीं रखना पड़ा। इस समय हम उस पुस्तक-सूची का अध्ययन नहीं करेंगे जिसे ऐतिहासिक पुस्तक-सूची अथवा विवरणात्मक-पुस्तक-सूची भी कहते हैं। एक अन्य वर्ग जिसके लिए यह एक आवश्यक यंत्र सिद्ध हो सकता है, वह उन विद्वानों का वर्ग है जो उच्च कोटि की प्राचीन मौलिक रचना के प्रामाणिक सुधार में व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार का साहित्य अब अनेक रूपों में आने लगा है। किसी विद्वान ने इस कार्य की परिभाषा "विपरीत कलन" से की है। कुछ गणितज्ञ भी भूल से इस विषय की पुस्तकों की ओर अग्रसर हुए। यह तो एक अलग बात है। आप यह तो स्वीकार करेंगे ही कि "विपरीत कलन" का अध्ययन-क्षेत्र विद्वानों और संपादकों के लिए अधिक उपयोगी है न कि पुस्तकाध्यक्षों के लिए। कुछ वर्षों पहले जब पुस्तकालय-विज्ञान विकसित नहीं हुआ था, तब चतुर एवं कार्यशील पुस्तकाध्यक्षों को कोई स्थान न मिलता था और न ही पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य के लिए कोई अवसर ही मिलता था। ऐसे समय में पुस्तकाध्यक्षों की विचारधारा क्षेत्र में स्थिर न होने के कारण विकृत हो चली, और वे इस क्षेत्र के लिए हानिकर कार्य करने लगे। इस प्रकार की कुप्रवृत्ति तथा उसके दुष्परिणामों के कारण वे पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र पर छाने लगे और दबाव भी डालने लगे। इसी कारण पुस्तकालय-विज्ञान की आशातीत उन्नति नहीं होने पाई। मैं भारतीय पुस्तकालय-व्यवसाय से प्रार्थना करूँगा कि (जो पुस्तकालय-विज्ञान के परिपक्व होने के अनन्तर ही विस्तृतरूप में प्रकट होने वाला है, और जिसे सब ओर से सहायता मिलनी चाहिए) वह पश्चिम की नकल के बल पर "विवरणात्मक-पुस्तक-सूची" की भूल-भुलैयाँ में न पड़े।

४३. परिगणन पुस्तक-सूची

मैंने "स्थूल-पुस्तक-सूची" के विषय में वह बहुत कुछ बता दिया है जो आपके पाठ्यक्रम में सम्मिलित है। यह अध्ययन पुस्तक के स्थूल शरीर अथवा उसके बाहरी रूप से सम्बन्ध रखता है। परिगणन पुस्तक-सूची एक सामान्य विषय है। यह मुद्रित सामग्री की सूची से सम्बन्धित है। यही परिभाषा इसकी विधि या सूची के तकनीकी और सम्पूर्ण सूची की व्याख्या करती है। पुस्तक-चुनाव तथा पुस्तकें खरीदने का कार्य सूची के तकनीकी की अपेक्षा सम्पूर्ण सूची द्वारा अधिक रुचिकर होता है। पुस्तकालय-विज्ञान का वह विषय जिसे हम "संदर्भ-सेवा" से प्रतिपादित करते हैं, सम्पूर्ण-सूची और सूची के तकनीकी ज्ञान, दोनों से ही सम्बन्धित है।

डिग्री-कोर्स के प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम (जो डिप्लोमा-कोर्स के पाठ्यक्रम के लगभग समान है) सम्पूर्ण "पुस्तक-सूची" को सम्मिलित करता है। इसमें निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन होता है :

- १) मुद्रित सामग्री की सूची तैयार करने की संस्थाएं;
- २) इस कार्य का उद्देश्य;
- ३) उन सूचियों का विस्तार;
- ४) उन सूचियों में क्रम-व्यवस्था;
- ५) सूची में सम्मिलित सभी बातों के विस्तार की मात्रा;
- ६) समय-समय पर उनको नवीन बनाने की समस्त सुविधायें; और
- ७) सभी सूचियों का संदर्भ-मूल्य।

इस पाठ्यक्रम में पुस्तक-सूची के इतिहास का भी अध्ययन करना होगा। इस विषय की एक आकर्षक शाखा है "विश्व पुस्तक सूची," जिसके निर्माण का इतिहास भी आप देखेंगे। आपको अनेक विषयों पर प्रकाशित पुस्तक-सूचियों की जानकारी प्राप्त करनी होगी।

द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत पुस्तक-सूची के निर्माण का तकनीकी भी है। यह एक ऐसा कार्य है जो अभ्यास के द्वारा ही सीखा जा सकता है। यद्यपि अनेक सिद्धान्तों से आपको बहुत लाभ नहीं होगा तथापि उनकी आवश्यकता है। धीरे-धीरे इस कार्य की रचना और क्रम के आप अभ्यस्त हो जायेंगे। इसकी समाप्ति पर द्वितीय वर्ष में एक चुने हुए विषय पर आपको एक पुस्तक-सूची बनानी होगी।

अपने अनुभवों के बाद आपको राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठन की आवश्यकता पर विचार भी करना होगा। आपको अब तक की प्रकाशित सामग्री की “अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक-सूची” इस युक्ति से बनानी होगी कि आप ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र का उसमें समावेश कर सकें।

४४. ज्ञान-क्षेत्र

पुस्तकालय-विज्ञान का एक अन्य विषय अभी शेष रह जाता है, और वह है ज्ञान-क्षेत्र। पुस्तकालय-विज्ञान का चरम उद्देश्य पाठक और पाठक के इच्छित ज्ञान (ज्ञान और ज्ञाता) में तादाम्य स्थापित करना है। पुस्तकें ज्ञान के निश्चित अंशों का रूपान्तर मात्र हैं जिनके साथ पाठकों का समागम होता है। ठीक वैसा ही प्रति-रूप पुस्तकों की उत्पत्ति का होता है। इनमें भी ज्ञान के अंशों का समावेश होता है। ज्ञान-क्षेत्र में एक निरन्तरता होती है। पुरानी पुस्तकों में प्रतिपादित ज्ञान को, क्रियाशील उद्देश्य के लिए, स्थायी निरन्तरता के रूप में लिया जाता है। ज्ञान के अंश तथा उसके अनुच्छेदों का जानना आपके लिए आवश्यक है। ज्ञान के प्रत्येक अंश की विशिष्ट परिभाषा और उस अंश के सामान्य उपयोग की विधि का ज्ञान भी आपके लिये अनिवार्य है। वास्तव में ज्ञान-क्षेत्र में एक गतिशील-निरन्तरता है। पुरानी सीमाएं टूट जाती हैं और नई सीमाएं रूप ले लेती हैं, और जब हम सम-कालीन ज्ञान से सम्बन्धित रहते हैं तो यह सीमा प्रगट होती रहती है। एक पुस्तक-प्रबन्धकर्ता को बहुत सचेत होना चाहिए। उसे न केवल ज्ञान-क्षेत्र की नवीन उत्पत्ति और उसके निरन्तर विस्तार का ही, अपितु उसमें होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों का भी पूर्णरूप से ध्यान रखना चाहिये। पूर्व ज्ञात अंशों से ज्ञान का ग्रथना कभी-कभी होता ही रहता है। ज्ञान-क्षेत्र में नए रूप भी निरन्तर विकसित होते रहते हैं। इसका कारण है सूक्ष्म-परीक्षण, नग्निकरण, परतयुक्त रखना, अव्यवस्थित को एकत्र करना और हर प्रकार से संवारना। पुस्तकाध्यक्ष को ऐसे विकासों का सदैव ज्ञान रहना आवश्यक है। जैसे ही किसी विषय में ऐसा विकास हो तभी पाठकों को तुरन्त सूचित कर देना चाहिए। इस सेवा से विषय का आकर्षण उन्हें सदैव बांधे रहता है। जिन कारणों से ऐसी सामग्री का आकस्मिक उद्भव होता है वे ही कारण वर्गीकरण-पद्धति में निश्चित विषयों के नवीन रूपों का स्थान निर्धारित करने में सहायक होते हैं। ज्ञान-क्षेत्र का जानना आपको पुस्तकालय-विज्ञान की दो शाखाओं में कार्यक्षम बनाता है, वे हैं—पुस्तकालय-वर्गीकरण और संदर्भ-सेवा। ज्ञान-क्षेत्र में बहुत अधिक परिपक्व ज्ञान की आवश्यकता

४५]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

है। अतः आपको डिग्री कोर्स के द्वितीय वर्ष में उस विषय से परिचित कराया जायगा।

मुझे यहां एक बात और कहनी है कि ज्ञान-क्षेत्र में एक अन्य अनुशासन की भी आवश्यकता है, जो दर्शन-शास्त्र है। इसकी एक शाखा है—ज्ञान-शास्त्र— जो प्रकृति, उद्गम, और जानने की विधि से सम्बन्धित है। इसकी एक अन्य शाखा—तर्क-शास्त्र है, जो वैज्ञानिक रीतियों से सम्बन्धित है और सम्पूर्ण ज्ञान का वर्गीकरण इसीसे सम्बन्धित है। ज्ञान-क्षेत्र पर पुस्तकालय-विज्ञान का दृष्टिकोण इन दोनों दृष्टिकोणों से थोड़ा सा भिन्न हो जाता है।

४५. अपर-पुस्तकालय-विज्ञान

आज हमने पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित अब तक की नवोदित समस्याओं की सूची बना ली है। कल हमने इन समस्याओं के बारह विभाग किये थे। पुस्तकालयों के विविध रूपों की परीक्षा ने पुस्तकालय-संगठन नाम की एक नई समस्या को जन्म दिया और हमारा विषय विस्तृत कर दिया। इसे हमने दूसरे व्याख्यान में “पुस्तकालय-संचालन” के विषय में कहा था। ये सब समस्याएं पुस्तकालय-विज्ञान में स्वाभाविक ही हैं। पुस्तकालय-विज्ञान का एक सफल, कुशल एवं अनुभवी विद्यार्थी बनने के लिए सचेत होकर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसी कारण हमें अपने निकट के विषयों में सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। वस्तुतः यह पुस्तकालय-विज्ञान का विषय नहीं, किन्तु इनका पारस्परिक सम्बन्ध अटूट है। “अपर” एक ऐसा उपसर्ग है जिसका सामान्य उपयोग ऐसे ही संयुक्त रूप में होता है। इसीलिए मैंने तीन विषय निर्दिष्ट किए हैं—स्थूल-पुस्तक-सूची, परिगणन-पुस्तक-सूची तथा ज्ञान-क्षेत्र और अंत में इन्हें अपर-पुस्तकालय-विज्ञान से संबोधित किया है। इसका दृष्टांत हम इन विषयों से दे सकते हैं—आध्यात्म-विद्या, अपर-पदार्थ-विज्ञान तथा अपर-मनोविज्ञान।

मैं कह चुका हूँ कि इस अपर-पुस्तकालय-विज्ञान का आधा भाग पहले वर्ष या डिप्लोमा कोर्स में पढ़ाया जायगा और शेष आधा द्वितीय वर्ष या डिग्री कोर्स में। सम्पूर्ण “पुस्तकालय-संचालन” और पुस्तक-चुनाव प्रथम वर्ष में पूर्ण होगा। किन्तु पुस्तकालय-वर्गीकरण, पुस्तकालय-सूची तथा पुस्तकालय-संगठन के अगले अंश द्वितीय वर्ष में पूरे होंगे। पहले वर्ष में हम कार्य-संचालन की रूप-रेखा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

व्याख्यान ५

पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित विषय

यह व्याख्यान पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले विशिष्ट विषयों की व्याख्या परिगणन के आधार पर करता है। दूसरे तथा चौथे व्याख्यान में बताई गयी समस्याओं का प्रभाव विभिन्न पुस्तकालयों के दृष्टिकोण से आंकता है। इन पुस्तकालयों का विवरण तीसरे व्याख्यान में दिया गया है। पुस्तकालय समस्याओं से विकसित विशिष्ट विषयों की संख्या दी गयी है।
विज्ञान क्या है ? — इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है।

निश्चित विषय

पिछले तीन व्याख्यानों में हमने पुस्तकालय-विज्ञान के दो पक्षों पर विचार किया। प्रथम तो समस्यामूलक था और दूसरा पुस्तकालयों के प्रकार से सम्बन्धित था। इनमें से प्रत्येक पक्ष पर हमने स्वतंत्ररूप से विचार किया। इस प्रकार हमने समस्यामूलक पक्ष को १७ तथा पुस्तकालय पक्ष को १८ केंद्रों में विभक्त किया। इनमें से कुछेक भागों का अध्ययन एक को दूसरे से स्वतंत्र रखकर करना होगा। किन्तु पहले पक्ष के कुछ केंद्रों का अध्ययन दूसरे पक्ष के साथ ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पहले पक्ष के केंद्रित विषय का स्पष्टीकरण दूसरे पक्ष के केंद्रित विषय के साथ ही अध्ययन करके करना होगा। इस प्रकार यह अध्ययन और भी यथार्थपूर्ण एवं नवीन केंद्रित विषय ही माना जा सकता है। निश्चित विषयों की संख्या, जो पुस्तकालय-विज्ञान के हमारे अध्ययन के लिये दो पक्षों में प्रस्तुत करता है, इन संख्याओं के योग का केंद्र मात्र ही है। इस प्रकार पुस्तकालय-विज्ञान में केवल ३५ ही विषय निश्चित किये जा सकते हैं। दूसरी ओर यदि समस्या पक्ष के प्रत्येक १० केंद्र अन्य नये केंद्रों को जन्म देते जाय और पुस्तकालय पक्ष के प्रकार भी बढ़ते जाय तो पुस्तकालय-विज्ञान में

५१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

१७ × १८ = ३०६ विषय अध्ययन के लिये हो जायेंगे। वास्तव में न तो पहली संख्या अर्थात् ३५ ही ठीक है और न ही दूसरी संख्या अर्थात् ३०६, क्योंकि ये १७ समस्यायें भिन्न-भिन्न रूप से विभिन्न पुस्तकालयों में नहीं खड़ी हो जातीं और कुछ तो बिल्कुल समस्याओं का रूप नहीं ले पातीं। निश्चित विषयों की सम्भाव्य संख्या जानने के लिए हमें इस प्रश्न पर क्रमपूर्वक विचार करना होगा। इसीलिए एक-एक करके इन १७ समस्याओं का प्रभाव विभिन्न प्रकार के पुस्तकालयों पर देखें। तब निश्चित करें कि ये विषय कितनी संख्या में उत्पन्न होते हैं।

५१. भवन और सामग्री

भवन और सामग्री का प्रामाणिक मानदंड पहले ही से निर्धारित है। जैसे पुस्तकों का रैक, पाठकों की कुर्सियाँ और मेज, पत्रिकाओं की मेज, पुस्तकों की लेन-देन की मेज, पुस्तक-टाली, इत्यादि, इत्यादि। प्रत्येक पुस्तकालय-भवन में पुस्तकों की अल्मारी का स्थान, खिड़कियों का एक दूसरी खिड़की से अन्तर तथा निर्मित भवन के फर्श का उपयोग एक ही प्रकार से निर्धारित होता है। किन्तु भवन के विभिन्न विभागों की व्यवस्था, उनका आकार और उनके बढ़ाने का साधन विभिन्न पुस्तकालयों में पृथक्-पृथक् रूप से होता है। राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय के भवन का निर्माण बड़ा जटिल होगा, क्योंकि उस डिजाइन पर भवन को किसी भी समय कितना ही बढ़ाया जा सकता है और ऐसा ही भवन राज्य केन्द्रीय पुस्तकालयों का होगा। केन्द्रीय नगर पुस्तकालय के भवन का निर्माण इतना जटिल नहीं होगा, क्योंकि उसको ऊपर की ओर बढ़ाया जा सकता है फिर उसमें से पुरानी पुस्तकों को भी तो छांट कर बाहर निकाल दिया जायेगा। जिला केन्द्रीय पुस्तकालय भवन नगर केन्द्रीय पुस्तकालय के भवन से सर्वथा भिन्न होगा, क्योंकि उसमें पाठक तो आएंगे ही नहीं। अतएव उस भवन में वाचनालय की आवश्यकता नहीं होगी। इसके विपरीत उस भवन में मोटर गाड़ियाँ रखने के लिये और उनकी सफाई के लिए एक बड़ा स्थान अवश्य चाहिए, क्योंकि वहाँ की मोटर गाड़ियाँ चलते-फिरते पुस्तकालय के उपयोग में आती हैं। नगर की पुस्तकालय शाखायें तथा जिला पुस्तकालय छोटे होंगे। यहां तक कि उनके लिए एक ही कमरा पर्याप्त होगा। इन सब पुस्तकालय श्रेणियों के स्वतंत्र भवन होंगे। अतः इनकी निर्माण-कला में भी पर्याप्त अन्तर होगा। किन्तु बहुत से शैक्षणिक, व्यावसायिक तथा विशेष संस्थाओं के पुस्तकालयों के लिए पृथक्-पृथक् पुस्तकालय-भवनों की आवश्यकता नहीं होगी। यहां तक कि कमरों की संख्या भी स्वतंत्ररूप से स्थापित

पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित विषय

[५६]

पुस्तकालय भवनों के कमरों से भिन्न होंगी। अतः भवन की समस्या से उतनी ही समस्याएं उठ खड़ी होंगी जितने प्रकार के पुस्तकालय होंगे।

५४१. पुस्तक-चुनाव

तीसरे व्याख्यान से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विभिन्न पुस्तकालयों के आधार पर विभिन्न रीतियों से पुस्तकों का चुनाव करने की आवश्यकता होती है। अतः पुस्तक-चुनाव की समस्या से निस्सन्देह उतने ही विषय उठ खड़े होंगे जितने प्रकार के पुस्तकालय होंगे।

५४२. पुस्तक-क्रय से ५५५. पुस्तक-सूची तक

यह तो सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है कि (पुस्तक-क्रय, पत्रिका-कार्य, क्रमकरण, पुस्तकों की तैयारी, पुस्तकालय-वर्गीकरण तथा पुस्तकालय-सूची) ये छः समस्याएं व्यक्तिगत रूप से नहीं उठेंगी। इन समस्याओं का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं कि किस वर्ग के पाठकों के लिए कौसी सामग्री चाहिए। ये समस्याएं एक सी ही रहेंगी चाहे किसी भी प्रकार का पुस्तकालय क्यों न हो। ये छः समस्याएं केवल छः निश्चित विषयों को ही उत्पन्न करती हैं।

५६. प्रसार-कार्य

दूसरी ओर प्रसार-कार्य एक व्यक्तिगत श्रेणी का कार्य है। राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय में प्रसार-कार्य पुस्तकालय तक ही सीमित होगा। राष्ट्रीय दायक पुस्तकालय में प्रसार-कार्य बहुधा देश के अन्य पुस्तकालयों को पुस्तकें भेजना ही होगा। मुद्रणाधिकार पुस्तकालयों में प्रसार का अर्थ न्यायालयों द्वारा जारी किये गये वारण्टों के उत्तर में पुस्तकें प्रसारित करना होगा। परन्तु नगर पुस्तकालयों में प्रसार-कार्य के अन्तर्गत पुस्तकें अधिकतर पाठकों को घर पर पढ़ने के लिये ही दी जायेंगी और पुस्तकालय में पढ़ने के लिए कम। ग्रामीण पुस्तकालयों में पुस्तकें कठिनता से ही पुस्तकालय में पढ़ने के लिए दी जायेंगी। वहां प्रसार का अर्थ है दो या तीन सहस्र (२००० या ३०००) पुस्तकें गाड़ियों में रख कर सैकड़ों निर्धारित स्थानों पर निश्चित समय पर जाकर वितरित करना। किन्तु शैक्षणिक पुस्तकालयों में भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना

करना होगा। क्योंकि कक्षाएं और उनका एक दिन के पढ़ने के घन्टों का समय, एक वर्ष में पढ़ने की अवधि और फिर छुट्टियां भी बदलती रहती हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पढ़ने पर पुस्तकों का प्रसार कक्षा पुस्तकालय अथवा विभाग के संग्रह तक भी हो सकता है। व्यावसायिक पुस्तकालयों में तो प्रसार-कार्य और भी कीठन हो जायेगा, चाहे वहां उन लोगों की संख्या कम ही क्यों न हो जिनके लिए पुस्तकें उपयोग के लिए देने होती हैं। इसमें भी अधिक कीठनाई तो विशेष प्रकार के पुस्तकालयों में होगी क्योंकि वहां विचित्र ही वर्ग के पाठक आयेंगे। अस्पताल पुस्तकालयों के प्रसार का कार्य बढ़ती हुई जनसंख्या पर ही निर्भर होगा। नाविक पुस्तकालयों के लेन-देन की अवधि लम्बी होगी क्योंकि वहां जहाज (जलपोत) विशेष से सम्बन्ध होगा न कि नाविक विशेष से। राष्ट्रीय अंध पुस्तकालय में प्रसार-कार्य का अर्थ होगा, प्रत्येक अंध व्यक्ति के घर पुस्तकें डाक द्वारा भेजना और डाक से ही उनकी प्राप्ति करना, क्योंकि इससे लाभ उठाने वाले लोग देश भर में इधर उधर बिखरे होंगे। अतः प्रसार-लेखा विशेष प्रकार का होगा। अभिलेख पुस्तकालय का प्रसार-कार्य विशिष्ट सार्वजनिक लेखों के रूप में होगा, और वहां सतर्क भी रहना होगा। प्रत्येक दिनांक में पुस्तकों के उपयोग का पूरा लेखा रखना आवश्यक होगा। ऐसी समस्याएं अभिलेख पुस्तकालय के प्रसार-कार्य में भी उत्पन्न होंगी। साधारण रूप में कहा जा सकता है कि प्रसार-कार्य में उतने ही निश्चित विषय होंगे कि जितने प्रकार के पुस्तकालय होंगे।

५७. संदर्भ-सेवा

पुस्तकालय में संदर्भ-सेवा-कार्य सर्वाधिक वैयक्तिक कार्य है। इसी कारण हम आशा रखते हैं कि विभिन्न पुस्तकालयों में यह सेवा पृथक्-पृथक् रूप से ही होगी। राष्ट्रीय तथा राज्य केन्द्रीय पुस्तकालयों में यह सेवा केवल उन पाठकों से सम्बन्धित होनी चाहिए जो किसी विषय विशेष का अध्ययन करना चाहते हैं। यह सेवा उन्नत एवं विशिष्ट रूप से अन्यान्य प्रकार के प्रारम्भिक पुस्तकालयों में भी की जानी चाहिए। नगर तथा ग्राम-पुस्तकालय में संदर्भ-सेवा तुरन्त प्रदान की जानी चाहिए। शैक्षणिक पुस्तकालयों में विद्यार्थियों को संदर्भ-सेवा की शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए कि वे जो पाठ्य-सामग्री चाहें, स्वयं खोज लें।

व्यावसायिक पुस्तकालयों में तो यह सेवा अपनी चरम सीमा तक पहुँच जायेगी। क्योंकि किसी भी व्यवसाय अथवा सरकारी विभाग पुस्तकालय को अपने सहायक

पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित विषय [५९

विभाग के कार्य में हाथ बंटाना होता है। समय-समय पर उनका यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि जो व्यक्ति किसी भी सहायक विभाग के निश्चित कार्य में लगा हो उसकी पूर्ण सहायता करें और सभी समस्याओं का समाधान करें, उसके भार को हल्का करें और उसे भार मुक्त भी करें। ऐसे पुस्तकालयों के कार्यकर्त्ताओं को यह जानना आवश्यक है कि उनका सहायक विभाग किस प्रकार की समस्याओं में उलझा हुआ है तथा उन समस्याओं का समाधान क्या हो सकता है? जहाँ एक ओर तो उनका मस्तिष्क समस्याओं के समाधान में लगा होगा वहाँ दूसरी ओर उन्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि पुस्तकालय की पुरानी अथवा नई सामग्री से क्या क्या प्राप्त हो सकता है? कहीं कुछ उपयोगी सामग्री छूट न जाय। सहायक विभाग की सफलता केवल संदर्भ-सेवा की दक्षता पर ही निर्भर होती है। व्यावसायिक पुस्तकालयों में संदर्भ-सेवा-कार्यकर्त्ताओं को आधुनिकतम प्रकाशित पत्रिकाओं में निहित सामग्री का सामान्यीकरण करना चाहिये। तदुपरान्त एक विशेष सूची बनाकर उसे समस्त विभागों में प्रसारित करना चाहिए। अपने विचार से मैंने पुस्तकालयों की संदर्भ-सेवा के विविध रूपों पर प्रकाश डाल दिया है। अतः यह कहा जा सकता है कि संदर्भ-सेवा से लगभग छः निश्चित विषय उत्पन्न हो जायेंगे।

५७२. प्रचार-कार्य

प्रचार-कार्य केवल स्थानीय तथा शैक्षणिक पुस्तकालयों में अधिक होगा। किन्तु नगर, ग्राम एवं शैक्षणिक पुस्तकालयों में इसका रूप बदलना पड़ेगा। अतः इससे तीन निश्चित विषय ही उत्पन्न होंगे।

५८. शैल्फ-कार्य

शैल्फ-कार्य में विभिन्न पुस्तकालयों में विभिन्न तकनीकों का प्रयोग नहीं होगा। अतः इससे केवल एक ही निश्चित विषय उत्पन्न होगा।

५९. संलग्न-समस्याएं

पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र में जिन्हें हम संलग्न-समस्याएं कह सकते हैं। वे हैं: संगठन और कार्यालय-संचालन की समस्याएं तथा पुस्तकों के स्थूल-रूप के अध्ययन तथा ज्ञान के विस्तार की समस्याएं। ये सब अवैयक्तिक समस्याएं सभी

५९१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

पुस्तकालयों में एक सी रहेंगी। अतः ये सब मिलाकर केवल चार ही निश्चित विषयों का निर्माण करेंगी।

५९१. सार

निम्नलिखित सारणी में उपरोक्त विभाजित एवं निश्चित विषयों का संक्षिप्त रूप दिखाया गया है। ये ही विषय पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र का निर्माण करते हैं।

समस्याएं	पुस्तकालयों के प्रकार की संख्या। (इससे अन्तर का ज्ञान होता है।)	परिणामस्वरूप विशिष्ट विषयों की संख्या।
पुस्तकालय-भवन	१२	१२
पुस्तक-चुनाव	१५	१५
पुस्तक-क्रय	०	१
पत्रिका-कार्य	०	१
क्रमकरण-कार्य	०	१
पुस्तकों की तैयारी	०	१
पुस्तकालय-वर्गीकरण	०	१
पुस्तकालय-सूची	०	१
प्रसार-कार्य	१५	१५
संदर्भ-सेवा	६	६
प्रचार-कार्य	३	३
शैल्फ-कार्य	१	१
पुस्तकालय संगठन तथा संचालन	०	१
कार्यालय	०	१
स्थूल-पुस्तक-सूची	०	१
परिगणन-पुस्तक-सूची	०	१
ज्ञान-क्षेत्र	०	१
विशिष्ट विषयों की संख्या		६६

पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित विषय [५९३]

इस प्रकार विशिष्ट विषयों की संख्या ६६ हुई जो हमारे ३०६ के अनुमान से कहीं कम और १७ समस्याओं से कहीं अधिक हैं।

५९३. विज्ञान क्या है ?

“पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है?” यह प्रश्न बहुधा उठाया जाता है। सर पी. एस. शिवास्वामी अय्यर ने इस प्रश्न को “फाइव लाज आफ लाइब्रेरी साइंस” की भूमिका में उठाया है। “प्रीफेस टु लाइब्रेरी साइंस” के एक आलोचक ने पुस्तकालय-विज्ञान शब्द “नेचर” के पृष्ठों में चुनौती दी है। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अप्रैल, १९५३ में हो रही पुस्तकालय-परिषद् के रजत जयन्ती समारोह में सभापति पद से अपने भाषण में यह प्रश्न उठाया। वास्तव में इस प्रश्न के उत्तर ने एक अन्य प्रश्न का उत्तर दे दिया कि, एक विज्ञान क्या है? “पुस्तकालय-विज्ञान” की शंका का समाधान “विज्ञान” शब्द की किसी भी निर्धारित व्याख्या से हो जाती है।*

* यह अंश “फाइव लाज आफ लाइब्रेरी साइन्स” पुस्तक के अध्याय ८ से लेखक की अनुमति द्वारा अनूदित कर उद्धृत किया गया है।

व्याख्यान ६

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

यह व्याख्यान विभिन्न कार्य-रीतियों तथा न्यूटन के गति-सिद्धान्त के आधार पर विज्ञान के स्तर की परीक्षा करता है। प्राचीन एवं आधुनिक कार्य प्रणाली के उदाहरण देकर पुस्तकालय-विज्ञान को विशिष्ट स्तर पर लाता है। गणित एवं स्मृति के प्रमाण देकर पुस्तकालय-विज्ञान की पुष्टि "विज्ञान" में करता है।

दो अनुभव

हम पिछले व्याख्यान में निश्चित विषयों की संख्या को घटा कर ३०६ से ६६ तक ले आए थे। इतना करने पर भी विषय-वस्तु और पृथक तथ्यों की संख्या का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत और कठिन हो जायगा। बहुत से पुस्तकालयों की कार्य-विधियां अपनी-अपनी सीमाओं में ही विस्तृत होती हैं। यद्यपि ये कार्य-विधियां आवश्यकता से अधिक हैं तथापि एक पुस्तकालय से दूसरे पुस्तकालय में जाने वाले पाठकों के लिए सुविधाजनक अवश्य होती हैं। पुस्तकालय-विज्ञान के छात्र होने के नाते मैंने पश्चिम के पुस्तकालयों में आश्चर्यजनक विविधता पाई। इसका अर्थ यह नहीं कि यह अन्तर किसी विशेष उद्देश्य से सभी अवस्थाओं में होता है। यह तो सैद्धान्तिक बल के अभाव में बिना किसी उद्देश्य के होता है।

मैं बहुत से पुस्तकालयों में गया हूँ। मेरी बलवती उत्सुकता ने ही मुझे प्रेरित किया। मेरी इस उत्सुकता का प्रादुर्भाव दो मुख्य कारणों से हुआ। पहला आश्चर्य मुझे यह देख कर हुआ कि लन्दन विश्वविद्यालय के पुस्तकाध्यक्ष स्कूल के पुस्तकालय में एक कक्ष पुस्तकालय-विज्ञान की पुस्तकों से भरा हुआ था। उस समय मद्रास विश्वविद्यालय पुस्तकालय में इस विषय पर दस बारह से अधिक पुस्तकें नहीं थीं। मैं इस पुस्तकालय का अध्यक्ष कुछ दिनों पहले ही नियुक्त

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

[६११]

किया गया था। अध्यक्ष नियुक्त होने पर विदेश से जाने के पूर्व लगभग छः मास तक मैं इस पुस्तकालय का प्रबन्ध-कार्य करता रहा। जिस दिन मैं मद्रास प्रेसीडेंसी कालेज के अध्यापन कार्य से मुक्त हुआ, उस दिन प्राध्यापक महोदय ने इस वियय पर खेद प्रकट किया; किन्तु वे मेरे विशेष शुभचिन्तक थे। हाँ! मेरी वेतन वृद्धि से वे अत्यन्त प्रसन्न भी थे। वे दुखी इसीलिए हुए क्योंकि मुझे उन्नति के अवसर अब नहीं मिल सकते थे। उनके अनुसार पुस्तकालयों का कार्य शिथिल और निम्नकोटि का था। मेरे पुस्तकाध्यक्ष के पद को सम्भालने के दो तीन दिन तक कठिन्ता से ही मुझे कोई कार्य दिया गया। यहां के कर्मचारियों की संख्या कुल चार थी। इन्होंने कुछ पत्र केवल हस्ताक्षर करने के लिए मुझे दिये। इस अकर्मण्यता के कारण मैं अपने आपको अभागा समझने लगा। ऐसा ज्ञात हुआ मानों मुझे एकान्त कारावास होने जा रहा है। जब मैं कहता कि मुझे काम दो तो वे कहते कि मुझ जैसे अधिकारी के उपयुक्त कोई कार्य नहीं है। उस समय २० से भी कम पाठक प्रतिदिन पुस्तकालय में आते थे। मैं उनसे मिलना चाहता था किन्तु मुझे बताया गया कि ऐसे अभ्यागतों से मिलना मुझ जैसे अधिकारी के सम्मान के विरुद्ध होगा—जो मुझे सस्ता बना देगा। अभी एक ही सप्ताह हुआ होगा कि मेरी इच्छा प्रेसीडेंसी कालेज के अपने पुराने पद पर वापस जाने की हुई। परन्तु एक बार मैं अपने आपको अवसर देना चाहता था। मैंने अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं की इच्छा के विरुद्ध सूचीकरण का कार्य आरम्भ कर दिया—यद्यपि वर्गीकरण अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था। पुस्तकालय-सूची में मैंने बहुत से विवेकरहित तथ्यों को पाया। इस पर मेरे कर्मचारियों ने कहा कि यह सत्रह वर्ष के अनुभव का परिणाम है। वहां सूचीकरण मनमानी रीति से होता था। जब-जब नई समस्याएं आईं तब-तब मनमाने ढंग से सुलझाई गईं और इस कारण सारा कार्य अस्त-व्यस्त हो गया। शौल्फ के बन्द द्वार पाठकों को पुस्तकों से अलग रखते थे। पुस्तकों के खोजने में पाठकों को न तो कोई सहायता ही दी जाती और न ही वे इसकी आशा रखते। मुझे ऐसा लगा कि मेरे प्राध्यापक का दुःख प्रकट करना ठीक ही था। मुझे यह भी भय होने लगा कि यदि मैं इस प्रकार पुस्तकालय का कार्य करता रहा तो मेरा जीवन ही व्यर्थ चला जायगा।

६११. विभिन्न रीतियां

मुझे सुभाव दिया गया कि जब तक मैं विदेश भ्रमण नहीं कर आता मुझे यहीं पद संभाले रहना चाहिए। जब मैं लन्दन विश्वविद्यालय के स्कूल में प्रवेश पाया

६१३]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

तब मुझे पांच शिर्शिलग देने पर पुस्तकाध्यक्ष-स्कूल के पुस्तकालय-कक्ष की चाभी दी गई। मैंने प्रातःकाल आठ बजे द्वार खोला तो उस समय मेरे अतिरिक्त कक्ष में और कोई न था। मुझे इस पर आश्चर्य हुआ कि मुझे जैसे अनजान व्यक्ति को पुस्तकालय में कैसे प्रवेश करने दिया गया? उस समय न तो कोई अधिकारी था और न ही देखभाल के लिए कोई चपरासी था। पुस्तकें खुले शैल्फों में रखी थीं और पुस्तकालय-विज्ञान पर पुस्तकें भी कम न थीं। मेरे मद्रास के पुस्तकालय और इस पुस्तकालय के अनुभव में कितना अंतर था? मैंने देखा कि दोनों अनुभव आपस में कितने भिन्न हो सकते हैं।

६१२. असम्बद्ध सूचनाएं

मैंने उन पुस्तकों का विधिवत् अध्ययन करते हुए अधिक से अधिक समय उस पुस्तकालय में व्यतीत किया। वे सब पुस्तकें लचिकर तो अवश्य थीं किन्तु उनमें सूचनाएं असम्बद्ध थीं। इसी कारण वे पुस्तकें स्मृति पर भार बनने लगीं। उनमें निहित सूचनाओं का समीकरण स्मरणशक्ति में तनाव पैदा करने लगा और कभी-कभी यह कार्य असम्भव सा प्रतीत होने लगा। एक या दो विषयों के अतिरिक्त कक्षा के व्याख्यान भी उसी प्रकार असम्बद्ध प्रतीत हुए। कक्षा में तथ्य एवं अभ्यास—नोट्स के रूप में—अत्यन्त विस्तृत और कठिन होते थे। सूचीकरण के मौखिक सिद्धान्त बताते हुए अध्यापक शीर्षक चुनने और उसको छोटा बनाने अथवा उसको सुधारने के कई विकल्प समझाते, परन्तु इसका अभ्यास एक अन्य रूप से ही निर्धारित होता। वर्गीकरण के सिद्धान्तों की शिक्षा अधिक संयमित होती किन्तु इसका अभ्यास मौखिक सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं होता। वे अभ्यास बहुधा शब्द-पहेली की भांति शब्द-कांश में इधर-उधर भांकर ही किये जाते थे। संगठन पर व्याख्यान सबसे अधिक असम्बद्ध थे। इस विषय में कण्ठस्थ यथार्थ तथा अंकों के मान्य तथ्य अचूक होते थे, जैसे—अमुक पुस्तकालय में २३६ पुस्तकें और अमुक में २५२ हैं, और वहां ३२९ फुट के स्थान में मोजें लगी हुई हैं। यही क्रम स्थूल-पुस्तक-सूची, परिगणन-पुस्तक-सूची तथा अभिलेख-प्रबंध के अध्ययन में था। कोई ऐसा सूत्र नहीं था जो विषयों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करता हो।

६१३. पहली किरण

कुछ मास इन मौखिक सिद्धान्तों में सिर खपाने के बाद मैंने एक माह तक क्रायडन सार्वजनिक पुस्तकालय में कार्य किया। यहां का संगठन, विभिन्न

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

[६१४]

विभागों में पुस्तकों का वितरण एवं स्फूर्तिदायक मानवीय सम्बन्ध, सदैव पाठक, पुस्तक तथा कर्मचारी के त्रिसंयोग में नवजीवन भरते थे। ये सम्भावित तत्व मूल-सिद्धान्तों पर पहली किरण डालते थे और इसी से पुस्तकालय का सारा कार्य प्रचलित होता था। क्या कभी पुस्तकालय-विज्ञान कुछ सैद्धान्तिक नियमों के आधार पर सभी विभिन्न रीतियों को स्वचालित कर सकता है ? मैंने इस विषय पर विचार करना आरंभ कर दिया।

६१४. कार्य पद्धतियों में भिन्नता

क्राइडन के अभ्यास-काल की समाप्ति पर स्व. डब्लू. सी. बरेविक सेयर्स ने मुझे यह सम्मति दी कि मुझे अन्य पुस्तकालयों में भी जाकर वहां की कार्य पद्धतियों का निरीक्षण करना चाहिए। उन्होंने ही मुझे लंदन में उस समय हो रहे पुस्तकालय-सम्मेलन में निमंत्रित किया। इस कारण मुझे ग्रेट ब्रिटेन के बहुत से पुस्तकाध्यक्षों के दर्शन करने का सुअवसर मिला। उन लोगों ने बड़ी उदारता प्रगट की और मुझे अपने-अपने पुस्तकालयों में आने का निमंत्रण दिया। मैंने इस अतिथि-सत्कार का पूर्ण उपयोग किया तथा सभी प्रकार और सभी आकार के लगभग १२० पुस्तकालयों का भ्रमण किया। इन पुस्तकालयों की कार्य पद्धतियों और गति-विधियों को देख कर मैं चकित रह गया। एक पुस्तकालय में लेन-देन विभाग का संगठन बहुत ही आधुनिक था किन्तु पुस्तक-सूची प्राचीन प्रतीत होती थी। दूसरे पुस्तकालय का संकलन संभवतः पूर्ण ही था किन्तु सेवा-विधि सत्रहवीं शताब्दी के समान थी। एक अन्य पुस्तकालय की पुस्तकालय-समिति ने इस आधार पर पुस्तक वर्गीकरण का निषेध कर दिया था कि यह नितान्त मूर्खतापूर्ण है, परन्तु उस पुस्तकालय में स्वच्छंद-प्रवेश की आज्ञा थी। एक पुस्तकालय-भवन जो अभी बना था, वह प्रारम्भिक उन्नीसवीं शताब्दी के अनुसार निर्मित हुआ था। साथ ही एक दूसरा भवन उसके कुछ समय पूर्व निर्मित हुआ था वह आधुनिक उपयोग के अनुसार बनाया गया था। इन दोनों पुस्तकालयों की पुस्तकालय-समिति के प्रतिनिधि अपने-अपने भवन की निर्माण-कला पर गर्व करते थे। कुछ पुस्तकालयों में पुस्तक-रैक छत का स्पर्श करते, चाहे छत की ऊंचाई कितनी ही हो। कुछ दूसरे पुस्तकालयों में पुस्तक-रैक की ऊंचाई आदमी के बराबर थी और कुछ में बच्चों की ऊंचाई के बराबर थी। कुछ पुस्तकालयों में कार्य केवल कुछ घंटे ही होता था तो कुछ में सारे दिन ही कार्य चलता था। एक पुस्तकाध्यक्ष कांग्रेस-वर्गीकरण का दृढ़तापूर्वक समर्थन करते थे और बहुतों ने दशमिक-वर्गीकरण को अपनाया हुआ

था। इस प्रकार इन वर्गीकरण-पद्धतियों को नवागत विविध पुस्तकों की आवश्यकतानुसार इसलिये विकलित किया गया कि पुस्तकाध्यक्ष स्वयं किसी उलभन में न पड़ें। पुस्तक-सूची में आश्चर्यजनक भिन्नताएं पाई जाती थीं। कुछ पुस्तकालयों में पुस्तकें स्थूल रूप में जिल्द-बंद करके रखी थीं, कुछ पुस्तकालयों में अलग-अलग पृष्ठों को जोड़ कर रखने का रूप था तो कुछ में पुस्तकों का रूप काडों में था।

प्रविष्टि के रूप तथा व्यवस्था में भी ऐसी ही आश्चर्यजनक विभिन्नताएं विद्यमान थीं। मेरे एक पुस्तकालय से दूसरे पुस्तकालय के भ्रमण में पुस्तकाध्यक्षों ने मुझे स्वतंत्रता और स्वच्छंदता से पुस्तकालय देखने और समझने की सुविधा दी। उनके अपार आतिथ्य, उनकी पुस्तकालय कार्य में व्यक्तिगत लगन और उनके निरंतर उद्योग, इन विशेषताओं ने मुझे वे अनुभव प्रदान किये जिन्हें मैं आज भी कृतज्ञतापूर्वक एवं श्रद्धापूर्वक संजोकर रखता हूँ। केवल एक पुस्तकाध्यक्ष, जो भारत आ चुके थे, अपने खांखले बड़प्पन की डींग मारने लगे। मैंने जब उनके पुस्तकालय के संचालन-कार्य के अध्ययन की सुविधा मांगी, और अपने प्रश्नों का उत्तर मांगा, तो उन महाशय ने उसे "एक आदेश" समझ कर मुझे सहायता देने को साफ मना कर दिया। उन्होंने, उत्तर न देने का कारण, मेरे प्रश्नों की संख्या अधिक होना बताया। इसके अतिरिक्त मेरे अनुभव ऐसे अद्वितीय थे कि इनसे स्वयं ब्रिटिश पुस्तकाध्यक्ष भी अनभिज्ञ थे। मेरी निरीक्षण-पुस्तिका दिन प्रतिदिन विविधताओं से भरती जा रही थी। अब इसकी तुलना "ताचो ब्राहे" की निरीक्षण-पुस्तिका से की जा सकती थी। यह छोटें आकार की अवश्य थी किन्तु इसमें लिखे विवरणों का विस्तार बड़े ही आश्चर्यजनक रूप से हो सकता था। क्या इन सभी अनुभवों को परिपक्व करके कुछ सिद्धान्तों का रूप दिया जा सकता है? क्या एक ऐसा पुस्तकालय-विज्ञान हो सकता है जिसमें कुछ मूल-सिद्धान्तों के आधार पर पुस्तकालय-कार्य को परखा जा सके और उनके आधार पर नवीन समस्याओं का नई रीतियों द्वारा समाधान किया जा सके? इन प्रश्नों पर मैंने विचार करना आरंभ किया।

६२. गति के सिद्धान्त का दृष्टांत

कैपलर ने ताचो ब्राहे का अपार धन निरीक्षण-तालिका के रूप में ग्रहण किया और तथ्यों को घटाकर प्रसिद्ध ग्रहों की अपनी कक्षा में गति जान कर एक सिद्धान्त को जन्म दिया। कैपलर के इस कार्य ने खगोल-विद्या के जिज्ञासु विद्वानों को

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

[६३]

अत्यंत लाभ पहुंचाया। किन्तु कैंपलर के सिद्धान्त भी पर्याप्त मौलिक नहीं थे। भौतिक-शास्त्र तथा अन्य सम्बन्धित ज्ञान-क्षेत्रों में इसी प्रकार के लाभदायक सिद्धान्त तो थे, परन्तु वे मौलिक नहीं थे। अतः वे भी कैंपलर के सिद्धान्तों के समान असफल रहे। इन सिद्धान्तों की संख्या बहुत अधिक थी। इस संख्या के घटाने की आवश्यकता थी। न्यूटन ने ऐसा ही किया। उसने अपने गति के सिद्धान्तों का स्वरूप बनाया जो संख्या में केवल तीन थे। किन्तु उनमें सौर-मण्डल के ग्रहों की गति के सारे तत्व, जो उस समय मान्य थे, पूर्णरूप से विद्यमान थे। इसके अनिर्विक्त उनमें कुछ ऐसे भी सम्मिलित तत्व थे जिनका किसी को ज्ञान न था। इन सिद्धान्तों ने उस समय के खगोल-शास्त्रियों को अज्ञात-तत्वों की खोज के लिए प्रेरित किया और वे इसमें सफल भी हुए। दो नए ग्रहों का ज्ञान हुआ: एक तो अरुण (यूरेनस) और दूसरा वरुण (नेपचून)। हर्षल उन खगोलशास्त्रियों में से थे जिन्होंने न्यूटन के गति के सिद्धान्त को अपनाया और उसके द्वारा उपरोक्त ग्रहों को खोज निकाला। न्यूटन का पहला गति का सिद्धान्त क्या है? एक गतिहीन पिण्ड अपनी अवस्था में तब तक स्थिर रहता है जब तक उसे किसी शक्ति के द्वारा संचालित न किया जाय। कोई भी इसे मौलिक, प्रमाणिक तथा छोटा कहने के लिए बाध्य हो जायेगा। न्यूटन के अन्य दो सिद्धान्त भी मौलिक हैं। अनुमान लगाइये, एक सिद्धान्त यह कहता है कि “एक पिण्ड में तब तक गति नहीं आएगी जब तक उसमें शक्ति का संचार नहीं होगा।” इस सिद्धान्त तथा अन्य दो सिद्धान्तों में सौर-मंडल की गति का समस्त ज्ञान निहित है और इनके द्वारा नये ग्रहों की खोज की जा सकती है। इन सिद्धान्तों की गहराई अमाप्य है, और इनका अर्थ अनन्त, किन्तु ये इतने सरल हैं कि एकबारगी में बहुत छोटे दिखाई देते हैं। हां! “छोटा” शब्द ही इनके लिए उपयुक्त है। जब तक आप तालिकाओं को घटा कर कुछ सिद्धान्त न बना लें और उन कुछ सिद्धान्तों को घटा कर कुछ नियम न बना लें, जो कि छोटे हों, तब तक आप एक विज्ञान की रचना नहीं कर सकते। मौलिक सिद्धान्त जितने ही छोटे होंगे उतने ही वे अधिक प्रभावशाली होंगे और उस विज्ञान का समझना एवं प्रयोग करना भी उतना ही सरल होगा।

६३. सिद्धान्तों की लघुता

क्या इस प्रकार लघुता की प्रशंसा करना आपको बुरा लगता है? यदि ऐसा हो तो आप इस उद्धरण को सुनें। मैं इसे “माइंड” नाम की पत्रिका से पढ़ रहा हूँ। यह उद्धरण १६४७ के खण्ड ५६ के पृष्ठ १३३-१३५ से लिया गया है। यह अंश

६३१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

कै. आर. पौपेर के “न्यू फाउन्डेशन आफ लाजिक” नामक लेख में है। यह इस प्रकार है—“तर्क साधारण होगा चाहिए और एक प्रकार से छोटा भी। यहां तक कि बहुत सरल और छोटे तर्क का नियम निश्चित ही यह है:

अ/अ

अथवा शब्दों में “अ” की व्याख्या “अ” से ही की जा सकती है। यह नियम इतना छोटा है कि बहुत से उच्च कोटि के तर्कशास्त्री इसे अपनाने में भिन्नकते हैं। उनके विचार से इसे अपनाने में कोई लाभ नहीं। वे यह भी कहते हैं कि इससे तर्क की महत्वपूर्ण क्रिया का हनन होगा। हमने देखा कि यह रीति स्पष्ट रूप से नियम विरुद्ध नहीं है। इसीलिए हमें इसे अपनाना होगा, चाहे यह व्यर्थ ही क्यों न हो। परन्तु प्रथम अनुमान के विपरीत, यह व्यर्थ से भी अधिक है—वैसे यह विलक्षण भी है। फिर मौलिक रीतियों की लघुता से ही तो तर्क का आकार बनता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि आधारभूत कल्पनाओं की लघुता हानिकर होने की अपेक्षा लाभदायक ही हो, किन्तु कल्पना का आधार ऐसा हो कि हम अपने कार्य में सफल हो जायें। सिद्धान्तों की व्युत्पत्ति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ये बहुत ही शक्तिशाली होते हैं। इनकी सहायता से हमने यह देखा कि हम तर्क के क्रमिक नियमों को प्राप्त कर रहे हैं... और सभी तर्कपूर्ण धारणाओं की परिभाषा भी निकाल रहे हैं।”

६३१. लघुता की एक कहानी

हमारी तमिल भाषा में एक कहावत है—सम्भवतः आपकी हिन्दी में भी हो—जिससे विज्ञान के सैद्धान्तिक नियम का आभास होता है। वह इस प्रकार है—“देखने में यह एक भली गाय सी प्रतीत होती है, पर जब यह उछलती है तो एक भयानक चीते के समान हो जाती है।” एक मौलिक नियम की लघुता उन असावधान लोगों को धोखे में डाल देती है जो इसे निर्बल एवं निरर्थक व्याख्या समझ कर छोड़ देते हैं। उनको ऐसा ज्ञात होता है कि इसके प्रवेश से विज्ञान की कुछ महत्ता नहीं बढ़ती। लघुता के विस्तार को जब विधिवत् देखा जाता है तब इसकी असीम सामर्थ्य को स्वीकार करना पड़ता है। मुझे एक बहुत सरस घटना याद है जिसमें मौलिक नियमों की लघुता के कारण एक घनिष्ट मित्र के पारस्परिक सम्बन्धों में प्रसन्नता की लहर आ गई। वे एक विचित्र व्यक्ति थे जिनमें अच्छाइयां

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

[६३२]

और बुराइयां समान रूप में विद्यमान थीं। उनके व्यक्तित्व में शक्तिशाली अहं और तीव्र स्पर्धा का समावेश था। इन दोनों कारणों से सौभाग्यवश वे किसी प्रकार सम्मान पाने की इच्छा से समाज में इस विचार से उतरे कि वे दूसरों से श्रेष्ठ हो जायें और उनकी कीर्ति भी बढ़ जाय। मैंने “सौभाग्यवश” समाज में उतरने की बात इसलिए कही कि यदाकदा उन्होंने जनकल्याण के लिए बड़े ही लाभदायक कार्य किये थे। बहुधा ऐसे जनकल्याण के कार्य फलीभूत होते रहे और बहुत देर बाद उन्हें ऐसा लगा कि इन कार्यों का फल उनकी आवश्यकता से अधिक हो चला है। इसपर उनके अहं तथा स्पर्धा के भाव जनकल्याण कार्यों को नष्ट करने के लिए उतारू हो गए। मेरी पुस्तक “फाइव लाज आप लाब्रेरी साइंस” का जब अच्छा स्वागत हुआ तब मेरे मित्र की स्पर्धा का पारावार न रहा। एक दिन इन्हीं मित्र ने मेरी मेज पर सी. आर. सन्डरसन की पुस्तक “लाइब्रेरी-ला” की एक प्रति देखी। इससे इनकी आग और भी भड़क गई और अपने चेहरे को विकृत बना कर बोले—“आपकी पुस्तक नई कैसे हुई? यह भी तो एक पुस्तकालय सिद्धान्त की पुस्तक है। लोग आपकी पुस्तक को मौलिक रचना कैसे कह सकते हैं?” अंग्रेजी के अनैकार्थ शब्द (ला) ने उन्हें धोखे में डाल दिया। मैंने कहा कि, “मेरे सिद्धान्त मौलिक हैं और इनके वैधानिक हैं। मेरे सिद्धान्त मामूली हैं और इनके विधान के अन्तर्गत लागू किये जा सकते हैं।” अपने सिद्धान्तों को छोटा बताना चमत्कारिक सिद्ध हुआ। उनके मुख पर चमक आ गई। मुझे बड़ी सांतवना मिली। उन्होंने कहा—“अच्छा तो क्या आपके सिद्धान्त मामूली (छोटे) ही हैं? मुझे यह मालूम नहीं था। यदि सन्डरसन की पुस्तक ठोस है तो आप पुस्तकालय के लिए और अधिक प्रतियां क्यों नहीं खरीद लेते?” यह असम्बद्ध वार्ता इसलिए सुनाई गई कि आप विज्ञान के मूल सिद्धान्तों पर और पुस्तकालय-विज्ञान पर (यदि ऐसा कोई विज्ञान है) गम्भीरता से विचार करें। ऐसा न हो कि हम इससे अनभिज्ञ ही रह जायें क्योंकि ये सिद्धान्त साधारण और छोटे प्रतीत होते हैं।

६३२. विज्ञान के स्तर पर आना

विज्ञान के स्तर पर पहुँचने के लिए किसी भी विषय के तथ्यों का पर्याप्त निरीक्षण कर उन्हें एकत्रित करना चाहिए। फिर इन्हें छांट कर क्रमबद्ध करना चाहिए तथा उनकी क्रिया के सम्बन्ध को समझ कर किसी एक व्याख्या या छोटें से सूत्र में परिवर्तित कर लेना चाहिए जिसमें सारे तथ्यों का सार निहित हो। यह केवल सूचीकर्ता के वश की बात नहीं। इस कार्य को करने के लिए क्रियाशील भावनापूर्ण

६४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

मनुष्य का होगा आवश्यक है। एक सुगम व्याख्या, छोटा सूत्र, जिसके थोड़े से शब्दों को हृदय ग्रहण कर लेता हो, जिसमें सहस्रों विभिन्न तथ्यों के सम्बन्ध का ज्ञान निहित हो, उसे ही वैज्ञानिक सिद्धान्त कहा जा सकता है। ऐसे ही सिद्धान्त हमारी बुद्धि को प्रत्येक तथ्य के क्रम का ज्ञान कराते हैं। हमें बहुत ही आसानी से तथ्य का विस्तार समझ में आ जाता है। और हमारा हृदय बोझ अनुभव न कर के तथ्य की सत्यता को ठीक प्रकार समझ लेता है। यद्यपि सिद्धान्त-रचना केवल उत्साहित भावना द्वारा ही होती है किन्तु आविष्कार द्वारा इसका विश्लेषण और परीक्षण प्रत्येक विचारणीय रीति से तब तक होना चाहिए जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि उसकी भावना ने उसे धोखा नहीं दिया और इसके अतिरिक्त उसका सिद्धान्त घटना चक्र के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित किये हुए है। गणितज्ञ एच. रामानुजन ने अपने एक ऐसे मित्र से जो उसे "प्रतिभाशाली" कह कर पुकारा करते थे, कहा था—“मुझे रात्रि में आकर देखां जब मैं अपने सूत्रों की यथार्थता का परीक्षण करने में आधी रात व्यतीत कर देता हूँ।” भौतिकशास्त्री फ़ैरेडे ने भी इसी प्रकार कहा था—“संसार को इस बात का क्या पता कि कितने विचार और परिकल्प वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता के मस्तिष्क में आते हैं और शान्ति एवं गुप्तरूप से अपनी ही आलोचना से कुचले जाते हैं।” वह कौन सी शक्ति है जो मानवीय भावनाओं को किसी विज्ञान के सिद्धान्तों की ओर अग्रसर करती है और मनुष्य को तब तक पागल बनाए रखती है जब तक सिद्धान्तों की उपयोगिता एवं सार्थकता सिद्ध न हो जाय ? यह वही अतृप्त भावना है जिसके द्वारा सिद्धान्तों को छोटे सूत्र में बांधा जाता है—छोटी व्याख्या की जाती है—अथवा यह कहें कि ये ही मनुष्य के यथार्थ अनुभव हैं।

६४. शंका का विषय

क्या मनुष्य के वे अनुभव जो पुस्तकालय सेवा की स्थापना एवं निरंतर विकास के यथार्थ से सम्बन्धित हैं, घटाने पर थोड़े से वैज्ञानिक सिद्धान्त बन सकते हैं ? मेरा उत्तर है, हां। ये सिद्धान्त क्या हैं ? इसके सम्बन्ध में आप अगले व्याख्यान में सुनेंगे। इन सिद्धान्तों का पृथक्करण एक ऐसी शर्त को पूर्ण कर देता है जिसके द्वारा हमें इस प्रश्न का उत्तर “हां” में मिलता है—क्या पुस्तकालय-विज्ञान कोई विज्ञान है ? “फाइव लॉज आफ लाइब्रेरी साइंस” की प्रस्तावना में श्री पी. एल. शिवास्वामी अय्यर ने एक शंका इस भांति प्रगट की, “इस विषय से ज्ञान को क्रमबद्ध करने का प्रयास किया गया है और प्रमाणित किया गया है कि इसने

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

[६५१]

अब विज्ञान का स्तर पा लिया है। यह तर्क करना आवश्यक है कि पुस्तकालयों के संगठन तथा प्रबन्ध को हम विज्ञान कहे अथवा कला।"

६५. अध्ययन सामग्री अनावश्यक

इस शंका का आधार अध्ययन की सामग्री भी मानी जा सकती है। एक सीमित दृष्टिकोण से विश्वविद्यालय के अध्ययन क्षेत्र में पारिभाषिक रूप में प्रचलित और विख्यात शब्द है "विज्ञान" जो भौतिक रूप से संसार और उसकी घटनाओं से सम्बन्ध रखता है। कालान्तर में संसार के प्राणी तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं को भी विज्ञान में सम्मिलित कर लिया गया—और इसे अब प्राकृतिक विज्ञान कहते हैं। यदि "विज्ञान" शब्द का उपयोग इन्हीं दो अर्थों में करें तो निश्चय ही हम पुस्तकालय-विज्ञान की आशा नहीं कर सकते। किन्तु विज्ञान के एक दूसरे दृष्टिकोण के विकास को भी आधार मिलता रहा है। इस दृष्टिकोण से किसी भी विषय की सामग्री का परीक्षण करने पर उसे विज्ञान कहना असम्बद्ध नहीं होगा। अर्ध-शताब्दी पूर्व कार्ल पियर्सन ने इन शब्दों में इस विषय पर आवाज उठाई, "विज्ञान की सामग्री अपार है—प्रत्येक प्राकृतिक घटना का समूह, प्रत्येक सामाजिक जीवन का रूप, प्रत्येक भूत या वर्तमान की उन्नति विज्ञान की सामग्री है और विज्ञान की सामग्री जीवन भर साथ-साथ बढ़ती है।"

शब्दकोश की विज्ञान पर व्याख्याएं, जो साधारण दृष्टिकोण को अपनाए हुए हैं, ये हैं—

(१) "एक पद्धति जो वैज्ञानिक नियमों पर आधारित हो अथवा रूप ले रही हो, प्रबन्ध, कार्यप्रणाली, इत्यादि, की रीतियों, व्यवहार तथा उपयोग में वैज्ञानिक सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल हो, जैसे गृह-विज्ञान, पशु-पालन-विज्ञान।"

(२) "एकत्रित तथा स्वीकृत ज्ञान, जो साधारण तथ्यों के आधार पर पद्धति एवं सूत्र में रखा गया हो, और जो सत्य की खोज अथवा जीवन के कार्यों में उपयुक्त हो" इसी दृष्टिकोण से पुस्तकालय-विज्ञान भी विज्ञान कहा जा सकता है। अध्ययन की सामग्री इसको विज्ञान कहलाने से वंचित नहीं कर सकती है।

६५१. आक्सफोर्ड की प्राचीन रीतियां

इस सम्बन्ध में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की एक प्राचीन रीति अत्यन्त लाभ-प्रद सिद्ध होगी। इस रीति के अनुसार प्राचीन तथा आधुनिक दर्शन-शास्त्र, तर्क तथा

६५४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

सम्बन्धित विषयों को भी विज्ञान कहा जाता था। उदाहरणस्वरूप मार्लिंकुत ग्लैडस्टोन नामक पुस्तक में हमें मिलता है, "हैम्पडन ने विज्ञान में परीक्षण किया।" मार्क पैटीशन कहते हैं कि "पाठ्यक्रम में निर्धारित अरस्तू के अंश को विज्ञान कहा जाता था।"

६५२. जैवन का प्रमाण

जैवन की उक्ति यह है कि "विज्ञान की उत्पत्ति विषमता के बीच समानता की खोज से होती है।" यह उक्ति विषय की सामग्री को एकदम छोड़ जाती है। इसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कोई भी अनुसंधान योग्य विषय पूर्ण विज्ञान है।

६५३. शब्दकोश का प्रमाण

"न्यू इंगलिश डिक्शनरी" में किसी विषय को विज्ञान कहने के लिए केवल आवश्यक विशेषताएं बताई गई हैं और उसमें अध्ययन सामग्री का विवरण नहीं है—यह चौथी परिभाषा उसमें से रखी गई है—"एक अध्ययन की शाखा, जिसका सम्बन्ध प्रकाश में आए हुए अथवा क्रमवद्ध वर्गीकृत विचारपूर्ण तथ्यों से है, जिनको एकत्र करके सामान्य नियमों का रूप दिया जा सके, जिसके अन्तर्गत विश्वस्त प्रणालियाँ द्वारा उस विषय के क्षेत्र में नये सत्याँ का अनुसंधान किया जा सके।"

६५४. उमर खय्याम की अभिलाषा

किसी भी विज्ञान की विशेषता इस बात में नहीं कि वह किस विषय का निरूपण करता है, वरन् इस बात में कि वह उस विषय के विचार विनिमय से क्या प्राप्त करता है। उमर खय्याम की अभिलाषा थी—

आह, प्रिये! कर-गत करने को अखिल प्रकृति का दुःखद विधान
किसी तरह विधि से यदि मिल हम रच सकते षड्यंत्र महान;
छिन्न-भिन्न कर एक बार ही करते क्या न उसे निर्मूल।
निर्मित करते फिर निज कर से मनाकामना के अनुकूल।

(अनु. केशव प्रसाद पाठक)

६६. अध्ययन के निश्चित ढंग

ऐसा ज्ञात होता है कि किसी विषय के अनुसरण का ढंग ही शिवास्वामी अच्यर की शंका का दूसरा कारण रहा होगा। एक शताब्दी पूर्व बर्कबैक ने विशुद्ध विज्ञान के विषयों को पढ़ाने में प्रयोगात्मक प्रदर्शन का उपयोग किया, और कारीगरों का कार्य अधिक कुटुम्बतापूर्ण होने लगा। इसी कारण प्रयोग को विज्ञान का एक आवश्यक अंग माना जाने लगा और तभी से विज्ञान शब्द का चलन हुआ तथा इस शब्द का क्षेत्र भी सीमित कर दिया गया। इस परिवर्तन के पूर्व जिस विषय को आज हम विज्ञान कहते हैं वह विज्ञान नहीं, प्राकृतिक दर्शन कहलाया जाता था। यह प्राचीन शब्द वर्तमान शताब्दी के आरम्भ तक प्रचलित रहा। जब प्रयोगों का विस्तार होने लगा तब विज्ञान शब्द का उपयोग भी निर्धारित क्षेत्र में होने लगा। परन्तु यह सीमित रूप प्रयोगात्मक अध्ययन के नवोद्भूत विचार द्वारा ही आया। उदाहरणार्थ ग्रह-विज्ञान को ही ले लीजिये। यह सदैव विज्ञान की श्रेणी में ही रहा है। इसका अध्ययन प्रयोग द्वारा नहीं बरन् परीक्षण द्वारा ही होता है। हां। इतना अवश्य है कि परीक्षण मात्र पर आधारित विषय को "विज्ञान" कहने में उतना ही भय रहता है जितना पहली संतान को उस समय तक "बेबी" कहने में, जब तक कि दूसरी संतान उत्पन्न नहीं हो जाती। इसी भय को दूर करने के लिए "जीन्स" ने एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया। उनके अनुसार, "विज्ञान हमें जानना सिखाता है और कला हमें करना सिखाती है।" इसी आधार पर "पूर्ण विज्ञान" लाभदायक कला को जन्म देता है। ग्रह-विज्ञान नौविद्या की नींव है। "जेन्रंग" की व्याख्या निर्धारित विषय के अधिक अनुकूल है, "अलंकार-शास्त्र" में जिसे यहां कला कहा जाता है उसे कभी-कभी विज्ञान भी बताया जाता है। दोनों मान्यताएं ठीक हैं। विज्ञान क्रमवद्ध ज्ञान है। जब सम्भाषण के नियमों एवं सिद्धान्तों को एक पारस्परिक सम्बन्ध की पद्धति के रूप में प्रदर्शित किया जाता है तो यह विज्ञान के क्रियात्मक नियमों में आ जाता है। कला वह ज्ञान है जिसे कौशल द्वारा कार्यक्षम बनाया जा सकता है। जब अलंकार-शास्त्र के नियम एवं सिद्धान्त सम्भाषण की वास्तविक रचना में प्रयुक्त होते हैं तब वे कला के क्रियात्मक नियमों के अन्तर्गत आ जाते हैं। यह दृष्टिकोण नियमों तथा सिद्धान्तों की व्युत्पत्ति की विधि को केवल प्रयोग द्वारा ही नहीं सीमित रखता बरन् परीक्षण को भी अपनाने में नहीं हिचकता, जैसा कि ग्रह-विज्ञान में भी है। "जेन्रंग" द्वारा प्रस्तुत दृष्टांतों की समानता के अनुसार हम यह मान सकते हैं कि पुस्तकाध्यक्षता एक कला है किन्तु इसके साथ हम पुस्तकालय-विज्ञान की उपस्थिति को अस्वीकार नहीं कर सकते। इसके आधार पर ही हमें

६७]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

पुस्तकालय की कला स्थापित करनी है। इसी दृष्टिकोण से कृषि-विज्ञान, मनो-विज्ञान, इतिहास-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान तथा समाज-विज्ञान जैसे शब्दों का प्रयोग भी प्रचलित है।

६७. गणित सम्बन्धी व्यवहार

विज्ञान शब्द की निर्धारित सीमा में गणित सम्बन्धी व्यवहार निहित होते हैं, क्योंकि विज्ञान गणित के वश में है। इस दशा में विज्ञान कहलाने वाले किसी भी विषय का स्वत्व केवल इस बात पर ही नहीं निर्भर होता कि उसके अध्ययन में गणित का उपयोग एक उपकरण की भांति किया जाता है, किन्तु साथ ही इस पर भी कि उस विषय के अन्तर्गत गणित भी एक उपकरण के रूप में आता है। हमें ज्ञात है कि गणित एक मृत विषय नहीं। यह सदैव विकसित रूप में रहा है और अन्य विषयों के अध्ययन में एक उपकरण के रूप में रहा है। गणित के धर्मपिता न्यूटन के पूर्व इस विषय की सामर्थ्य अलग-अलग अंकों में ही सीमित थी। यही कारण था कि इनके पहले बहुत ही कम विज्ञान के ऐसे विषय हुए जो गणित सम्बन्धी व्यवहारों के वशवर्ती हों। चलन तथा कलन के आविष्कार ने गणित की सामर्थ्य को बढ़ा दिया और इसके साथ ही "विज्ञान" शब्द का क्षेत्र भी बढ़ गया। कुछ समय पश्चात् "शुद्ध विज्ञान" शब्द गढ़ा गया। यह शब्द इस विचार को रख कर गढ़ा गया कि विज्ञान गणित सम्बन्धी व्यवहारों में भी प्रयुक्त हो सके, अर्थात् गणित सम्बन्धी मापदण्ड ठीक-ठीक निर्धारित हो सके। उदाहरणार्थ, इस दृष्टिकोण ने अर्थ-विज्ञान को "विज्ञान" कहलाने के योग्य नहीं रखा। उन्नीसवीं शताब्दी ने गणित में एक और योगदान दिया जिसके द्वारा इसकी सामर्थ्य और भी बढ़ गई और साथ ही साथ विज्ञान का क्षेत्र भी बढ़ गया। गणित की यह सामर्थ्य "गास" ने पैदा की, जिन्होंने "दोष के भ्रूकाव" का आविष्कार किया। इस सिद्धान्त के द्वारा निरीक्षण तथा प्रयोग से प्राप्त किये हुए मापों का सबसे अधिक सम्भाव्य मूल्य निर्धारित किया जाता है। "गाल्टन" ने इस सिद्धान्त का प्रयोग "उत्पत्ति-विज्ञान" में किया। कार्ल पियर्सन तथा कुछ अन्य लोगों ने गणित की एक नवीन सामर्थ्य को विकसित किया और इससे गणित की एक नई शाखा "संख्या विश्लेषण" की उत्पत्ति हुई। गणित की यह शाखा उन सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने में सहायता देती है जो सत्य पर आधारित हैं और जिन्हें सत्व-जगत में प्रयुक्त किया जाता है, यद्यपि प्रत्येक सत्व से कुछ भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। ये सिद्धान्त केवल सांख्यिकी द्वारा ही सार्थक होते हैं। उदाहरणार्थ,

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

[६७]

सांख्यिकी द्वारा हम यह निरीक्षण करते हैं कि पासे के खेल में प्रत्येक भुजा छठवीं बारी में आती है। किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि किस विशेष बारी में कौनसी भुजा आएगी। गणित की इस नवीन सामर्थ्य की सहायता से रजिस्ट्री करने वाला व्यक्ति यह बता सकता है कि एक समाज में प्रति वर्ष कितने बच्चे उत्पन्न होंगे और उनमें १००० में से ५०० लड़कियां होंगी। इस सिद्धान्त की सार्थकता केवल सांख्यिकी तक ही सीमित है। इसके आधार पर हम यह भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि “कुचैला” के घर उत्पन्न होने वाला बच्चा निश्चित ही लड़की होगी। इन नवीन सिद्धान्तों की श्रेणी, सांख्यिकी के पूर्व, गणित के सिद्धान्तों से भिन्नता रखती थी। दूसरे शब्दों में गणित के सामर्थ्य की यह उन्नति जो सांख्यिकी-तालिका की व्याख्या करती है, साधारणतया प्रकाशमान घटना के बीच गुप्त घटनाओं को भी प्रकाश में ले आती है। सांख्यिकी, सार्थकता के सिद्धान्तों का सूत्रधार है और बहुत से विषयों को “विज्ञान” शब्द के क्षेत्र के अन्तर्गत लाती है। यही सांख्यिकी भौतिक विज्ञान जैसे पुराने विज्ञान से केन्द्रक भौतिक विज्ञान तथा सांख्यिकी गति विज्ञान जैसी नवीन शाखाएं उत्पन्न करने में सहायक हुई है। कार्ल पियर्सन ने विज्ञान-जगत के विषयों में मॉट्रिक्स प्रत्यय लगाना आरम्भ किया। उन्होंने अपनी प्रयोगशाला का नाम बायोमैट्रिक प्रयोगशाला रखा और अपनी पत्रिका का नाम बायोमैट्रिका रखा, तथा अपने सहयोगी-कार्यकर्ताओं का नाम बायोमैट्रीशियन्स। उन्होंने केवल अपने अध्ययन क्षेत्र को गणित तथा सांख्यिकी के व्यवहार द्वारा महत्व देने के लिए ही ऐसा किया। तभी से बहुत से विज्ञान के विषय अपने नाम में मॉट्रिक्स या मैट्री प्रत्यय लगाने लगे जिससे उनके विज्ञान होने का दावा न छिन सके। उदाहरणार्थ, फोनोमैट्रिक्स, साइकोमैट्रिक्स, इकोनोमैट्रिक्स तथा एन्थ्रो-पोमैट्री। इस झुकाव का वास्तविक परिणाम यह हुआ कि गणित की यह नवीन सामर्थ्य बहुत से अध्ययन के विषयों को शब्दकोश में “विज्ञान” शब्द की इस परिभाषा के अन्तर्गत ले आई, जिसका अर्थ कुछ इस प्रकार है:

“साधारणतः तथ्यों के निरीक्षण एवं वर्गीकरण से, विशेषतः प्रमाण के यांग्य व्यापक सिद्धान्तों के प्रतिपादन से, यथार्थ में परिमाण सम्बन्धी सूत्रों से, तथा मुख्यतः अनुमान एवं कल्पना से, सम्बन्धित”—विज्ञान है।

क्या इस रूप में हम पुस्तकालय-विज्ञान के बारे में कुछ कह सकते हैं? स्वर्गीय मिर्जा इस्माइल के इस परीक्षण में सीधा प्रमाण मिलता है। यह अंश “अखिल भारतीय पुस्तकालय सम्मेलन” के स्वागत भाषण से लिया गया है, जो जयपुर में १९४४ में हुआ था। स्वर्गीय मिर्जा इस्माइल ने इसके पूर्व बम्बई में हुए सम्मेलन के लेखों का संदर्भ दिया है जो इस प्रकार है: “जब कोई इस सम्मेलन की कार्यवाही

६८]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

का अवलोकन करता है तो उसके लेख, नामों की सूची तथा सांख्यिकी आवरण देख कर चकित रह जाता है।" इसी प्रकार आप देखेंगे कि गणित हमारे विषय के कई रूपों में एक उपकरण की भाँति उपयोग में आता है, जैसे: वर्गीकरण, सूचीकरण, पुस्तक-चुनाव, पुस्तक-व्यवस्था, तथा पुस्तकालय-संगठन।

६८. स्थलशास्त्र—एक उपकरण

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि एक उपकरण के रूप में गणित की सामर्थ्य अपार है। इसकी एक शाखा, स्थलशास्त्र तो परिमाण सम्बन्धी मान्य अंक के बन्धन भी तोड़ चुकी है, और यह सीधे गुण सम्बन्धी मान्य अंक से सम्बन्धित है। स्थलीय-गणित में आकृति के उन गुणों के अध्ययन का समावेश होता है जिन पर आकृति को विकृत करने पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जब तक कि आकृति में ही कुछ जोड़-तोड़ न की जाय। परिमाण के बिना गणित बहुतों को चैन की सांस ला सकता है। ऐसा चाहे वास्तव में हो या न हो पर यह निश्चित है कि गणित अनेक नवीन विषयों को विज्ञान की श्रेणी में लाता है। उदाहरणार्थ, अब तक इसे प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान अथवा साइकोमेट्रिक्स ही कहा जाता था। इसे मनोविज्ञान की शाखा में स्वीकृत कर लिया गया था और इसे विज्ञान कहना उपयुक्त समझा जाता था, किन्तु "कर्ट लैविन" ने क्षेत्र-मनोविज्ञान को भी स्थलीय-गणित में ले लिया और इसे विज्ञान बना दिया। उन्होंने इसे स्थलीय-मनोविज्ञान का नाम दिया। उन्होंने जीवन-अन्तर (ज) की विचारधारा से मनोविज्ञान को स्थलशास्त्र से मिलाया (तथ्यों पर आधारित स्थल-शास्त्र, जिसमें व्यक्ति का समय-विशेष में व्यवहार (व) निश्चित किया जाता है)। उनके अनुसार मनुष्य को (म) तथा वातावरण को (वा) मान कर निम्नीलिखित साम्य बना :

$$व = f(ज) = f(म, वा)$$

मैंने यह विषय इसलिए उठाया क्योंकि हमारे अध्ययन का विषय केवल दश-मिक तथा संख्या गणित से ही सम्बन्धित नहीं वरन् परिमाण-रहित, गुण-सम्बन्धित स्थलीय-गणित से भी सम्बन्धित है। मैं अभी तक अपने विषय में ऐसी शाखाओं का विभाजन नहीं कर सका जिनका अध्ययन स्थलशास्त्र के अनुसार हो सके, और न ही मैंने अभी तक किसी को ऐसा कहते हुए सुना ही है। कौन जानता है कि इस विश्वविद्यालय के पुस्तकालय-विज्ञान का विभाग एक दिन इस कार्य को भी करने में सफल हो जाए ? जो कुछ भी हो ! काफी समय व्यतीत हो चुका है, और संभवतः गणित को अपने विषय का माध्यम बनाकर विज्ञान का दावा करना भी अत्यन्त

पुस्तकालय-विज्ञान क्या कोई विज्ञान है ?

[६९]

आपत्तिजनक होगा। गणित के सामर्थ्य में इतनी वृद्धि हो गई है कि वह पुस्तकालय-विज्ञान के तत्त्वों का समाधान प्रस्तुत कर सकता है। और इधर पुस्तकालय-विज्ञान के तत्त्व भी गणित के व्यवहारों के वशवर्ती हैं। इस परीक्षण के आधार पर भी हम कह सकते हैं कि पुस्तकालय-विज्ञान एक विज्ञान है।

६९. सम्राट केन्यूट का स्मरण करना

अन्त में मैं केवल इतना ही कहूंगा कि जब कभी मानव मस्तिष्क में जानने की तनिक भी उत्सुकता होती है तभी विज्ञान की सम्भावना होती है। यह कौन कह सकता है कि विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र से ज्ञान की प्राप्ति हो ही सकती है ? कुछ विज्ञानों में जैसे बौद्धिक, सामाजिक या पुस्तकालय-विज्ञान—इनमें तथ्यों का वर्गीकरण करना अपेक्षाकृत कठिन है। व्यक्तिगत विचारों का प्रभाव ही अधिक शक्तिशाली होता है। बिना व्यक्तिगत पक्षपात अथवा बिना अचेतन मन की सहायता के किसी भी मत का निर्णय करना कठिन है। यही अवस्था गैलीलियो के समय में खगोल-विद्या एवं भौतिक-शास्त्र की थी। ऐसा सर्वसाधारण निर्णय वैज्ञानिक रीति एवं तथ्यों के यथार्थ ज्ञान के अभाव में ही दिया जाता है। वैज्ञानिक रीति द्वारा शिक्षा के अभाव के कारण वर्तमान नागरिकों में स्पष्ट विचारधारा बहुत कम है, यहां तक कि नहीं के बराबर है। इसी कारण वे अनुत्तरदायी निर्णय ही दे सकते हैं। दुःख है कि विश्वविद्यालयों के क्षेत्र भी इससे अछूते नहीं। इसी कारण उच्चाधिकारी, अन्य क्षेत्रों तथा विज्ञान के बीच एक लोहे की दीवार खड़ी कर देते हैं। वे नवीन विषय को मान्यता देने की बात भी नहीं सुनते। ऐसे समय में हमें सम्राट केन्यूट का स्मरण हो आता है। उन्होंने कहा था—“आइए उन पर दया करें और आगे बढ़ें।” दिल्ली विश्वविद्यालय सम्मान का पात्र है, क्योंकि वह इस प्रकार की अवैज्ञानिक विचारधारा और हठधर्मियों से मुक्त है।

मैं अगला व्याख्यान पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्तों पर दूंगा।

व्याख्यान ७

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

यह व्याख्यान पुस्तकालय-विज्ञान के पांच-मौलिक सिद्धान्तों के विशद स्वरूप का वर्णन करता है और उनके आधार पर विभिन्न पुस्तकालय-कार्यों का अध्ययन करता है। कर्मचारी-सूत्र के द्वारा पुस्तकालयों में संगठित विकास का एक मार्ग इंगित करता है।

७०. अंधकार में खोज

पिछले व्याख्यान में मैंने आपको बताया था कि पुस्तकालय-विज्ञान में “विज्ञान” का अर्थ उसकी विषय-वस्तु पर आधारित नहीं अपितु विभिन्न पुस्तकालय यथार्थों पर आधारित है जिनका समावेश कुछ साधारण एवं लघु सिद्धान्तों में हो जाता है। किन्तु लघु सिद्धान्तों को अनावश्यक समझ कर उपेक्षित कर दिया जाता है। “न्यू इंगलिश डिक्शनरी” से जो व्याख्या मैंने प्राप्त की वह बताती है कि ये सिद्धान्त ऐसे होने चाहियें जिनमें नवीन तत्व एवं व्यवहार पुस्तकालय-विज्ञान की परिभाषा के अन्तर्गत आएँ।

१९२५ से १९२८ तक मेरा मस्तिष्क अनेक भागों में बंटा रहा। पहला भाग वर्गीकरण-प्रबन्ध की रूप रेखा बनाने पर केंद्रित था और दूसरा, सूचीकरण कला के निर्माण में व्यस्त। तीसरा, पाठकों की संदर्भ-सेवा के बारे में सोच रहा था, और अनुभवों से बहुत कुछ सीख भी रहा था। चौथा, संचलन में आवृत्ति कार्यों के बारे में सोच रहा था, और प्रयास कर रहा था कि वे प्रामाणिक और संयोजित हो सकें। पांचवां भाग कहीं महीनों तक चक्कर काटता रहा जो संगठन और भवन की आवश्यकताओं के बारे में खोज कर रहा था। ये हृदय के संघर्ष वास्तव में सुखकर भी थे। उनके भावमय रूप में शान्ति थी क्योंकि अभी ज्ञात-यात का विष शैक्षणिक क्षेत्र में नहीं घुस पाया था। पर मस्तिष्क का छठा भाग बहुत ही विचलित अवस्था में था।

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७०१]

यह भाग उत्तेजना और चिन्ता से अत्यन्त व्याकुल था। ब्रिटिश पुस्तकालयों के असंख्य सिद्धान्त और क्रियाशीलता में वृद्धि देखकर ही ऐसा हो गया था। यह भाग भावनाओं के आलाड़न-विलाड़न को लगातार अनुभव कर रहा था। ऐसा वैज्ञानिक कार्य के साथ रहता है। उन कल्पनाओं के बीच रहकर सारी रात बगैर नींद के बितानी पड़ती थी। उसे न समाधान मिलता था न कोई राह। प्रकाश पाने की मात्र उत्सुकता धुंधली पड़ रही थी, और फिर थी लम्बी और ऊबड़-खाबड़ सड़क जो किसी भी मंजिल तक नहीं ले जाती थी। केवल दुःख और अवसाद तथा हंसी और खुशी के मिश्रण का रूप ही दिखाई पड़ रहा था। १९२५ के आरम्भ में पुस्तकालय को तीन मील दूर स्थित भवन में स्थानान्तरित करने के विचार ने उपचेतन मन में नवीन विचार जागृत कर दिया। किन्तु परिवर्तन के तकनीकी कार्य की समाप्ति के बाद, पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्तों का संघर्ष फिर अचेतनावस्था में आ गया। मुझे ऐसा लगा मानों मैं अंधकार में किसी गुप्तकोष की खोज में भटक रहा हूँ।

७०१. प्रकाश की किरण

इसी समय मुझे एक बहुत बड़ी सहायता मिली। यह सहायता मुझे श्री एडवर्ड बी. रॉस से मिली। उनके सम्पर्क से मुझे ज्ञान भी मिला। १९०६ से, जबसे वे मुझे गणित पढ़ाया करते थे, तब से अब तक, यह उन्हीं का व्यक्तित्व था—(जो पहले रक्त और मांस में था फिर बाद में आत्मा में उतर गया)—जो सदैव मेरे विचारों का प्रतिनिधित्व करता रहा। मेरा नया पुस्तकालय, प्रोफेसर के घर से कालेज जाने के रास्ते में पड़ता था। इसी कारण हमारा मिलना-जुलना अत्यन्त सुगम हो गया था। मेरे नए क्षेत्र में उनका गहरा अनुराग था। मैं अपनी कठिनाइयाँ और उन्नति के बारे में प्रतिदिन उन्हें बताया करता था। मेरी पहली और विशेष कठिनाई, जो मैं उन्हें अधिकतर बताया करता था, “पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित सिद्धान्तों की खोज कैसे हो?” समय-समय पर हम विभिन्न पहलुओं पर विचार किया करते किन्तु उनका पाना वैसा का वैसा असंभव रहा जैसा पहले था। एक संध्या प्रोफेसर रॉस चार बजे ही आ पहुँचे। हम अपने विचारों के सागर में अन्तिम डुबकी लगाने को तैयार हो गए, और हमारे दो घंटे सिद्धान्तों की एकरूपता पाने के प्रयास में व्यर्थ ही गए। उस समय लगभग ६ बजे थे। प्रोफेसर साहब घर जाने के लिए तैयार हो गए। वे अपनी मोटर-साइकल पर बैठे ही थे, कि प्रकाश की किरण काँध गई। सहसा उनकी आँखों में एक चमक आ गई और उनके हाँठ फड़कने लगे। मानों अब किसी छिपी हुई बात का उद्घाटन होने ही वाली है। मैं सोच में पड़

७११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

गया। प्रोफेसर रॉस ने कहा, “तुम्हारा मतलब है : पुस्तकें उपयोग के लिए।” वे मुस्कराए और उन्होंने मोटर-साइकल को चला दिया। मैं प्रसन्नता से विभोर हो गया। मुझे मेरा पहला सिद्धान्त मिल गया। मेरे प्रोफेसर ने मुझे एक दिव्य वस्तु दे दी।

७१. पहला सिद्धान्त

पुस्तकें उपयोग के लिए :

कितना मामूली, कितना छोटा और कितना गूढ़ वाक्य है। पुस्तक तकनीक और कार्य को यह कितना संजोए हुए है। पुस्तकालय के अनन्त कार्य—पुस्तक-चुनाव, पुस्तक का खरीदना, क्रमकरण, विभाजन, सूची पत्रिका, अलमारी में व्यवस्थित करना, पुस्तक-प्रदर्शन, प्रसार-कार्य, प्रचार-कार्य और संदर्भ-सेवा—एक एक करके सभी कार्य पहले सिद्धान्त की पूर्ति के लिए हैं—“पुस्तकें उपयोग के लिए।” पुस्तक का संजोना और खरीदना आभूषणों की तरह प्रदर्शन करना मात्र नहीं है, न ही यह स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय, शहर या व्यापारिक संस्थाओं का उपकरण ही है, न यह अजायबघर की प्रदर्शनी में शीशे के बक्सों में रखने की चीज है—यह किसी प्रदर्शन के लिए नहीं है अपितु उपयोग के लिए है।

७११. पुस्तक प्रदर्शन

जब मैं १९४६ में बम्बई पीपुल्स लाइब्रेरी के शताब्दी समारोह में भाषण देने गया, तब मुझे एक पुस्तक-प्रदर्शनी भी दिखाई गई। किन्तु उन्होंने प्रदर्शन किया क्या था? पुराने समाचारपत्र, अप्राप्य कोश और प्राचीन पुस्तकें! क्या ये पुस्तकें उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं? या इस अनुपयोगी कोश का अर्थ लोगों का आकर्षण इस बात पर केंद्रित करना है कि यह कोश अभी तक वैसे का वैसे ही पड़ा है? वे मुझे सम्मान प्रदान कर रहे हैं या मेरा उपहास कर रहे हैं—पहले सिद्धान्त ने मेरे कानों में फुसफुसा कर यह बात कही। दो वर्ष बाद, मुझे मद्रास के एक उद्योगी पुस्तक विक्रेता ने पुस्तक-प्रदर्शनी करने का सुझाव दिया। वे सभी पुस्तकें बिल्कुल नई थीं—एकदम नई पुस्तकें जिन पर चमकदार आवरण था और उनके सुन्दर मुखपृष्ठ थे। वे अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रदर्शित की गई थीं। इसी कारण प्रदर्शनी में पर्याप्त सहायता मिली। पहले सिद्धान्त की खोज करके मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७१३]

७१२. आकर्षक पुस्तकें

पहला सिद्धान्त हमें सावधान करते हुए यह कहता है कि पुस्तकें भद्दा और कृत्रिम अस्तित्व लिये होती हैं। उनका भद्दापन कम करने के लिए पुस्तकालयों को चाहिए कि बड़े कागजों पर छपे पुस्तकों के वे ही संस्करण खरीदें जिनमें सुन्दर छपाई हो और अनेक चित्र हों। उनका बाहरी रूप लोगों को बरबस अपनी ओर खींच ले। वे उसे उठाएं और जब खोलें तो उन्हें पढ़ने में आनन्द आ जाय। वे अच्छी अवस्था में साफ-सुथरे स्थान में रखी जानी चाहिए। जब उपयोग होते-होते वे बिल्कुल ही नष्ट हो जाएं तब समझना चाहिए कि पुस्तक का जीवन समाप्त हो चुका है, और उन्हें इसलिए कि वे प्राचीन हैं माल-असबाब की तरह दबा कर नहीं रखना चाहिए। यदि अभी उस पुस्तक का कार्य समाप्त नहीं हुआ तो उसकी नई प्रति खरीद लेनी चाहिए।

७१३. पुस्तकों का जीवन

पहला सिद्धान्त हमें यह स्मरण कराता है कि एक पुस्तक का कार्य विचारों का आदान-प्रदान करना है, किन्तु इस कार्य में बड़ी कठिनाइयां सामने आती हैं। विचारों के उपजते ही उनका आदान-प्रदान तो उसी व्यक्ति के साथ अच्छा हो सकता है जिसने उस विचार को गढ़ा है। क्योंकि ऐसे समय में विचारों की रचना को और भी बढ़ावा मिलता है—उच्चारण में उत्तर-चढ़ाव, अंगों की चेष्टायें, मुख की आकृति, नेत्रों की चपलता—यानी पूरे व्यक्तित्व में एक नवीन प्राण का संचार हो जाता है। पर एक पुस्तक में यह सब संभव नहीं होता। विचार ठोस रूप में केवल छपे रहते हैं। ये विचार तो अचल और थिडिंग पड़े रहते हैं। इसलिए पहला सिद्धान्त यह कहता है कि पुस्तकालय-अधिकारी तब तक असफल रहेंगे जब तक वे पुस्तकों में उन जीवित व्यक्तियों द्वारा प्राण-संचार नहीं कराते, जो सदैव पुस्तकों और पाठकों के मित्र हैं। कभी बम्बई, कलकत्ता या दिल्ली के यू. एस. आई. एस. पुस्तकालय में जाइये और फिर कमरे के क्षेत्रफल और पुस्तकों की संख्या की तुलना उन लोगों से कीजिए, जिनका काम है पुस्तकों को उपयोग में लाने के लिए निजी आकर्षण का प्रयोग करना। क्या आश्चर्य हो सकता है यदि पहला सिद्धान्त संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की प्रशंसा "पुस्तकालयों का देश" के रूप में करे? और वह भारत को क्या कहे? वह उसे बताता है कि पुस्तकों से भरी आलमारियों को ही पुस्तकालय नहीं कहते। अगर आप उनको देखने-भालने के लिए अनेक

७१४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

कर्मचारी भी रख लेंगे हैं, तो भी आप पुस्तकालय नहीं बना लेंगे। यदि आप पाठकों की भीड़ को पुस्तकालय में उनकी इच्छा पर छोड़ देंगे—तब भी वह पुस्तकालय नहीं होगा। पुस्तकालय तो तभी बनेगा जब पुस्तकें जीवित होंगी, जो पाठकों की सांस में सांस मिला रही होंगी और कर्मचारियों की सुखद सहायता उन्हें मिल रही होगी। यह सभी देशों के बारे में कहा जा सकता है। कई देशों ने इस पर ध्यान दिया और पुस्तक-भंडारों का पुस्तकालय खोल दिया। जहां तक पहले सिद्धान्त का प्रश्न है भारत के पुस्तकालय-अधिकारियों की ओर से निराशा ही मिलती है। यह सिद्धान्त आप से अपील करता है कि आपको इसका वकील बनना है और आपको ही भारत का भाग्य चमकाना है। पहले सिद्धान्त के बारे में विस्तृत रूप से आप संदर्भ-सेवा के अन्तर्गत पढ़ेंगे।

७१४. सामग्री परीक्षण

पहले सिद्धान्त की अनेक परीक्षाएं हैं जो पुस्तकालय की सामग्री से सम्बन्धित हैं। ये भवन की चमक, सुन्दरता और आकर्षण की परीक्षाएं हैं, जैसे—पुस्तकालय में प्रवेश करने के बाद बैठने का स्थान पाठकों के लिए आरामदेह है? मेजों के बीच का छोड़ा हुआ स्थान काफी है? प्रकाश पर्याप्त है? रोशनदान लगे हुए हैं, और फर्श ध्वनिहीन है? यह सब वस्तुएं संतोषजनक हैं या नहीं? पुस्तक-वक्ष में प्रवेश कर उसके संकरे मार्ग की चौड़ाई कितनी है? सबसे ऊपर के खानों में रखी पुस्तकों की लाइन पर पाठक का हाथ पहुंचता है या नहीं? क्या प्रत्येक लाइन, संकरे मार्ग, दीवार के भाग और खानों के पट्टों के लिए दर्शक लगे हैं? क्या प्रकाश उपयुक्त है और पुस्तकें खुले खानों में रखी हैं? क्या कोई भी पाठक उनके पास से निकल कर उन्हें आराम से बाहर निकाल सकता है? इत्यादि, इत्यादि। यह सिद्धान्त कार्य करने के घंटों को भी देखता है। जब इसे यह मालूम होता है कि पुस्तकालय सभी दिनों के सभी घंटे खुला रहता है तब इसे संतोष मिलता है। और यह पुस्तकालय से मानो कहता यह है—“आपके यहां वे सभी सामग्रियां हैं जिनसे पुस्तकों का उपयोग हो सके। इसके अतिरिक्त यदि आप संदर्भ पुस्तकालयों की आवश्यकता पर भी ध्यान दें, जो पाठकों और पुस्तकों में सम्पर्क स्थापित करायें, तो आप एक वास्तविक पुस्तकालय कहलायेंगे।” पुस्तकालय की सामग्री के विषय में विस्तार से आप पुस्तकालय-संगठन में पढ़ेंगे।

७२. दूसरा सिद्धान्त

दूसरा सिद्धान्त भी पहले सिद्धान्त की भांति बहुत सरल है। यह है—“पुस्तकें सब के लिए हैं।” संभवतः आप लोगों को इसे एक स्वतंत्र सिद्धान्त मानने में आपत्ति हो। जी हां। आपत्ति बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यह विचार पहले सिद्धान्त में सुस्पष्ट रूप में या सन्निहित रूप में नहीं आया। हो सकता है, हमारे यह कहने पर कि पुस्तकें उपयोग के लिए हैं, पुस्तकों का उपयोग किन्हीं चुने हुए लोगों के लिए ही हो। वास्तव में कुछ देशों ने अभी हाल में यही किया है। स्पष्ट है कि पुस्तक-बाजार में कुछ ही ऐसी पुस्तकें होती हैं जो एक साधारण व्यक्ति की आवश्यकता और उपयोग के लिए सार्थक सिद्ध हो सकें।

७२१. प्रजातन्त्र का आगमन

दूसरा सिद्धान्त तो प्रजातन्त्र के आगमन के प्रश्नात् ही अपना रूप ले सका, अर्थात् जब यह स्वीकार कर लिया गया कि सभी व्यक्ति चाहे वे किसी भी जाति के हों, चाहे उनका दिमागी ज्ञान कितना ही थोड़ा हो, और उनकी भाषा कोई भी हो, उनको जीवन भर पुस्तकों के माध्यम से स्व-शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर दिया जाना चाहिये। दूसरे सिद्धान्त का यह प्रजातान्त्रिक प्रतिपादन पश्चिम में सिर्फ उन्नीसवीं शताब्दी में रूप लेने लगा। हमें अपने देश में अभी इसका आकार बनाना शेष है। यहां तक कि पश्चिम में भी दूसरे सिद्धान्त के प्रतिपादन में काफी समय लगे गया अर्थात् पुस्तकालय सेवा को बच्चों और ग्रामीण जनता के लिए भी उपलब्ध किया गया। इस विचार की अभिवृद्धि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ही हुई। हमारे देश में अभी तक बच्चों और ग्रामीण जनता के लिए यह सुविधा अनुभव नहीं की गई, पर दूसरे सिद्धान्त ने हमें अनुभव करने के लिए बाध्य कर दिया है। फिर दूसरे सिद्धान्त का शब्द “सब” अंधे व्यक्तियों को भी सम्मिलित करता है। कालान्तर में दूसरे सिद्धान्त का फल अनुकूल ही हुआ क्योंकि अनेक देशों में राष्ट्रीय अंध पुस्तकालयों की स्थापना हुई। विशेष पुस्तकों को तैयार करना, इकट्ठा करना और उनका प्रसार करना इन्होंने अपने हाथ में लिया। इन विशेष पुस्तकों को ब्रेल पुस्तकें कहा जाता है जो अंधे व्यक्ति अपनी अंगुलियों के पोरों की सहायता से पढ़ सकते हैं। “पुस्तकें सब के लिए” में सब शब्द दूसरी यह मांग करता है कि पुस्तकालय सेवा को अस्पतालों के रोगियों, जेल के कैदियों और जहाज के कर्मचारियों के लिए भी प्रसारित करना चाहिए।

७२१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

दूसरे सिद्धान्त का समूहगान निम्नीलिखित है :

यह वह जगह

जहां अल्पमति को, पंडित को

ग्रंथों का दरबार खुला है।

कुछ विशिष्ट-जन नहीं,

यहां सबका स्वागत है।

निर्धन हो, धनवान

या कि वह हो नर-नारी,

सबकी खातिर—

हम पर हैं पुस्तकें अपरिरीमित।

चाहे कोई स्वस्थ

भले हो कोई रोगी,

चाहे हो वह गूंगा-अंधा,

पुस्तक सबके लिये यहां हैं।

हो चाहे फूहड़ कारीगर,

या हो वह शास्त्रज्ञ धुरंधर,

क्रूर दस्यु हो,

या हो वह मजदूर भोपड़ीवाला कोई,

पुस्तक उसके लिये यहां हैं।

बंड़ी वाला कैदी हो वह,

या दो वह शब्दों का शाहंशाह गुमानी,

सबकी खातिर—

हम पर हैं पुस्तकें अपरिरीमित।

एक-अनेक का भेद यहां पर—

लेश नहीं हैं।

यहां पुस्तकें सबकी खातिर,

हां—हां सबकी खातिर,

बंधु! अगर कुछ और अधिक तुम कहना चाहो—

कह सकते हो—

भूमंडल के लिए पुस्तकें—

हैं सागर के लिए पुस्तकें—

पास हमारे।

७२२. पुस्तकालय विधान

दूसरा सिद्धान्त यह मांग करता है कि देश की पुस्तकालय व्यवस्था का आधार वैधानिक हो। ऐसे होने से राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक विस्तृत रूप से पुस्तकों का उपयोग कर सकेगा। पश्चिमी देशों ने ऐसी वैधानिक मांगें बहुत पहले ही मान ली हैं। दूसरा सिद्धान्त केन्द्रीय प्रजातन्त्र सरकार और अनेक राज्यों की सरकारों से यह मांग करता है कि “पुस्तकें सभी के लिए हैं।” यदि पुस्तकों की सभी के लिए व्यवस्था करनी है तो पहला कदम “पुस्तकालय विधान” ही होना चाहिए। साथ ही यह सिद्धान्त केन्द्रीय सरकार से यह मांग करता है कि बुद्धिमानी और राष्ट्रीय अर्थ के हित में एक राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय की संस्थापना होनी चाहिए और देश के पुस्तकालय कार्य का एकमात्र शिखर उस संचित राशि के रूप में कार्य करे जिसमें से आवश्यकता पड़ने पर देश का कोई भी पुस्तकालय अपने पाठक की इच्छित पुस्तक प्राप्त कर सके। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि मद्रास सरकार ने पुस्तकालय बिल को विधान सभा में प्रस्तुत कर दिया है, और भारत सरकार ने विशेष व्यक्तियों की समिति बना ली है। यह समिति राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय की मांग पर विचार करेगी। दूसरे सिद्धान्त के अनेक रूप आप पुस्तकालय संगठन के अन्तर्गत पढ़ेंगे।

७२३. पुस्तक संयोजन का विस्तार

अब दूसरा सिद्धान्त एक अन्य तर्क भी उपस्थित करेगा। यदि हम उसे इस रूप में देखें कि “प्रत्येक पाठक, उसकी पुस्तक,” तो यह सिद्धान्त प्रश्न करता है कि पुस्तकालय को कैसी पुस्तकें खरीदनी चाहिए। यह कहता है कि पुस्तकालय को सामाजिक रुचि का अध्ययन करना होगा। उदाहरणार्थ यदि यह एक सार्वजनिक पुस्तकालय है तो इसे स्थानीय निवासियों के लिए उपयोगी पुस्तकें चुननी चाहिए। यदि यह एक स्कूल पुस्तकालय है तो इसे पाठ्यक्रम पर आधारित पुस्तकें ही नहीं खरीदनी चाहिए वरन् विचारणीय, कला और कारीगरी, विज्ञान और इतिहास, आत्मकथा और यात्रा से सम्बन्धित सभी साहित्य खरीदना चाहिए। क्योंकि बच्चों की जिज्ञासा असीम होती है। सार्वजनिक और स्कूल पुस्तकालयों में उपरोक्त विस्तृत ज्ञान की पुस्तकें होना ही पर्याप्त नहीं वरन् मस्तिष्क को विश्राम देने वाले सुगम साहित्य का होना भी आवश्यक है। किन्तु यह साहित्य कोई ऐसा हानिकर परिणाम न दे जैसा ताश का खेल देता है। वहां ऐसी गम्भीर पुस्तकें भी होनी चाहिए जो हमें सचेत करें, हमारे आन्तरिक जीवन को संतोष प्रदान कर सकें और हृदय का परि-

७३१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

वर्तन कर जीवन की महत्ता और उसका दार्शनिक अर्थ समझा सकें। दूसरा सिद्धान्त पुस्तकों के शरीर के विषय में यह कहता है कि उसकी भाषा और शैली सुगम तथा रोचक होनी चाहिए। पुस्तकालय में ऐसी पुस्तकें होनी चाहिए जो एक विद्वान से लेकर कम शिक्षित व्यक्ति तथा परिपक्व व्यक्ति से लेकर अपरिपक्व बच्चों तक प्रत्येक की समझ में आ सकें। दूसरा सिद्धान्त पुस्तकों के स्थूल शरीर के विषय में भी कुछ कहता है। उदाहरणार्थ बच्चों के लिए पुस्तकें बड़े टाइट और बड़े पृष्ठ की होनी चाहिए। उधर व्यावसायिक पुस्तकालय में व्यापार से सम्बन्धित ही पुस्तकों का समावेश होना चाहिए। दूसरे सिद्धान्त के रूप को आप विस्तार से पुस्तकों के चुनाव में पढ़ेंगे।

७३. तीसरा सिद्धान्त

जब हम तीसरे सिद्धान्त की ओर उन्मुख होते हैं तो हम उसे और भी सरल पाते हैं। यह है “प्रत्येक पुस्तक, उसका पाठक।” कहने का अर्थ यह है कि पुस्तक का भाग्य पाठक की मृदुली में है। इस सिद्धान्त के द्वारा हम सभी तक कर सकते हैं जब कि पुस्तक गतिहीन अवस्था में हो; न यह पाठक की मृदुली में भाग्य को आजमा ही पा रही हो, और न ही पाठक इसके स्वर को ग्रहण कर पा रहा हो। यह मात्र पुस्तकाध्यक्षों का कार्य है कि वे उसे पाठकों के पास पहुंचाएं या पाठकों को उसके पास लाएं। यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि पुस्तक कई दिनों तक अलमारी में अछूती बन्द पड़ी रहती है तो पुस्तकाध्यक्ष पर ही इसका दोष आता है।

७३१. पुस्तकालय प्रचार

इस दोष से बचने के लिए पुस्तकाध्यक्ष को लोगों के बीच जाना चाहिए और पाठकों से पुस्तकों की सिफारिश करानी चाहिए। उसे सम्भाव्य पाठकों का ध्यान नई पुस्तकों पर लाना चाहिए तथा समय-समय पर पुरानी पुस्तकों की अवस्था पर उनका ध्यान आकर्षित करना चाहिए। ऐसा उसे या तो किसी पुस्तकालय-पत्रिका के प्रसारण से करना चाहिए (हस्तालिखित या टाईप किया या प्रकाशित, पुस्तकालय के साधन के अनुसार) या स्थानीय समाचारपत्रों में समाचार देकर या सार्वजनिक जलसों में घोषित करके करना चाहिए। पुस्तक की कार्य-विधि सामान्य रूप में लाने के लिए पुस्तकाध्यक्ष समाचारपत्र में घोषित करके, सार्वजनिक जलसों में भाषण देकर, इतिहास बंटवा कर, और दुकानों, शिक्षण संस्थानों, क्लबों और यहां तक

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७३१]

कि घर-घर में जाकर लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, उसे पुस्तकालय में लोगों को आकर्षित करने के लिए हर तरह से प्रचार करना आवश्यक होगा। उसे तब तक चैन नहीं लेना चाहिए जब तक उसे यह ज्ञात न हो जाय कि प्रत्येक स्थानीय व्यक्ति पुस्तकालय का नियमित सदस्य है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे प्रचार कार्य में सदैव सतर्क रहना होगा। पुस्तकों कृत्रिम अस्तित्व लिए होती हैं। लोग पुस्तकों के पास सहज में नहीं आते। एक समुदाय को नियमित रूप से पुस्तकों पढ़ने के लिए वर्षों लग जाते हैं। उदाहरणार्थ, क्रायडन नामक ब्रिटिश उपनगर में एक सार्वजनिक पुस्तकालय को ठोस रूप से चलाने में लगभग पचास वर्ष से अधिक लग गये। इसका संचालन बहुत ही खूबी से हुआ और क्रायडन के सभी व्यक्ति शिक्षित थे, किन्तु पुस्तकालय इन पचास वर्षों की अवधि में केवल साठ प्रतिशत व्यक्तियों को ही नियमित सदस्य बनाने में सफल हो सका। अभी ४० प्रतिशत व्यक्तियों को पुस्तकालय में लाना शेष था। भारतीय पुस्तकालय अधिकारियों के लिए यह एक चुनौती है। हमारे लोग अधिकतर अशिक्षित हैं। और कुछ लोग शिक्षित होते हुए भी पुस्तक पढ़ने के अभ्यासी नहीं हैं। न वे स्कूल में, न दफ्तर में और न ही वे घर में पुस्तकों को मनोरंजन, ज्ञान-वर्द्धन या प्रेरणावश पढ़ने के इच्छुक होते हैं। न ही उन्हें अभी तक (क्रायडन के लोगों की भांति) उस रूप में अन्य लोगों को देखने का मौका ही मिला है। इसके अतिरिक्त, भारत में प्रकाशित पुस्तकें इंग्लैण्ड में प्रकाशित पुस्तकों से आधी भी आकर्षित नहीं हैं। फिर, क्रायडन के पुस्तकालय की तरह हमारे पास कला और शिल्प पर पुस्तकें पर्याप्त नहीं हैं, न ही वर्तमान विचारों पर पुस्तकों की संख्या ही पर्याप्त है। अतः लोगों का ध्यान पुस्तकालय कैसे आकर्षित कर सकते हैं? इन सब बातों का अर्थ हुआ कि यह एक भारी अड़चन है जो लोगों को बिना प्रचार या प्रसार के माध्यम से पाठकों को पुस्तकों की ओर आने से रोकती है। हम लोगों को पुस्तकों को न जानने के कारण दोषी नहीं ठहरा सकते। यदि लोग पुस्तकालय में नहीं आते, तो यह सारा दोष पुस्तकाध्यक्षों और अधिकारियों का है। इन लोगों का कर्तव्य है कि पाठकों को पुस्तकों के समीप लाने के लिए सब कुछ करें। प्रचार के सभी प्राप्य साधनों द्वारा प्रत्येक को पुस्तकालय की ओर आकर्षित करें। इस कार्य की सफलता में वर्षों लग जाना स्वाभाविक ही है। इसी कारण एक पुस्तकाध्यक्ष में धैर्य, लगन और निष्ठा जैसे गुणों का होना नितान्त आवश्यक है। पुस्तकालय प्रचार का तकनीकी ज्ञान संदर्भ सेवा के पाठ्यक्रम में विकसित होगा।

७३२]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

७३२. बचपन से ही पढ़ने का अभ्यास

अन्य देशों के अनुभवों ने हमें यह सिखाया है कि केवल स्थानीय वयस्क लोगों का प्रचार द्वारा पुस्तकालय-पाठक बनाना पूर्ण सफलता का चिह्न नहीं। प्रचार की असफलता वयस्क लोगों के मानवीय दृष्टिकोण से स्पष्ट होने लगती है, क्योंकि जीवन के उत्तरकाल में नवीन अभ्यास को अपनाना अत्यन्त कठिन होता है। शारीरिक अभ्यास को ही नहीं वरन् मानसिक अभ्यास को अपनाना भी कठिन हो जाता है। यह अवस्था का एक परिपक्व अनुभव है जो शरीर और मस्तिष्क दोनों में दृढ़ हुआ करता है। आज हमारे देश में जीवन के उत्तरकाल में पढ़ने का थोड़ा सा भी अभ्यास पुस्तकों के प्रति एक द्वेष की भावना को जागृत कर देता है। यह परिणाम हमारे अनुभवहीन मस्तिष्क को हठपूर्वक याद कराने की कुरीति का है। इसी कारण आज सारा का सारा अध्ययन और पठन प्रत्येक विषय की अपनी-अपनी एक ही पाठ्य पुस्तक पर केन्द्रित है। इन लोगों को यह ज्ञान नहीं कि भिन्न-भिन्न विद्यार्थियों की भिन्न-भिन्न रुचियाँ हो सकती हैं। आपको मेरे इस अनुभव से ज्ञात होगा कि एक पुस्तक की रीति कितनी छिछली और हानिकारक है। कुछ वर्ष पहले, मद्रास पुस्तकालय-संघ के शिक्षा-विभाग को यह सफलता मिली कि स्कूल की कक्षाओं में साप्ताहिक पुस्तकालय का समय निश्चित हो गया। हेड-मास्टरों और अध्यापकों ने यह जानने की इच्छा प्रगट की कि समय का किस प्रकार उपयोग करना चाहिए। इस कारण निर्देशक महोदय ने विषय-वस्तु के नवीन पाठ्यक्रम पर बीस व्याख्यान देने को मुझसे कहा। ये व्याख्यान हुए और अन्त में वे स्कूल एण्ड कालेज लाइब्रेरीज नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए। इस पुस्तक के व्याख्यानों में महत्व की बात यही है कि अध्यापन के तकनीक में परिवर्तन होना चाहिए। जन-शिक्षा की अपेक्षा व्यक्तिगत-शिक्षा पर अधिक बल देना चाहिये और एक पाठ्य पुस्तक के सिद्धान्त को अनेक पुस्तकों के रूप में परिवर्तित कर देना चाहिए। जब ये व्याख्यान वास्तविक रूप में दिये जाने वाले थे तभी एक नये सज्जन निर्देशक बन कर आए। वे सज्जन मेरे मित्र थे और उन्होंने मेरे एक व्याख्यान में सम्मिलित होने की इच्छा भी प्रगट की। परन्तु वे विषय-वस्तु पर दिये गए अन्तिम व्याख्यान में आए जबकि “अनेक पुस्तकों” का विचार अच्छी तरह से जम चुका था और अब बातचीत पुस्तकालय दक्ष और यंत्रों, इत्यादि से सम्बन्धित थी। वे एक भले व्यक्ति थे। मेरे व्याख्यान के पश्चात् उन्होंने अध्यापकों से कुछ कहने की इच्छा प्रगट की। मैंने उनकी इच्छा का स्वागत किया क्योंकि यह विषय की प्रतिष्ठा को बढ़ाता ही था। कुछ ही मिनटों में, वे बड़े जोर-शोर से बोलने लगे:

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७३४]

“सज्जनों, अपने बीस वर्ष के लम्बे अध्यापन के अनुभव से मैं केवल एक उपदेश आप लोगों को देना चाहता हूँ कि विद्यार्थियों को एक विषय पर अनेक पुस्तकों के पढ़ने के तरीके से उनको व्यग्र मत कीजिये। एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक को चुनिए, उसमें आप केंद्रित होइए और सभी विद्यार्थियों को उसमें केंद्रित होने का अवसर दीजिए। यह अध्यापन रीति का मुख्य सिद्धान्त है।”

खूब तालियां बजीं और बहुत जोर से हंसी हुई। निर्देशक महोदय इसे बड़प्पन की निशानी समझ अपना जोशीला भाषण खूब जोर-शोर से देने लगे। वास्तव में स्कूल का जीवन इसी रूप में रहा है और इससे पुस्तकों की ओर से बयस्कों की सद्भावना का हटना स्वाभाविक ही है। तीसरे सिद्धान्त की एक दलील है:

“आप बयस्क-वर्ग में पहुँच कर पढ़ने के अभ्यास में सफल नहीं हो सकते। आप बचपन में ही यह अभ्यास जागृत कीजिए—अपने स्कूल के जीवन से ही इसकी नींव डालिए। तभी आप अधिकतम रूप में प्रत्येक पुस्तक के पाठक बनने का अवसर पा सकेंगे।”

बच्चों में पढ़ने के अभ्यास के बीज डालने के तकनीक आप अपने कोर्स के दूसरे वर्ष में “शैक्षणिक पुस्तकालयों” के विषय में पढ़ेंगे।

७३३. विषय विश्लेषक

तीसरा सिद्धान्त हमें यह स्मरण कराता है कि अधिकतर पुस्तकें अपने विषय के पृथक्-पृथक् भागों से निर्मित होती हैं। दूसरे शब्दों में वे “बहु केंद्रित” होती हैं। एक पुस्तक अनेक निश्चित विषयों से सम्बन्धित होती है। पुस्तक का मात्र नाम सब विचारों को प्रगट नहीं कर सकता। एक सूची में प्रधान-विषय-प्रविष्टि अन्य गौण विषयों को प्रकाश में नहीं ला सकती। पाठकों को उन विषयों के समीप लाने के लिए उचित यह होगा कि सूची में अतिरिक्त विषय-प्रविष्टियों को प्रत्येक ऐसे नाम के अन्तर्गत रखा जाय जो उसी विशिष्ट विषय से सम्बन्धित हो। इन प्रविष्टियों को विषय-विश्लेषक अथवा परिसंदर्भ-प्रविष्टि कहते हैं। विषय का चुनाव, लेखन-शैली और प्रतिपादन का अध्ययन आप “सूचीकरण” में करेंगे।

७३४. पुस्तक प्रदर्शन

तीसरे सिद्धान्त के अनुसार उपरोक्त प्रविष्टियों के द्वारा उन विशिष्ट विषयों को प्रकाश में लाना आवश्यक है जो पुस्तक में छिपे होते हैं। उसी आधार पर उन

७३५]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

पुस्तकों का प्रदर्शन भी आवश्यक है जो सद्वैव शैली में रहने के कारण भुला दी जाती हैं। इन पुस्तकों का बारी-बारी से प्रदर्शन होना चाहिए। यह सिद्धान्त पुस्तकालय शिल्पकार से यहां तक आशा रखता है कि वह दुकान के भरोखे के समान पुस्तकालय प्रदर्शन भरोखे की भी रूपरेखा बनाये। मैं इसे “प्रदर्शन भरोखा” ही कहूंगा। इसके अतिरिक्त पुस्तक कक्ष इस प्रकार का होना चाहिए कि पुस्तकों का सुसज्जित अपार भण्डार ही दिखाई न दे वरन् पुस्तक कक्ष में युक्तियुक्त फेंद-बदल भी हो सके और अग्रयुक्त पुस्तकों को सम्भाव्य पाठकों की दृष्टि में लाया जा सके।

७३५. तीसरे सिद्धान्त की स्वतन्त्रता

इससे पूर्व कि हम अगले सिद्धान्त को लें, हमें यह देख लेना चाहिए कि तीसरा सिद्धान्त वास्तव में मौलिक है या पहले दो सिद्धान्तों से ही लिया गया है। दूसरे शब्दों में, पहला और दूसरा सिद्धान्त इस तीसरे सिद्धान्त से घटाया जा सकता है या नहीं? मैं चाहता हूँ कि आप इसके बारे में विचार करें।

एक विद्यार्थी—मैं सोचता हूँ कि यह सम्भवतः घटाया जा सकता है।

तब इसे घटाना ही होगा। आइए हम क्रम से इस विषय का हल खोजें। क्योंकि विज्ञान के सिद्धान्तों को लम्बा करना गलत काम है। हम क्यों सिद्धान्त जोड़ते जायें जबकि वह दूसरों से घटाया जा सकता है? आइए सबसे पहले यह देखें कि क्या “प्रत्येक पुस्तक, उसका पाठक,” “प्रत्येक पाठक, उसकी पुस्तक” में से घटाया जा सकता है?

कक्षा—हां यह हो सकता है। क्योंकि पाठक-संख्या बहुत अधिक है, यदि प्रत्येक पाठक अपनी पुस्तक पा लेता है, तो प्रत्येक पुस्तक भी अचानक ही अपने पाठक को पा सकती है।

मैं सोचता हूँ कि एक दो उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायगा कि पहले और दूसरे सिद्धान्त का अर्थ समान नहीं है। मान लिया जाय कि आपके घर में एक भोज का आयोजन हुआ है जिसमें अतिथियों की संख्या बहुत अधिक है। आपने सब्जियां खरीदी हैं। एक विचारक यजमान के नाते, आपको प्रत्येक अतिथि के लिए उसकी पसंद की सब्जी खरीदनी चाहिए। मान लीजिए आपने यह कार्य कर लिया। तो आप क्या सोचते हैं कि इस कार्य में आप संसार में पैदा होने वाली नाना प्रकार की सभी सब्जियां खरीद लाने को बाध्य हैं?

कक्षा—शायद यह हो सकता है।

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७४]

नहीं। आप यह कभी नहीं कह सकते कि कोई ऐसा भी व्यक्ति होगा जो संसार में पैदा होने वाली सभी सन्धियों खाता हो। हां। यदि आप सन्धि-जगत पर यह दृढ़ प्रतिबन्ध लगा दें कि पाक-योग्य सभी सन्धियां खाने के उपयोग में आनी ही चाहियें तो संभवतः आपकी बात सच निकल आए। सन्धि जगत पर प्रतिबन्ध के विषय में शब्द “पाक-योग्य” ही इस प्रश्न का निर्णय कर देता है। यह निर्णय इस तथ्य पर आधारित है कि कुछ सन्धियां खाने के उपयोग में नहीं आ सकतीं। पुस्तक-जगत में भी ऐसी सम्भावनाएं हो सकती हैं। इसी कारण पुस्तकों के क्रय पर किसी नियम का प्रतिबन्ध लगाना होगा। तीसरे सिद्धान्त के असीम विस्तार से बचने के लिए पुस्तकाध्यक्ष को ही अपनी वरण्य पुस्तकें खरीदनी चाहियें।

आइए अब हम देखें कि क्या “प्रत्येक पुस्तक, उसका पाठक,” “पुस्तकें उपयोग के लिए हैं,” इस सिद्धान्त से घट सकता है?

कक्षा—यदि पुस्तकें उपयोग के लिए हैं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक पुस्तक का उपयोग होना चाहिए। यह पहले सिद्धान्त को व्यक्त करने का केवल विकल्प ही है, क्योंकि हमने दूसरे सिद्धान्त में कहा, “पुस्तकें सभी के लिए हैं,” और उसका विकल्प हुआ “प्रत्येक पाठक, उसकी पुस्तक।”

इसके विरोध में कई बातें हो सकती हैं। पुस्तकें उपयोग के लिए हैं—इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक पुस्तक उपयोग के लिए है। किन्तु पुस्तक की विषय-वस्तु उपयोग के बिना अथवा किसी भी प्रतिबन्ध के कारण शिथिल हो जाती है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सरकार पुस्तकों को अवैध घोषित करके प्रतिबन्ध लगा देती है। हमने देखा कि तीसरे सिद्धान्त की विषय-वस्तु, पुस्तकालय कर्मचारी को यह कर्तव्य याद दिलाती है कि प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठकों को ढूँढ़ निकालने में कोई भी कसर न उठा रखी जाय। हम इससे इस प्रकार कह सकते हैं कि “प्रत्येक पुस्तक का उपयोग होने दो,” या इस प्रकार कहिये कि “कुछ लोगों को पढ़ने के लिए ढूँढ़िये और उनमें पढ़ने का उत्साह बढ़ाइयें। आप केवल एक बार ढूँढ़ कर ही चैन की सांस मत लीजिए अपितु गहरे पानी पैंठकर पाठकों को बार-बार ढूँढ़ निकालिए।”

७४. चौथा सिद्धान्त

यदि तीसरे सिद्धान्त का कर्तव्य यह है कि वह स्कूल-अधिकारियों द्वारा बालकों में पुस्तकालय-स्वभाव बनाए तो चौथे सिद्धान्त का कर्तव्य और भी अधिक पवित्र है। यह उन लोगों के आचार-विचार का अनुशीलन करता है जो पुस्तकालय में एक बार तो अवश्य ही जाते हैं। यह सिद्धान्त है “पाठक का समय बचाओ।”

७४२]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

पाठक का समय बचाना ही चाहिये क्योंकि पुस्तकालय के प्रति पाठक के आकर्षण को बार-बार मनोविज्ञान के टंकारे से खींचना पड़ता है। इस कार्य के लिए पुस्तकालय अधिकारियों को निश्चित संख्या में संदर्भ पुस्तकाध्यक्षों का प्रबन्ध करना चाहिए। प्रत्येक संदर्भ पुस्तकाध्यक्ष हंसमुख तथा उत्फुल्ल हो और वह प्रत्येक आगन्तुक का पुस्तकालय में स्वागत करे। प्रत्येक आगन्तुक को मित्रता और उत्सुकतापूर्वक उसकी इच्छित पुस्तक खोजने में सहायता दे। वहां उसे पुस्तकों और पत्रिकाओं के समीप ले जाकर खड़ा कर दे और पाठक की आवश्यकता पूर्ण हो जाय। उसका कर्तव्य यह होना चाहिए कि वह पाठक के साथ पाठ्य सामग्री की खोज में जुटा रहे चाहे वह पाठ्य सामग्री सूचनार्थ हो अथवा प्रेरणार्थ या केवल मन बहलाने के लिए ही हो।

७४१. संदर्भ पुस्तकाध्यक्षों की योग्यता

इस सेवा को प्रभावशाली बनाने के लिए संदर्भ पुस्तकाध्यक्ष की दो योग्यताएं होनी चाहिए। सामाजिक सेवा में गहरी रुचि तथा मानवता से प्रेम। मानवीय सेवा के लिए पुस्तकों की शक्ति पर उसकी अगाध श्रद्धा हो। उसे ज्ञान क्षेत्र के प्रत्येक विभाग से अच्छा परिचय होना चाहिए। साथ ही पुस्तकालय के संग्रह और पुस्तकों के उद्देश्य और आधार का पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसे पुस्तकों की अल्मारियों की व्यवस्था और पुस्तकालय सूची का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। इस दृष्टि से हम यह भी देख पाते हैं कि संदर्भ सेवा के कार्य का संचालन पुस्तकों के अल्मारी में संजोने के कार्य और पुस्तकालय सूची कार्य पर भी आधारित है।

७४२. प्रत्यक्ष समय

पाठक के मनोवैज्ञानिक प्रवेग को अविराम रखने के लिए स्फूर्त एवं व्यक्तिगत संदर्भ सेवा द्वारा उसका समय बचाना ही आवश्यक नहीं, वरन् ऐसे किसी भी क्षण को हटाना आवश्यक है जो उसे यह आभास होने दे कि वह बहुत समय तक प्रतीक्षा करता रहा है। दूसरे शब्दों में चौथे सिद्धान्त का यह मत है कि पाठक का प्रत्यक्ष समय अप्रत्यक्ष समय से अधिक महत्वपूर्ण है।

आइए मैं एक उदाहरण द्वारा चित्रित करता हूं। मैं ग्लासगो नगर में एक विशाल केन्द्रीय पुस्तकालय के कार्य का अध्ययन कर रहा था। मैंने प्रत्येक पुस्तक में देखा कि पुस्तक के प्रार्थनापत्र पर घड़ी की तरह मुहर थी और उसकी मिनट

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७४३]

और घंटे की सूइयां रबड़ की बनी थीं। प्रत्येक प्रार्थना-पत्र में रबड़ की घड़ी को जोर से दबाया जा सकता था। आप यह अनुमान लगा सकते हैं कि उस घड़ी की कितनी थोड़ी आयु होगी। और पुस्तकालय इस विशेष रूप से बनाई गई घड़ी पर कितना पैसा खर्च कर देता होगा? मैंने पुस्तकाध्यक्ष से पूछा कि वे ऐसी वस्तु पर क्यों पैसा बर्बाद करते हैं। निम्नीलिखित दृश्य देखकर, जो कुछ समय बाद हुआ, मुझे ऐसा लगा कि यह घड़ी पर पैसा बर्बाद नहीं हुआ वरन् यह पाठक के मनो-वैज्ञानिक स्वभाव की मर्यादा के लिए वह महत्वपूर्ण आवश्यकता है जो पाठक को अपने वास्तविक समय का वास्तविक ज्ञान करा दे और विश्वास दिला दे कि समय कितना छलपूर्ण है। एक पाठक ने लेनदेन कर्मचारी की शिकायत की कि उसे अपनी पुस्तक की प्रतीक्षा में बहुत समय बीत गया। वह क्रोध से आग बबूला हो रहा था। वह प्रण कर रहा था कि भविष्य में कभी ऐसे पुस्तकालय में कदम नहीं रखेगा जहां पाठक के समय का कोई मूल्य ही नहीं है। मैंने और पुस्तकाध्यक्ष ने समझा हुआ कर इन सज्जन से पूछा कि उन्हें कितना समय प्रतीक्षा करते हुए हो गया है? उन्होंने बताया कि लगभग पौने घंटा बीत चुका है। पुस्तक उन्हें मिल गई। पाठक से पूछा गया कि वह पुस्तक प्राप्त करने के समय को बताए। उत्तर प्राप्त होने पर उसे बताया गया कि उसने केवल पांच मिनट प्रतीक्षा की है।

“आपको कैसे मालूम हुआ?” उन्होंने कहा—“मैंने तो पन्द्रह मिनट से भी अधिक प्रतीक्षा की है।”

अन्त में इन महाशय को प्रार्थना-पत्र पर लगी हुई रबड़ की घड़ी की मुहर दिखाई गई। इस पर वे बड़े प्रभावित हुए और इस बात पर खेद प्रगट करने लगे कि वे व्यर्थ में ही लोगों को परेशान करते रहे। इतना ही नहीं उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि वे सदैव उस पुस्तकालय के सदस्य बने रहेंगे।

७४३. स्वच्छंद प्रवेश

आधुनिक पुस्तकालय कार्यविधियों में, प्रत्यक्ष समय की प्रतीति तो बिल्कुल ही हट गयी है और अप्रत्यक्ष समय की वचन भी दो नवीन प्रयोगों से लगभग हो ही जाती है। पहले प्रयोग का नाम है “स्वच्छंद प्रवेश।” इसमें प्रत्येक पाठक पुस्तक कक्ष में जा सकता है और पुस्तक-आल्मारियों के पास जाकर अपनी पसन्द की पुस्तक चुन सकता है। वह बिना किसी हिचकिचाहट के व्यक्तिगत घरेलू पुस्तकालय की तरह उपयोग कर सकता है। “स्वच्छंद प्रवेश” के परिणामों के बारे में आप पुस्तकालय भवन के पाठ में विस्तार से पढ़ेंगे।

७४५]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

७४४. लेनदेन रीति

दूसरा प्रयोग पुस्तक कार्ड, पाठक का टिकट तथा पुस्तकों को देने की रीति है। इस रीति में, पाठक अपनी इच्छित पुस्तक को लेने के लिए प्रार्थना पत्र लिखने में बंकार समय नहीं गंवाता या लेनदेन कर्मचारी के पास पुस्तक का नाम और अपना नाम लिखने के लिए प्रतीक्षा में समय व्यर्थ नहीं खाता। पहले प्रयोग में यानी स्वच्छंद-प्रवेश में पाठक अपनी पसंद की पुस्तक चुनने तक अत्यन्त व्यस्त रहता है। समय की प्रतीति व्यर्थ ही नहीं हुआ करती अर्थात् प्रत्यक्ष समय व्यर्थ नहीं जाता। दूसरा प्रयोग जो लेनदेन रीति से सम्बन्धित है, उसमें अप्रत्यक्ष समय की हानि लगभग शून्य तक ही रह जाती है। “स्वच्छंद प्रवेश” आप पुस्तकालय संचालन में पढ़ेंगे।

७४५. पुस्तकालय वर्गीकरण

एक ऐसे पुस्तकालय में जहां स्वच्छंद प्रवेश हो, अप्रत्यक्ष-समय बचाने के लिए यह आवश्यक है कि—पुस्तकें व्यवस्थित रूप में रखी हों। एक निश्चित विषय की पुस्तकें एक ओर रखनी चाहिए और उससे भिन्न निश्चित विषय की पुस्तकें दूसरी ओर—एक-दूसरे का संयोजन सहायक क्रम में होना चाहिए। निश्चित विषयों की व्यवस्था, निश्चित विषयों की पुस्तकों की व्यवस्था और निश्चित विषय का संगठन अपने आप में पुस्तकालय-विज्ञान की बड़ी ही महत्वपूर्ण शाखा है। इसे पुस्तकालय वर्गीकरण कहते हैं। पुस्तकालय वर्गीकरण में प्रत्येक पुस्तक को क्रमिक संख्या दी जाती है जिसे वर्गिक कहते हैं। वर्गिक दो भागों में विभक्त होता है—वर्ग संख्या और पुस्तक संख्या। उदाहरण के लिए, इन व्याख्यानों की संकीर्ण पुस्तक का वर्गिक “२” है। यह मुखपृष्ठ की पीठ पर लिखा जाएगा। “२” वर्गिक है और इसका अर्थ हुआ “पुस्तकालय-विज्ञान का क्षेत्र।” “ने ६३” पुस्तक संख्या है और इसका अर्थ हुआ पुस्तक का प्रकाशन १९६३ में हुआ। वर्गिक, निश्चित विषय में पुस्तक के नाम का रूपान्तर, क्रमिक संख्या में होता है और पुस्तक संख्या उसके अन्य लक्षणों का रूपान्तर है। तात्पर्य यह कि क्रमिक संख्या के लिए एक कृत्रिम भाषा उपयोग में लानी पड़ती है। क्रमिक संख्या की इस कृत्रिम भाषा को वर्गीकरण प्रबन्ध में संजोया जाता है। निम्नलिखित सूची बहु-प्रचलित एवं प्रकाशित वर्गीकरण प्रबन्धों के नामों की है :

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७४५१]

वर्गीकरण प्रबन्ध

नाम	प्रथम प्रकाशन का वर्ष	आविष्कर्ता	देश
१. डैसीमल (दाशमिक) वर्गीकरण	१८७६	मौल्वल ड्युवी	अमेरिका
२. एक्सपैन्सिव वर्गीकरण	१८६१	कटर	"
३. कांग्रेस वर्गीकरण	१८०४	लाइब्रेरी आफ कांग्रेस	"
४. सज्जैक्ट वर्गीकरण	१८०६	ब्राउन	इंग्लैंड ।
५. कोलन (द्विविन्दु) वर्गीकरण	१८३३	रंगनाथन्	भारत ।
६. बिब्लियोग्राफिक वर्गीकरण	१८३५	ब्लिस	अमेरिका ।

७४५१. द्विविन्दु वर्गीकरण

इनमें द्विविन्दु वर्गीकरण प्रबन्ध का आविष्कार भारत में हुआ है। अन्य वर्गीकरण प्रबन्ध जहाँ असफल हो गये वहाँ यह बहुत सफल रहा है, जैसे: भारतीय साहित्य और संस्कृति के वर्गीकरण में। ऐसे और भी विषय हैं, जैसे: आयुर्वेद, भारतीय साहित्य, भारतीय भाषाएं, वैदिक धर्म, जैन धर्म, बुद्ध धर्म, और भारतीय दर्शन शास्त्र, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र और कानून। इसके अतिरिक्त औरों की अपेक्षा इस प्रबन्ध को सार्वलौकिक रूप में अपनाये जाने के गुण कहीं अधिक हैं।

इसमें भारतीय एवं भारतीयतर संस्कृति, साहित्य और विज्ञान की पुस्तकों को भी वर्गीकृत करने की अपूर्व क्षमता है। यह भविष्य में आनेवाले ज्ञान को भी सहज में ऐसे ही सम्हाल सकता है जिसे भूत और वर्तमान ज्ञान हो। इस प्रबन्ध का यह एक ऐसा रूप है जो अन्य रूपरेखाओं को हटा देता है। एक ब्रिटिश पुस्तकाध्यक्ष ने कहा भी है, "प्रत्येक नवीन विषय अपनी जेब में अपना ही द्विविन्दु अंक लाता है।"

निश्चित विषय के नामों को द्विविन्दु और दाशमिक अंकों में रूपान्तरित करने की कला आप प्रथम वर्ष में पढ़ेंगे और सार्वलौकिक दाशमिक संख्याओं का रूपान्तर आप दूसरे वर्ष में विस्तार से पढ़ेंगे।

७४५३]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

७४५१. वर्गीकरण और पहला सिद्धान्त

एक भली भाँति वर्गीकृत पुस्तकों की व्यवस्था पाठक के समय को ही नहीं बचाती वरन् पुस्तकों के उपयोग की भी अभिवृद्धि करती है। जब निश्चित सहायक भी लगाये गये हों तब यह व्यवस्था पहले सिद्धान्त को भी संतोष देती है। वलय निर्देशक पुस्तकों की सम्बन्धित पंक्ति को दिखाते हैं, खण्ड-निर्देशक बताते हैं कि कौन विषय किस भाग से सम्बन्धित है। ये सहायक आपको निश्चित विषयों के नाम सामान्य प्रचलित भाषा में बताएंगे और साथ ही क्रमांकों में उसका अनुवाद कृत्रिम भाषा में भी करते जाएंगे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पुस्तक की पीठिका पर एक चिप्पी भी लगी होगी। इस प्रकार के उपयोगी सहायकों द्वारा प्रत्येक उस पाठक का ज्ञान बढ़ेगा जो पुस्तक की आल्मारियों के पास से निकलेगा और यह कार्य पुस्तकों के उपयोग में भी सहायक सिद्ध होगा।

७४५२. वर्गीकरण और दूसरा सिद्धान्त

जैसे ही वर्गीकरण प्रबन्ध एक निश्चित विषय में पुस्तकें रखता है और निश्चित विषयों को सहायक क्रम से संजोता है (और विषय भी आपस में सम्बन्धित रहते हैं) वैसे ही दूसरा सिद्धान्त यह संतोष कर लेता है कि अब प्रत्येक पाठक को अपनी पुस्तक मिल सकेगी। उदाहरण के लिए एक पाठक को “कर निर्धारण” पर सूचना चाहिए। वह सभी “कर निर्धारण” की पुस्तकों को देख डालेगा। उन पुस्तकों के बाईं ओर “सार्वजनिक अर्थ व्यवस्था” पर पुस्तकें होंगी जिनमें “कर निर्धारण” के विषय पर कहीं अध्याय होंगे। इनके बाईं ओर “मुद्रा” के विषय पर पुस्तकें होंगी। उनके बाईं ओर “अर्थशास्त्र” पर सामान्य पुस्तकें होंगी जिनमें “कर निर्धारण” पर भी कुछ अध्याय होंगे। इन आल्मारियों के मार्ग में पाठक विषय के इतिहास की पुस्तकों में से भी निकलेगा जो सम्भवतः पृष्ठभूमि के अध्ययन के लिए आवश्यक होंगी। “कर निर्धारण” की पुस्तकों के बाईं ओर “बीमा” और “प्रत्येक वस्तु की शुल्क सूची” से सम्बन्धित पुस्तकें होंगी।

७४५३. वर्गीकरण और तीसरा सिद्धान्त

पुस्तकों का इस प्रकार का प्रदर्शन प्रत्येक पाठक को बिना समय व्यर्थ किए पुस्तक खोजने में सहायक ही सिद्ध नहीं होगा वरन् इससे प्रत्येक पुस्तक को अपना पाठक खोजने में भी सहायता मिलेगी।

७४६. पुस्तकालय सूची

पुस्तकालय वर्गीकरण के समान पुस्तकालय सूची भी पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्तों को कार्यक्षेत्र में लाती है। इसकी इस प्रकार रचना होनी चाहिए कि पुस्तकों के उपयोग में अभिवृद्धि हो, प्रत्येक पाठक को पुस्तक ढूँढ़ने में सहायता मिले, पुस्तक को अपना पाठक ढूँढ़ने में भी सहायता मिले और पाठक के समय की बचत हो। एक पाठक को एक पुस्तक के लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, ग्रंथ-माला या लेखक से सम्बन्धित किसी अन्य व्यक्ति जैसे संपादक, अनुवादक अथवा टीकाकार का नाम याद रखना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि सूची प्रत्येक पुस्तक का अनेक नामों से प्रदर्शित करे जैसे लेखक, ग्रंथमाला, संपादक, अनुवादक, टीकाकार और निश्चित विषय (जब तक कि वे प्रचलित रहते हैं)। ये सब नाम प्राकृतिक भाषा में ही होते हैं इसलिए सूची में भी प्राकृतिक भाषा में होंगे। इसलिए जो प्रविष्टि जून नामों से आरम्भ होती हैं, जैसा कि उन्हें मुख्यशीर्षक कहा जाता है, उनको वर्णानुसार रखा जाएगा। प्रायः इस प्रकार की प्रविष्टियों से पुस्तकालय सूची में गड़बड़ होने का भय रहता है। किन्तु यह तथ्य नहीं है। ये सब प्रविष्टियाँ क्रमबद्ध पुस्तकालय सूची का आधा ही रूप हैं। निःसन्देह इस आधे की भी आवश्यकता है। किन्तु यह पर्याप्त नहीं। इसे सूची का वर्ण भाग ही कह सकते हैं, क्योंकि इसे वर्णानुसार संयोजित किया जाता है। शेष आधा भाग उन प्रविष्टियों से सम्बन्धित होता है जो वर्गिक से आरम्भ होती हैं—यानी उन निश्चित विषयों के नामों से जो संकेत सूचक संख्या से स्पष्ट होते हैं। संकेत सूचक संख्या में प्राकृतिक भाषा को छोड़ कर कृत्रिम भाषा का ही उपयोग होता है। प्रत्येक पुस्तक के प्रधान एवं निश्चित विषय को प्रगट करने के लिए ऐसी ही प्रविष्टि होती है और फिर जितने अतिरिक्त एवं निश्चित विषय होंगे उतनी ही अतिरिक्त प्रविष्टियाँ होती जायेंगी। प्रथम प्रविष्टि को पुस्तक की मुख्य प्रविष्टि कहा जाता है और दूसरे प्रकार की प्रविष्टि को परिसंदर्भ प्रविष्टि। इसे विषय विश्लेषक भी कहते हैं।

ये सब प्रविष्टियाँ संकेत सूचक संख्याओं के क्रम से लगाई जायेंगी। इसलिए इस आधे को सूचीपत्र का वर्ग भाग कहा जाता है। यह भाग वर्ण भाग से अधिक गहरा और सूक्ष्म भाव प्रस्तुत करता है।

७४६१. वर्ग भाग का कार्य

यदि किसी पाठक की रुचि एक निश्चित लेखक की किसी निश्चित पुस्तक या निश्चित ग्रंथ-माला में है, तो वर्ण भाग उसके लिए पर्याप्त होगा। परन्तु जो कुछ

७४८]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

भी होगा और उसका जितना ही अच्छा परिणाम होगा, वर्ग भाग उसे केवल इस तरह बताता है: "अपनी पुस्तकों के विषय और उनके अतिरिक्त-विषय के सम्बन्ध में, आप वर्ग भाग की अमुक-अमुक संस्थाओं को देखिए।" वहां पाठक को अपने विषय का सारा क्षेत्र प्रदर्शित मिलेगा। जब वह देखेगा तो पाएगा कि उसका धुंधला ज्ञान क्या विचित्र इच्छा कर रहा था? किन्तु वास्तव में वह अपनी इच्छित वस्तु को वहां बिल्कुल पा लेगा। अतः सूची के दो मुख्य भाग होते हैं जो एक पुस्तक प्राप्त करने में पाठक की सहायता कर सकते हैं। इस प्रकार पाठक का समय व्यर्थ नहीं जाता।

सूची के निर्माण का विस्तार आप अपने पाठ्यक्रम में देखेंगे।

७४७. मानकीकरण एवं सरलीकरण

चौथे सिद्धान्त में एक अन्य तर्क भी है। अब तक हमने देखा कि एक पाठक का समय बचाने के लिए पुस्तकालय कर्मचारियों को प्रत्येक पाठक से मिलने के लिए समय निकालना चाहिए। इसके लिए पुस्तकालय अधिकारियों के अनुमान से अधिक कर्मचारियों की आवश्यकता तो होगी ही, इसके साथ-साथ उन कर्मचारियों को दैनिक कार्यों से वह समय भी निकालना चाहिए जो पुस्तकालय संचालन में लग जाता है। किन्तु ध्यान रहे कि प्रतिदिन का कार्य धीरे-धीरे एकत्रित न होने पाए। दैनिक कार्यों से समय निकालने के लिए कार्यविधि के मानकीकरण एवं सरलीकरण का यथेष्ट लाभ उठाना चाहिये। लेखा, इत्यादि के लिए काडों के प्रयोग और काडों को खड़ा रखने के प्रयोग द्वारा पुस्तकालय व्यापार ने निस्सन्देह अन्य व्यापारों में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ये सब प्रयोग चौथे सिद्धान्त के दबाव से उभर आए। इसके बारे में आप पुस्तकालय संचालन में पढ़ेंगे।

७४८ केन्द्रीकरण

अकर्तृक विधियों का केन्द्रीकरण (जिस प्रकार वर्गीकरण और सूचीकरण कार्य हैं) तथा पुस्तकालय के कर्मचारियों का संदर्भ सेवा में मानवीय और व्यक्तिगत सहयोग—इनके लिए चौथे सिद्धान्त का एक अन्य सुभाव भी है। यह कहता है:

इसमें क्या लाभ है कि केवल एक ही पुस्तक की प्रतियां देश के हजारों विभिन्न व्यक्तियों द्वारा वर्गीकृत और सूचीकृत हों? यदि वर्गीकरण और सूचीकरण कार्य केन्द्रित और नियमित रूप से होने लगे तो क्या इससे एकरूपता एवं अनुरूपता का

सदूपरिणाम नहीं होगा ? प्रत्येक पुस्तक किसी राज्य अथवा राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय में वर्गीकृत हो, पुस्तक के सूची-कार्यों पर वर्गिक उसी केंद्रीय संस्था में प्रकाशित हों और फिर हजारों पुस्तकालयों में वितरित किये जायें। केंद्रीकरण के द्वारा कोई भी पुस्तकालय एक वर्ष में आने वाली प्रति एक हजार पुस्तकों पर से एक कर्मचारी संदर्भ सेवा के लिए प्रस्तुत कर सकता है और अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा सकता है। उन देशों में जहां पुस्तकालय बहुत पहले स्थापित हो चुके थे और जहां प्रत्येक पुस्तकालय अपने निजी ढंग से वर्गीकरण और सूचीकरण करता था, वहां तर्क या भावना के आधार पर भी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का व्यापक दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सका। ऐसे ही पुस्तकालयों की स्थानीय ख्याति के समाप्त हो जाने की आशंका इस प्रकार के केंद्रीकरण में बाधा डालती रही। किन्तु भारत इस केंद्रीकरण एवं सूचीकरण से क्यों न लाभ उठाये ? बहुत दूर होने पर भी वह क्यों न पुस्तकालय आन्दोलन चलाये ? फिर आजकल तो समस्त राष्ट्र में युक्तियुक्त योजना की चर्चा है। इसलिए भारत के पुस्तकाध्यक्ष उन देशों के अविश्वासों के कारण दुविधा में न पड़ें जिनका पुस्तकालय स्तर आज ऊंचा हो चुका है। अवश्य ही ये पुस्तकालय कई रूपों में उन्नत हैं पर इनको कई व्यर्थ की रीतियां भी बरतनी पड़ती हैं, क्योंकि इनका दिमाग नाम के पीछे भागता है। श्री एडवर्ड जे. कार्टर ने, जो युनेस्को पुस्तकालय विभाग के अध्यक्ष थे, इस दृष्टिकोण पर कहा है :

“मैं आपके दृष्टिकोण से सहमत हूँ कि भारत पुस्तकालय सेवा को सुचारू और व्यवस्थित रूप में विकसित करने के लिए बहुत दूर कर चुका है। आपको अभी कई कदम लम्बी छलांग मारनी हैं और इसके बाद ही आप संभवतः उन देशों से आगे निकल सकें जिनका विकास धीरे-धीरे होता रहा है।”

उधर नावें ने केंद्रीकरण का समारम्भ कर ही दिया है। यहां देखिए इस दृष्टिकोण पर नावें के सरकारी पुस्तकाध्यक्ष कहते हैं :

“आपकी योजना के अनुसार पुस्तकालय वर्गीकरण और सूचीकरण के एकीकरण पर ध्यान देकर आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि नावें के सार्वजनिक पुस्तकालयों में यह कार्य कई वर्षों से हो रहा है। सरकार के पुस्तकालय विभाग की ओर से एक विशेष सहायक कार्यालय इस कार्य की देखरेख करता है। यह पुस्तकालयों में पुस्तकों की ठोस जिल्दबंद कर उनकी पीठिका पर वर्गीकरण चिह्न, और मुखपृष्ठ के अन्दर पुस्तक पैकेट, पुस्तक पत्र, तिथि लेबुल और प्रकाशित सूचीपत्र—जो पुस्तकों के साथ भेजे जाते हैं—इतना सब प्रबन्ध करता है।”

७५११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

७५. पांचवां सिद्धान्त

पांचवां सिद्धान्त एकदम भिन्न प्रकृति का है। यह बहुधा अधिकता में संशोधन के रूप में लागू होता है। इसके विपरीत अन्य चार सिद्धान्त अधिकता की ओर लें जाते हैं। यह पुस्तकालयों की त्रिमूर्ति पर (पाठक, पुस्तक तथा कर्मचारी) उस रूप में दृष्टिपात नहीं करता जिस रूप में अन्य सिद्धान्त करते हैं। निस्सन्देह यह सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों से सम्बन्धित है और एक के बाद एक विकास की प्रतिक्रिया से भी सम्बन्धित है। इससे पूर्व कि हम इस सिद्धान्त की परीक्षा करें, हमें यह जान लेना चाहिए कि क्रमिक विकास दो प्रकार का होता है। अनेक वस्तुओं का एक साथ विकास तथा परिवर्तन या एक नवीन विकास। यह ठीक वैसा ही अन्तर है जैसा शिशु के शरीर के विकास में और वयस्क के शरीर के विकास में होता है। जिस प्रकार शिशु के शरीर का विकास धीरे-धीरे ऊँचाई और वजन में होता है, उसी प्रकार नवीन पुस्तकालयों में भी धीरे-धीरे पाठकों, पुस्तकों और कर्मचारियों का विकास होता है। दूसरी ओर जैसे एक प्रौढ़ व्यक्ति की ऊँचाई और वजन की एक सीमा रहती है, वैसी ही एक निश्चित सीमा कई पुस्तकालयों के पाठकों, पुस्तकों और कर्मचारियों की संख्या की भी रहती है। इस सीमा का मुख्य अपवाद केवल राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय ही हो सकता है।

७५१. आज के भारतीय पुस्तकालय

आज के भारत में हमारे यहां वास्तविक रूप में कोई पुस्तकालय नहीं। और यदि है भी तो वह तीसरी श्रेणी का, जिसका आकार मात्र बढ़ता रहता है। हमारे यहां दूसरी श्रेणी के पुस्तकालय भी अधिक नहीं जिनको हम प्रौढ़ अवस्था में रख सकें। शेष जितने भी पुस्तकालय हैं वे शैशवावस्था में हैं और कहीं तो अभी उत्पन्न ही होने को हैं। इस कारण आपको अपना जीवन पहली श्रेणी के पुस्तकालयों में लगाना होगा—अर्थात् जहां पाठकों, पुस्तकों और कर्मचारियों की संख्या में विकास हो रहा हो। मैंने स्वयं इसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत किया है। इसलिए सर्वप्रथम मैं आपके साथ इसी श्रेणी के पुस्तकालयों पर विचार करूंगा।

७५११. परिवर्तन और विकास

मैं यह इस तरह कहना आरम्भ करता हूं कि पुस्तकालयों के विकास की नींव पाठकों की संख्या की वृद्धि से ही पड़ेगी। यही संकेत पहला और तीसरा सिद्धान्त

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७५३]

करते हैं। भारत में वर्तमान युग के पुस्तकाध्यक्षों पर सबसे पहले यह भार होना चाहिए कि वे जनता को पुस्तकालय उपयोग करने के लिए उकसायें। जैसा कि ८५ प्रतिशत लोग अनपढ़ हैं, सो उन अनपढ़ लोगों के सामने पुस्तकें पढ़ी जाय और पुस्तकों की व्याख्या की जाय। इसके लिए प्रत्येक ऐसे स्थानीय संगठन का सहयोग मिलना चाहिए जो निरक्षरता निवारण में प्रवृत्त हो। किन्तु आज की अवस्था देखते हुए तो और एक युग तक हमारे पुस्तकालयों में यही परिवर्तन चलता रहेगा।

७५२. पाठकों की संख्या में वृद्धि

यदि हम यह मान लें कि साक्षरता सार्वलौकिक है तो भी पुस्तकालयों को वयस्कावस्था तक पहुंचने में कई वर्ष लगेंगे। पश्चिम के अनुभव ने भी हमें यही सिखाया है। यहां तक कि उन नगरों में जहां अनिवार्य शिक्षा है, और पुस्तकालय ७५ वर्षों से संचालित हैं। सार्वजनिक पुस्तकालयों का उपयोग करने के लिए जनता अभी तक ३० प्रतिशत भी नहीं पहुंची है। यदि यह मान लिया जाए कि जनसंख्या का अन्य ३० प्रतिशत भाग वृद्धावस्था एवं अन्य कठिनाइयों के कारण पुस्तकालय का उपयोग नहीं कर सकता, तो भी यह देखा जा सकता है कि शेष ४० प्रतिशत लोग जो पुस्तकालय का उपयोग कर सकते हैं, वे भी इस संख्या के बाहर हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उन नगरों के पुस्तकालय अपने पाठकों की संख्या की अभिवृद्धि में अभी तक वयस्क-अवस्था में नहीं आ पाए हैं। यह अवस्था ग्रामीण पुस्तकालयों में और भी अधिक शोचनीय है। इसलिए आज के अधिकतर पुस्तकालय शोशावस्था में ही हैं। फिर इस अवस्था में भी कई उलभने हैं।

७५३. पुस्तकालय भवन

पाठकों की संख्या निरंतर बढ़नी चाहिये, चाहे वह धीरे-धीरे ही क्यों न बढ़े। पुस्तकों का संग्रह भी उनके अनुसार बढ़ना चाहिये तथा पुस्तकों की संख्या और विषय-वस्तु की भिन्नता भी बढ़ती रहनी चाहिए। पाठकों और पुस्तकों की अभिवृद्धि के साथ-साथ, कर्मचारियों की भी वृद्धि हो जायगी। इस त्रिमूर्ति के तीनों सदस्यों की आशान्वित अभिवृद्धि पुस्तकालय निर्माण के कारण हुआ करती है और यह चित्र पुस्तकालय भवन की रूपरेखा के सम्मुख रहना नितान्त आवश्यक है। जब आप अपने बच्चों के लिए मकान बनवाते हैं तब आप उन

७५४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

वक्ताओं के कथनानुसार उसकी ऊँचाई और क्षेप-फल को निश्चित नहीं करते। आप इस तरह मकान बनवाते हैं कि जब वे बड़े हो जाएं तब अपने परिवार तथा मित्रों के साथ रह सकें। पुस्तकालय भवन के निर्माण में भी, पुस्तकालय की वयस्क अवस्था की आवश्यकता को ध्यान में रखना चाहिए। कम से कम उसकी रूपरेखा ही तदनुसार होनी चाहिए। इसके भवन को अंशों में पूर्ण करने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। पुस्तकालय के पाँचवें सिद्धान्त के इस प्रश्न की उपेक्षा करने के कारण भूतकाल में अनेक गलतियाँ हुईं। इसका कारण यह था कि उस समय ऐसे भवनों का निर्माण होता था जिनमें न तो समानान्तर विस्तार के लिए कोई स्थान था और न ही उनकी नींव इतनी मजबूत थी कि उनकी ऊँचाई बढ़ाई जा सके। यहां तक कि ऐसी स्थिति में जहां ये दो गलतियाँ नहीं प्रगट होतीं वहां कमरों का आकार या पूरे भवन का आकार बहुत सुझौल होता—या कीहए बक्राकार होता—और भवन की अभिवृद्धि के लिए बहुत कुछ व्यय करना पड़ता। इस कारण प्रगट रूप में कई दुर्विधाएं आ जातीं। मद्रास विश्वविद्यालय के पुस्तकालय भवन की आवश्यकताओं में जो विचारों का परिवर्तन हुआ उसका एक चित्र यहां प्रस्तुत है। १९१२ में, एक कमरे की (५०'x३०') अधिकतम आवश्यकता अनुभव की गई। १९१५ तक, इस स्थान को तिगुना बढ़ा दिया गया। १९२४ की योजना में इस स्थान को छः गुना अधिक बढ़ा दिया गया। १९२५ से, मैंने पुस्तकालय भवन की भूमि के २० गुने अधिक स्थान पर जोर दिया। उस समय पुस्तकालय में केवल ४०,००० पुस्तकें थीं, और ३० वर्ष बाद, २,००,००० पुस्तकें तक पहुंच सकती थी और पाठकों की संख्या भी २० गुना अधिक बढ़ सकती थी। किन्तु विश्वयुद्ध के फलस्वरूप राजनीति की शक्ति भी यथावत् गिरती चली गई। और जैसी मैंने इच्छा की थी वैसी योजना तो अवश्य बनी किन्तु भवन का विस्तार नहीं हो पाया।

७५४. कर्मचारी संख्या निर्धारण

पाँचवें सिद्धान्त का प्रभाव पुस्तकालयों की व्यवस्था के पूर्व नहीं अनुभव किया जाता। यही सिद्धान्त आवश्यकताओं का अनुभव कराता है। यदि कर्मचारियों में पुस्तकालय के विस्तार की पर्याप्त लगन है तो यह सिद्धान्त बड़े ही अनूठे ढंग से बड़ी ही विषम परिस्थितियों उत्पन्न कर देता है। अधिकारी वर्ग शायद ही कभी अनुभव करता है कि नये कर्मचारियों की संख्या कितनी शीघ्रता से कम पड़ जाती है। कर्मचारियों की वृद्धि की निरंतर मांग पर वे शिकायत करते हैं और मांग को

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७५४१]

ठुकरा देते हैं। अच्छी लगन होने पर भी योग्य एवं अपर्याप्त कर्मचारी उससे आधी सेवा भी प्रदान नहीं कर सकते जितनी वे कहा करते हैं। प्रचार के द्वारा इतनी अधिक संख्या में पाठक पुस्तकालय में आते हैं कि उनकी संदर्भ सेवा करना तथा उनके लिए अधिक पुस्तकों संगठित करना कठिन हो जाता है। परिणाम यह होता है कि सब ओर से शिकायत और निराशा भरे एव्र आने लगते हैं और मुट्ठी भर अशिष्ट लोगों द्वारा उपहास और बदनामी होने लगती है। इन लोगों की चीख प्रायः दूसरी आवाजों को डुबा देती है। इस तरह का घटनाचक्र मैंने पूर्व और पश्चिम में एक पुस्तकालय से दूसरे पुस्तकालय में होते देखा है। अभी तक मैं इसको भूचाल की भांति दैवी-प्रकोप ही मानता था। किन्तु फिर मुझे कुछ प्रकाश दिखाई दिया और मैंने एक छोटे से पुस्तकालय के निराशामय वातावरण को बिल्कुल हटा देने का प्रयत्न किया। कार्यशील, लीन और उत्साही कर्मचारियों में प्राण डालने का प्रयत्न किया। पुस्तकालय अधिकारियों के सामने मैं कुछ सुविधाएं स्पष्ट रूप में रख देना चाहता हूं। वे पुस्तकालय कार्य के लिए कर्मचारियों की संख्या एक सूत्र द्वारा निर्धारित करें जां गणित पर आधारित है। यदि एक बार यह सूत्र स्वीकृत हो गया तो कर्मचारियों की संख्या में परिवर्तन यंत्रबद्ध और अकर्तृक हो जायगा और शेष व्यक्तियों को छल करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। तब यह नहीं होगा कि वे भद्दे ढंग से उपहास करें और कहें “कर्मचारी, कर्मचारी और सदैव अधिक कर्मचारी।” ये लोग कितनी उपेक्षित दृष्टि से पुस्तकालय के कार्य और कर्मचारी को देखते हैं। यह सूत्र एक सफल उद्योगपति द्वारा परख भी लिया गया है।

(नोट : अब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी इस सूत्र को मान्यता प्रदान कर दी है।)

७५४१. कर्मचारी सूत्र

निम्नीलिखित सूत्र कर्मचारियों की संख्या निर्धारित करने में किसी भी पुस्तकालय में किसी भी समय कार्य के वास्तविक परिवर्तन के आधार पर उपयोग में लाया जा सकता है।

मान लिया :

- | | | |
|-----|----|--|
| क्र | == | पुस्तकों की संख्या जिनका एक वर्ष में “क्रमकरण” हो। |
| व | == | वार्षिक “बजट,” रुपयों में। |
| सा | == | उन पत्रिकाओं की संख्या जिनका एक वर्ष में “सामान्यीकरण,” प्रस्तुतीकरण या सूचीकरण, इत्यादि हो। |

७५४१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

द	==	एक वर्ष का "द्वार" खुलने का समय; घंटों में।
घ	==	एक दिन में पुस्तकालय खुलने के "घंटे"।
प	==	"पत्रिका" संख्या जो आती हो।
पा	==	"पाठक" संख्या जो एक दिन में आते हों।
ज	==	पाठकों के बैठने की "जगह"।
ख	==	पुस्तकालय में पुस्तक "खण्ड" संख्या।
का	==	एक वर्ष में "कार्य-दिनों" की संख्या।
(ण)	==	ण, यदि एक "पूर्णिक" है। यह पूर्णिक ण से थोड़ा अधिक है यदि इसका भिन्नांक २५ से अधिक है।
क च	==	कर्मचारी संख्या पुस्तक चुनाव विभाग में।
क प्र	==	" " प्रसार विभाग में।
क पु	==	" " पुस्तकाध्यक्ष तथा उसके सहयोगी।
क अ	==	" " अनुरक्षा विभाग में।
क प	==	" " पत्रिका विभाग में।
क सं	==	" " संदर्भ विभाग में।
क त	==	" " तकनीकी विभाग में, जैसे सूचीकरण तथा वर्गीकरण।

विभिन्न विभागों के लिए "कर्मचारी सूत्र"

क च	==	क्र। ६०००
क प्र	==	इ। १५००
क पु	==	घ का। १५००
क अ	==	क्र। ३०००
क प	==	प। ५००
क सं	==	(पा। ५०) का। २५०
क त	==	(क्र ४६ सा) २०००

व्यावसायिक कर्मचारी संख्या सूत्र

क च+क प्र+क पु+क अ+क प+क सं+क त

{ ३ (क्र म+२० सा)+२ (द+३ प)+२ का (घ+६ पा। ५०) }। ३००.

पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त

[७५४१]

अव्यावसायिक कुशल कर्मचारी संख्या सूत्र

च। ३००,०००+(ज। १००)

अर्धकुशल कर्मचारी संख्या सूत्र

कच। ४+कप्र। २+कपु+कअ। ४+कप। २+कसं। ५-क्र। २०,०००

+सा। ५००+च। ६०,०००+(जा १००)। ४+ख। ३०,०००

= २७ क्रम+२ (व+१२० सा)+४० (द+३ प)+३०,००० (ज। १००)

+४ ख+२ का (४० घ+३ पा। ५०)। १२०,०००.

नोट : कर्मचारी सूत्र लेखक की अनुमति से, उनकी पुस्तक, लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन, संस्करण २, १९५९ से लिया गया है, किन्तु हिन्दीकरण यहीं किया गया है।

जब एक पुस्तकालय अपनी वयस्कावस्था में पहुँच जाता है, तब उसकी स्थिति पुराने पाठकों से नए पाठकों में बदल जाती है, पुरानी फटी पुस्तकें नई ताजी पुस्तकों में बदल जाती हैं, और पुराने अवकाशप्राप्त कर्मचारी नए कर्मचारियों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस अवस्था में पुस्तकालय (पाठकों, पुस्तकों और कर्मचारियों की संख्या में) अपनी चाँटी पर पहुँच जाता है। तब भी, प्रचार कार्य शिथिल नहीं हो सकता क्योंकि नए पाठकों को नई पुस्तकें देने पड़ती हैं। फिर पुस्तकों के खरीदने में भी कम काम नहीं होता। इधर शैल्फ विभाग में भी शिथिलता नहीं बरतनी पड़ती, क्योंकि पुरानी पुस्तकों को बाहर निकालना ही पड़ता है। परन्तु इस अवस्था में पुस्तकालय भवन का विस्तार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। स्कूलों, कालेजों और व्यापारिक संस्थाओं के पुस्तकालय शीघ्र ही इस अवस्था में पहुँच जायेंगे। पहले भी कहा गया है कि सार्वजनिक पुस्तकालय को इस अवस्था में पहुँचने के लिए कहीं शताब्दियाँ लगे जायेंगी या इससे भी अधिक समय लग जायगा, किन्तु नगरों में एवं उपनगरों में शाखा पुस्तकालयों को, जो ग्रामीण पुस्तकालय पर निर्भर रहते हैं, वयस्कावस्था में पहुँचने के लिए अपेक्षाकृत कम समय लगेगा।

एक राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या की कोई सीमा नहीं हो सकती। शैशवावस्था में ही इसमें असंख्य पुस्तकें होंगी। इसके भवन की रूपरेखा

७५४१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

के समय एक ध्यान देने की बात यह है कि इसमें पांच पुस्तक कक्ष ऊंचाई पर होने चाहियें। इस भवन में दो अवतान भूमि में और पांच भूमि के ऊपर होने चाहियें। इसका अर्थ हुआ कि यह भवन ५४ फुट भूमि के ऊपर होगा तथा ४०० फुट लम्बा और ३५ फुट चौड़ा होगा। यही राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय का नाप होना चाहिये। नगर के बाहर भी एक तहखाना होना आवश्यक है जहां अतिरिक्त पुस्तकों को एकत्र किया जा सके और विशेष रीति से जिल्दबंद कर समाचारपत्रों को भी वहां रखा जा सके। इसके अतिरिक्त इस पुस्तकालय का एक सुरक्षित वज्रकोष्ठ भी होना चाहिए जहां आवश्यकता पड़ने पर बहुमूल्य पुस्तकें तथा विशेष सामग्री रखी जा सके।

व्याख्यान ८

पुस्तकालय-विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र

(इस व्याख्यान में पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र का विस्तार दिखाया गया है और योग्य व्यक्तियों को इसके अनुसरण की प्रेरणा दी गई है। आधुनिक ज्ञान के अनुसार पुस्तकालय कर्मचारियों तथा अन्य कर्मचारियों में श्रम विभाजन की आवश्यकता का अनुभव कराया गया है। अन्य कर्मचारी : कारखाने और प्रयोगशाला में कार्य करने वाले हैं।)

तीन कारण

विज्ञान का अध्ययन इन कारणों पर निर्भर है: (१) उसके विषयवस्तु का आकर्षण जिससे योग्य व्यक्ति जिज्ञासावश उस ओर खिंच आएँ, (२) ऐसे व्यक्तियों का प्रगट होना जिनमें प्रेम अथवा दैवी-जिज्ञासा हो (यह आइन्स्टाइन के अनुसार पूर्ण सुख-सागर में डुबकी लगाना अथवा खोज द्वारा उत्पन्न प्रमोद का आभास करना है), तथा (३) ऐसे व्यक्तियों का पाया जाना जो यथाक्रम अनुसंधान में लगे हों, जो समाज के हित में हों, और कुछ गहरे अनुसंधान कार्य में लीन रहते हों।

सभी विज्ञानों का इतिहास अभी तक इस प्रभावशाली रूप में नहीं लिखा गया है, केवल आंकड़ों में या विवरणात्मक अथवा ऐतिहासिक रूप में ही लिखा गया है। इनमें से ऐतिहासिक रूप की हमारे यहां अधिकता है और इसी के द्वारा विज्ञान के इतिहास की रूप रेखा बनती है।

मुझे विश्वास है कि भारत के इस विश्वविद्यालय तथा अन्य विदेशी विश्वविद्यालयों में "विज्ञान का इतिहास" नामक एक विषय पाठ्यक्रम में आ जायगा और इसके द्वारा शीघ्र ही उपरोक्त प्रभावशाली रूप में विज्ञान के इतिहास की पुस्तकें

८११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

भी लिखी जाने लगेंगी। अब मैं ऊपर कहे तीनों कारणों के प्रभावों का वर्णन कुछ उदाहरणों के साथ करूंगा।

८११. गणित का उदाहरण

मैं विज्ञान के प्राथमिक उपकरण "गणित" से ही श्रीगणेश करता हूँ। यह विज्ञान वास्तव में कहा जा सकता है कि सदैव ही बढ़ने की अवस्था में है। इसकी सामग्री कभी भी समाप्त नहीं हो सकती। मनुष्य के उद्भव से आज तक यह विषय ऐसे नवीन विचारों को अन्वेषण एवं अनुसंधान के लिए प्रस्तुत करता रहा है जो आज भी अछूते हैं। इसका प्रारम्भ अंकों से हुआ और आज भी अंक अछूते हैं। इसका विस्तार तो उचित वैज्ञानिक अंकों से बहुत पहले हो चुका था। तत्पश्चात् असमान्य, नकारात्मक, अस्पष्ट तथा काल्पनिक अंकों की खोज हुई। अब तो इसका साम्राज्य शून्य तक पहुँच गया है। यहां तक कि इसका नवोदित विभाग स्थलशास्त्र अब अंक-स्थान की कई विविधताएं उपस्थित कर रहा है। इसका आगे भी अन्वेषण हो सकता है। इस नये विभाग में प्रचुर सामग्री मिल सकती है। ठीक यही सामर्थ्य बीजगणित तथा ज्यामिति में भी है। ज्यामिति तो प्राचीन काल से ही मानव के भीतर वह उत्सुकता जगाती आई है जो अब भी समाप्त होने वाली नहीं। अति-सूक्ष्म विश्लेषण, कार्य-उपपत्ति तथा विशिष्ट-कार्य एक दूसरी ही अनंत कड़ी के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। विश्लेषण के कई नये प्रकार, जैसे कार्यात्मक, सांख्यिकी, तथा गठन-विश्लेषण हम लोगों के जीवन काल में ही आये हैं। इस विषय में विभागों की बहुतायत के कारण ऐसे लोगों की कमी आदिम काल से अब तक नहीं हुई जो समय-समय पर प्रसन्नचित्त होकर गणित में अनुसंधान करते रहे।

न्यूटन तथा वॉरिंग के साथ कौन सी ऐसी सांसारिक प्रेरणा रही जिसने उन्हें घन तथा वर्ग के रहस्यों को सुलभाने में वर्षों तक तल्लीन रखा? इन लोगों ने दिखा दिया कि केवल ७२ जातियाँ के घन तथा ५४,५५१ जातियाँ के वर्ग हो सकते हैं, इससे अधिक कभी नहीं। पंचकोण एवं षट्कोण तथा अन्य दूसरी आकृतियाँ अब भी शेष हैं। ये मानव को अब भी ललकार रही हैं कि कोई उनकी भी वर्ग तथा घन के समान पूर्ण खोज करे, और इस खोज का आनन्द उठाये। कौन सी ऐसी सांसारिक प्रेरणा आधुनिक रामानुजन् के साथ कार्य कर रही थी जिसके कारण वे अज्ञात एवं एकांत वास में उच्च-समंक, अंक-विभाजन, सतत्-भिन्नांक, जादू के वर्ग तथा भिन्नांक-भेद के रहस्यों के उद्घाटन में लगे रहे?

८१२. गणित का अन्य विषयों को सम्पन्न करना

गणित बहुत ही शीघ्र एक उपकरण के रूप में मान लिया गया है। इसके उपयोग से ही लाभदायक विषय मानव सुधार के लिए अच्छी वस्तुएं प्रस्तुत करते हैं। समाज इसकी खोज में बिना किसी तत्काल उपयोगिता का विचार किए ही लग गया। इसमें उसकी बुद्धिमत्ता ही थी। सांख्यिकी-विश्लेषण, जो गणित से ही उत्पन्न हुआ, समाज को इतनी आसानी से नहीं आकर्षित कर सका। यही कारण है कि मानवता इसके अनुसरण में धन तथा जन का सहयोग नहीं दे सकी। यह क्रम पचास वर्ष तक चलता रहा। कार्ल पियर्सन गणित के इस विभाग के विस्तार को देख कर मोहित हो गये। उनमें इसके अन्वेषण की समर्थ्य भी थी। आइये, हम उस मानवीय प्रेरणा की रीति को देखें जिसने कार्ल पियर्सन को इस विज्ञान की खोज के लिए प्रेरित किया। लन्दन के बाजारों में जब सिले हुए तैयार कपड़ों का चलन हुआ तो वहां के बजाजों को कठिनाई का सामना करना पड़ा। कुछ नाप के कपड़ों की अधिकता हो जाती और कुछ नाप के कपड़ों की कमी। दोनों ही अवस्थाओं में बजाजों को घाटा सहना पड़ता। उस समय जब बजाज निराशावस्था में थे, कार्ल पियर्सन ने सांख्यिकी की सहायता से इस समस्या का समाधान किया। फलतः बजाज अपने व्यापार में उन्नति करने लगे। यही कारण था कि ड्रैपर्स कम्पनी ने विश्लेषण के अध्ययन के लिए सुविधाएं प्रदान की। कार्ल पियर्सन तो अपने अहम् की सन्तुष्टि में इस सीमा तक पहुंच गये कि अपनी रचनाओं की प्रकाशन-माला का नाम ही "ड्रैपर्स कम्पनी रिसर्च मैगैजिन" रख दिया। कार्ल पियर्सन का आग्रह तथा ड्रैपर्स कम्पनी का उनमें दृढ़ विश्वास ही सांख्यिकी-विज्ञान के अनंत क्षेत्र प्रकाश में लाये। यह विज्ञान एक के बाद एक, तथा जीव-विज्ञान, शिक्षा-विज्ञान, कृषि-विज्ञान, औषधि-विज्ञान तथा अर्थ-विज्ञान, मनोविज्ञान, और समाज-विज्ञान, कई विषयों में प्रयुक्त हुआ। फलस्वरूप कई नवीन विज्ञानों का आविर्भाव हुआ जैसे मनोमिति, अर्थमिति, नृमिति, इत्यादि, इत्यादि। अब इन सभी विज्ञान के क्षेत्रों में अनुसंधान की सुविधाएं, बिना किसी तत्काल लाभ अथवा लाभ प्राप्ति को सिद्ध किए हुए ही प्रदान की जा रही हैं। इनमें से कुछ विज्ञानों की पत्रिकाओं की सांख्या भी अधिक हो चली है। ये पत्रिकाएं केवल सम्बन्धित विज्ञान की ही सामग्री प्रस्तुत करती हैं। कार्ल पियर्सन की अनन्य भक्ति ने तथा बजाजों द्वारा प्रकाशित नवीन विज्ञान ने बहुत से विषयों को जन्म दिया। उदाहरणार्थ, अर्थशास्त्र जो वाग्विस्तार और काल्पनिक तथा बनावटी सुन्दरता के लोखों में ही डूब रहा था, कार्ल पियर्सन के ही द्वारा बचाया

८१३]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

गया और उचित मार्ग पर लाया गया। यदि तत्कालीन अर्थशास्त्रियों के सुझाव के अनुसार इपैर्स कम्पनी कार्य करती, यदि सांख्यिकी विद्या एक नवीन विज्ञान होने के नाते दूसरे विज्ञानों द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखी गयी होती और यह कह दिया गया होता कि तुम सीमा के बाहर प्रतीक्षा करो तथा कुछ वर्षों तक अपने उपयोगी कार्यों द्वारा योग्यता का प्रमाण दो, तो अर्थशास्त्र के लिए कितना घातक सिद्ध हुआ होता?

८१३. बिना लाभ के सुविधाएं देना

भौतिक-विज्ञान की प्रत्येक शाखा में विज्ञान की उन्नति में सहायक तीनों कारणों के प्रभाव को स्पष्ट करने की पर्याप्त सामग्री है। ऐसा रसायनशास्त्र में भी है। शताब्दियों से यह होता चला आया है कि यह विश्व विज्ञान की तत्कालीन विचार-धारा से पीछे रहता रहा है। अब यह मानवता के कुछ भाग को, विज्ञान की भक्ति के लिए धन-जन प्रदान करने को प्रोत्साहित करने में सफल हो चला है। स्वार्थी व्यक्ति बिना किसी तात्कालिक लाभ के तथा बिना किसी सन्देह अथवा अप-शब्द कहे ही यह सब स्वीकार कर लेते हैं। पहलें से प्रतिष्ठित विज्ञानों के अनुयायी चाहे भले ही कहते रहें और झूठे शोर मचाते रहें कि नवीन विज्ञान झूठा है तथा इसके द्वारा विश्वविद्यालयों की मर्यादा में कलंक लग जायगा, किन्तु उन्हें इसमें असफलता ही प्राप्त होगी। ऐसे लोग भले ही चेतावनी देते रहें कि नये विज्ञान को तब तक प्रतिष्ठा नहीं मिलनी चाहिए, इसको उचित सुविधाएं नहीं मिलनी चाहिए, और इसे समुचित श्रेणी नहीं मिलनी चाहिए, जब तक कि यह बिना किसी सहायता, संरक्षण अथवा बचाव के अपनी योग्यता न सिद्ध कर दे। किन्तु मानवता के कुछ खंड इसकी सहायता करने के लिए तत्पर हो ही जाते हैं। टाटा इंस्टिट्यूट आफ फण्डामेंटल रिसर्च तथा टाटा इंस्टिट्यूट फार सोशल वर्क इसके अच्छे प्रतीक हैं। वे बिना किसी लाभ के सुविधाएं प्रस्तुत करते हैं। यह निश्चित है कि मानवता इन संस्थानों के संरक्षण में हुए कार्यों से इतना लाभ उठायेगी कि इसके सामने थोड़ा सा तात्कालिक लाभ, अथवा लाभ-प्रदर्शन जो संशयात्मक बाधाओं को तोड़ने के लिए किया जाता है, नगण्य होगा। कई नये विज्ञानों के अध्ययन के लिए, जो प्रतिष्ठित नहीं थे, तथा जिनके लिए विश्वविद्यालयों में सुविधाएं प्राप्त नहीं थीं, कान्ग्री के अनुदान ने पिछली शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्षों में यह दिखा दिया है कि मानवता इन विज्ञानों से कितना कुछ प्राप्त कर सकती है। यदि इस विज्ञान को बिना किसी बाधा अथवा ईर्ष्या के विज्ञान की श्रेणी दे दी जाय, और इसे सारी प्रतिष्ठाएं एवं

सुविधाएं बिना किसी शर्त के प्रदान कर दी जायें तो उच्च एवं चतुर व्यापारीगण नये विज्ञानों की सामर्थ्य को विश्व विचारकों से पहले ही समझ जाएं। अब विश्व-विद्यालयों को अपना यह दृष्टिकोण बदलना चाहिए।

८१४. अनुसन्धान का मनोविज्ञान

इंस्टिट्यूट फार एडवान्स स्टडी सम्भवतः सबसे नया तथा मुख्य संस्थान है जो नवीन विज्ञानों को बिना किसी लाभ या हानि के सोचे समस्त सुविधाएं देता है। यह १९३० में स्कूल आफ मैथेमेटिक्स के साथ था। कुछ समय बाद इसमें स्कूल आफ इकानामिक्स, पॉलिटिक्स, आर्कियालोजी तथा ह्यूमैनिटीज भी सम्मिलित कर लिए गये। इस संस्थान को न्यूयार्क के एक साधारण सी दुकान के मालिक लुई बेम्बर्जर तथा उसकी बहिन फ्रेड फ़ेड ने सात लाख रुपया दान दिया था। इसमें न तो कोई प्रयोगशाला थी, न उद्यानशाला और न ही व्याख्यान देने के कमरे। किन्तु इसका एक उत्तम पुस्तकालय था जिसमें १२ देशों से आए हुए १०० स्त्री-पुरुष रहते थे तथा विचार करते थे। ऐसे महान् विद्वानों का मस्तिष्क संभवतः पहली बार एक स्थान पर एकत्रित हुआ था। यह संस्थान विचारकों के लिए बना था जो शीघ्र क्रियात्मक फल से सम्बन्ध नहीं रखते थे। उदाहरणार्थ, मैथेमेटिकल स्कूल गणित के विख्यात लोगों का समूह बन गया है। आज का प्रत्येक गणितज्ञ इससे अच्छी तरह परिचित है। किन्तु बाहरी दुनिया इसे अधिक महत्त्व नहीं देती। इसके सदस्यों से कोई कर नहीं लिया जाता। हमारे रामानुजन् भी ट्रिनिटी कालेज के सभासद् थे और उन्हें कर नहीं देना पड़ता था। इसका क्या लेखा है कि वे अपने विषय में कितना कार्य करते हैं? विज्ञान की साधना करने वाले संतों की एक विचित्र दशा रहती है। वे बहुधा उत्साहवर्धक उत्तंजना की अवस्था में रहते हैं। इस बीच इन्हें अपने अनुसन्धान के तथ्यों के अतिरिक्त सभी वस्तुएं निस्सार मालूम पड़ती हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हें असत्य सा लगता है। उनकी सारी विचार-शक्ति अपने विषय के अनुसन्धान कार्य में लगी रहती है। बाहर वालों को ये लोग आलसी और निरुद्देश्य जीव दिखाई देते हैं। यह कैवल उन्हें ही ज्ञात होता है कि वे किस प्रकार का कार्य कर रहे हैं। जब वे कागज के पृष्ठ के पृष्ठ रंग डालते हैं और नये लोगों की समझ के बाहर की भाषा प्रयोग करते हैं तो हास्यास्पद मालूम होते हैं। वे लम्बे-लम्बे वार्तालाप से आनन्द उठाते हैं। ऐसे वार्तालाप अन्य लोगों को असहनीय होते हैं। उन लोगों का एक स्तर होता है। इससे भिन्न स्तर का वार्तालाप वे लोग नहीं करते। वे एकान्त की खोज में रहते हैं—वे लड़ने वाले नहीं,

और शक्ति की उन्हें कोई परवाह नहीं। जो लोग इस स्वाद को चख चुके हैं वे अनुसंधान का बदला किसी भी शक्ति से नहीं कर सकते। यही कारण है कि जीवन-वेत्ताओं में से कोई भी राजनयिक प्रतिनिधि नहीं बना। क्या डाक्टर विद्यारण्य ने प्रधान मंत्री का पद स्वीकार किया? वैज्ञानिक, उपकुलपति के पद को भी अस्वीकृत कर देते हैं। ऐसे लोग जो विज्ञान में अधिक संलग्न हैं वे शिक्षण संस्थाओं की बैठक में भी उपस्थित होने में हिचकते हैं। जब मैं पुस्तकालय-विज्ञान के विभाग के भविष्य का विचार करता हूँ तब वर्ष प्रति वर्ष नवयुवक इस ओर आकर्षित होते दिखाई पड़ते हैं। इन सब युवकों में से कुछेक की ही दृष्टि उस प्रसन्नता से चमकती हुई दिखाई देती है जो एक जन्मजात वैज्ञानिक की होनी चाहिए। इन कुछेक में से भी कोई एक एकान्तवास की खांज करता है। वैज्ञानिक का उद्देश्य ख्याति प्राप्ति नहीं बरन् वह तो अपने विषय के अध्ययन में और भी सब कुछ भुला देता है। मुझे भी इसी प्रकार पुस्तकालय-विज्ञान की साधना के समय प्रत्येक वस्तु को भूल जाना पड़ता है। मुझे ऐसा भास होता है कि पुस्तकालय-विज्ञान की प्रयोगशाला भारत में आ गई है। मेरा यह विश्वास एक दूसरे कारण से भी है जो पुस्तकालय-विज्ञान में अनुसंधान क्षेत्र को निर्धारित करता है। वह कारण है उन लोगों का पाया जाना जो अनुसंधान रूपी प्रमाद में डूबने के लिए प्रेमपूर्वक इसकी गहराइयों में डुबकी लगा सकते हैं।

८२. पुस्तकालय विज्ञान की सामग्री

पुस्तकालय-विज्ञान की सामग्री कितनी है? इसमें उत्सुकता उत्पन्न करने की कितनी क्षमता है? क्या यह पर्याप्त है कि यह यांग्य पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित कर ले? मैं छठे व्याख्यान में ही इसका संदर्भ दे चुका हूँ कि मैंने तथा अन्य लोगों ने पुस्तकालयों के अच्छे कार्यकर्ताओं में कितना अविश्वास पाया। मैंने यह भी कहा था कि मुझे इसके कार्यक्षेत्र की भूमि अछूती मिली। मैं अपने कुछ अन्य अनुभवों का उल्लेख करना चाहूंगा जो उपरोक्त प्रश्न के उत्तर देने में सहायता करेंगे। १९२५ में जब मैं स्वदेश वापस आया तब तक मेरा दृष्टिकोण बदल कर यह हो गया कि पुस्तकालय-विज्ञान भी एक अन्य विषय रहा है। मैं आप लोगों को सातवें व्याख्यान में बता चुका हूँ कि विज्ञान के वे सिद्धान्त क्या हैं। इन सिद्धान्तों की व्यवस्थापना के थोड़े ही समय पश्चात् १९२८ में मुझे लगभग ५०० अध्यापकों के सामने इनकी व्याख्या करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। साउथ इंडिया टीचर्स यूनियन का वार्षिक अधिवेशन चिदाम्बरम् में हुआ। इस यूनियन की प्रार्थना पर

मद्रास विश्वविद्यालय ने मुझे इस सम्मेलन में सदस्यों के सामने व्याख्यान देने का भार सौंपा। मैंने पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्तों को ही व्याख्यान का विषय चुना। मैंने सारे सिद्धान्तों की व्याख्या की तथा इनके सारे तर्कों का पता लगाया। इन व्याख्यानों को दो वर्षों बाद क्रमबद्ध किया गया जिसका फल यह हुआ कि १९३१ में एक पुस्तक फाइव लाज आफ लाइब्रेरी साइन्स के नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के कुछ समय बाद मुझे ऐसा लगा कि इन सिद्धान्तों द्वारा जो कुछ भी प्राप्त किया जा सकता था वह प्राप्त कर लिया गया और अब उनका उद्देश्य समाप्त हो गया। इस प्रकार दिवालियेपन का अनुभव मुझे असम्मानजनक लगा। मैं किस प्रकार दर्प से बाले जाने वाले विशिष्ट नाम "विज्ञान" को उचित सिद्ध करता? क्या मेरे विचार एवं लेख बाँझ सिद्ध हुए? क्या श्री शिवास्वामी अय्यर की शंका एक सच्ची चेतावनी थी? क्या मुझे इस नवीन ज्ञान क्षेत्र को छोड़ कर अपने पुराने क्षेत्र गणित में वापस चले जाना है? इस प्रकार की मिथ्या धारणाएं लगभग एक वर्ष तक मेरे मन में बनी रहीं। मैं यह भी सोचने लगा कि यह विज्ञान आगे की साधना के लिए सम्भवतः पर्याप्त क्षेत्र उपस्थित नहीं कर सकेगा?

८२१. पुनर्विश्वास की किरण

किन्तु दुबारा विश्वास की किरण तभी दिखाई दी जब पुस्तकालय के भवन-निर्माण में व्यस्त शिल्पकार से मेरा वार्तालाप हुआ और इन सिद्धान्तों के सामर्थ्य प्रकाश में आये। जब कभी विवादास्पद स्थिति उत्पन्न हुई तब पुस्तकालय-विज्ञान के पांच सिद्धान्तों की सहायता से निर्णय कर लिया गया। इनके द्वारा केवल मुझे ही नहीं वरन् शिल्पकार को भी प्रकाश मिला। भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र की भाँति बहुत से कठिन प्रश्नों का समाधान इन सिद्धान्तों द्वारा शीघ्र ही मिल जाता था। जब कभी कोई प्रश्न विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी सभा में रखा जाता तब उसका भी समाधान इन्हीं सिद्धान्तों की सहायता से किया जाता था। उस सभा के सदस्य विशाल हृदय होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सिद्धान्तों द्वारा प्रस्तुत समाधान का स्वागत करते। यह तो मानना ही होगा कि उसमें कुछ ऐसे भी सदस्य थे जिनका धर्म व्यक्तिगत अथवा राजनैतिक दृष्टिकोण के कारण पुस्तकालय के मुख्य सिद्धान्तों की सार्थकता को नष्ट करना अथवा इन नियमों के विरुद्ध कहना ही था। वे पुस्तकालय की मान्यता घटाने के लिए सत्य एवं सुन्दर की बलि दे देते। इसके विपरीत सर्वसाधारण बुद्धियुक्त हितचिन्तकों का कार्य इन सिद्धान्तों की सहायता से सरल हो जाता। इस अनुभव से अनायास ही मुझमें पुनर्विश्वास जागा।

८२४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

८२२. विश्वास की पुष्टि

अब जब कार्यकर्त्ताओं तथा कार्य की वृद्धि में होड़ लगी तब प्रशासन संहिता की आवश्यकता उठ खड़ी हुई। इस संहिता के नियमों को बनाते समय मुझे विधान की अपार शक्ति का पता चला और तभी मुझे इन सिद्धान्तों की अपरिमिति गहराई का ज्ञान हुआ। जब मेरी पुस्तक लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन सन् १९३५ में प्रकाशित हुई तो "मद्रास मेल" के एक आलोचक ने उसकी समीक्षा करते हुए लिखा कि उसके नियम किसी मूल नियम के आधार पर होने चाहिएं। बाद में उसने मुझे अपना परिचय दिया। वह भारतीय प्रशासन सेवा का एक प्रवर सदस्य था जो स्कॉटलैण्डवासी था। उसने समीक्षा में लिखा: "इस तथ्य को मानने में तनिक भी हिचक नहीं है कि डा. रंगनाथन् ने क्रियात्मक विश्लेषण का एक साधारण एवं शक्तिशाली ढंग खोज निकाला है। यह विषय अपने क्षेत्र की प्रत्येक भुजा का अन्वेषण करके ही छोड़ेगा।" इन सिद्धान्तों की सहायता से विवरणयुक्त पुस्तक लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन की रचना जितनी आसानी से हो सकी उससे पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्तों की सामर्थ्य में मुझे कुछ विश्वास हुआ। इसीलिए उपरोक्त समीक्षक के निरूपण से मेरे इस विश्वास की पुष्टि हुई कि पुस्तकालय-विज्ञान भी सदैव लोगों को अपने अनुसरण के लिए आकर्षित करता रहेगा।

८२३. गहराई तथा सामर्थ्य का अनुभव

लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन के साथ साथ कोलन क्लासिफिकेशन तथा क्लासिफाइड कैटलाग कोड के प्रथम संस्करण की रचना हो रही थी। इन दोनों मूल पुस्तकों के कार्यों से विज्ञान की सदैव बढ़ती हुई सामर्थ्य तथा गहराई का भास हुआ। बम्बई विश्वविद्यालय के प्रौढ़ विद्यार्थियों के समक्ष व्याख्यान देने के सुअवसर मुझे मिले। ये विद्यार्थी विभिन्न ढंगों से दीक्षित हो रहे थे। इससे मुझे विज्ञान की अधिक गहराई में डुबकी लगाने तथा इसकी अनन्त गहराई को समझने के कई अवसर मिले।

८२४. दिल्ली विश्वविद्यालय का स्वप्न

जैसे-जैसे मैं वृद्ध होता गया और खोज के लिए अधिक से अधिक गहराई तक डूबने लगा, मैं इस विषय की अनन्त धनराशि से व्याकुल एवं चकित-सा होने

लगा। सत्रह वर्ष पहले मेरे दिवालियेपन की भावना (जिसके कारण मेरे बन्धन-सूत्र के शीघ्र ही टूट जाने का भय था) अब एक दूसरी ही भावना में परिवर्तित हो गयी। इससे मैं पहले से भी अधिक व्याकुल हो उठा और मुझे यह ज्ञान होने लगा कि यदि ईश्वर मुझे इस पृथ्वी पर कहीं जन्म देता रहे तथा मैं केवल पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान ही करता रहूँ तब भी मैं इसकी पूरी गहराई तक न पहुँच सकूँगा। मैं अपने जन्मों को तो नहीं चाहता किन्तु यह इच्छा अवश्य है कि अधिक से अधिक नवयुवक पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसंधान की पदवी पाने के लिए अपना नाम दें और इसमें अन्वेषण करें। एक अकेले से यह कहीं अच्छा रहेगा। मेरे इसी अनुभव ने मुझे साहसी बनाया और मैंने तीन विश्व-विद्यालयों से प्रार्थना की कि वे पुस्तकालय-विज्ञान का विभाग खोलें। होनहार नवयुवकों को इस विषय पर दो वर्षों के अध्ययन की सुविधा दें। केवल दिल्ली विश्वविद्यालय में ही इसके प्रतिपादन की दूरदर्शिता थी। अब आप समझ सकते हैं कि मैं किस लिए दिल्ली विश्वविद्यालय से बहुधा अपनी कृतज्ञता प्रगट करता आया हूँ।

८३. संयुक्त राज्य का दृष्टान्त

आप यह भी समझ सकते हैं कि मैं किस लिए पुस्तकालय-विज्ञान में अनुसंधान की सुविधाएं प्रदान करने के लिए शीघ्रप्रतिशीघ्र ध्यान देने पर बल देता हूँ। मैं अपने जीवन के शेष दिन मेधावी नवयुवकों के साथ प्रसन्नतापूर्वक इस विषय की असंख्य तर्कों को खोजने में व्यतीत करने के लिए बहुत इच्छुक हूँ। मुझे विश्वास है कि आप तथा आपके उत्तराधिकारियों में से कुछ इस शक्ति की साधना करना मूल्यवान् समझेंगे। मुझे आशा है कि आप लोग किसी एक या दूसरी जीवनवृत्ति तथा उसकी चमक-दमक को छोड़कर पुस्तकालय-विज्ञान की साधना में लग जायेंगे।

संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग पचास नवयुवक पुस्तकालय-विज्ञान में डाक्टरेट की उपाधि ग्रहण कर चुके हैं, और बहुत से आगे बढ़ रहे हैं। उस देश के बहुत से नागरिक इस विज्ञान की साधना कर रहे हैं। इसका कारण यह नहीं है कि इसमें लोगों की बहुतायत है किन्तु वे लोग इस बात से सहमत हैं कि आधुनिक प्रजातंत्र के युग में पुस्तकालय-विज्ञान में अनुसंधान करना समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है। यह क्यों आवश्यक है? यह एक मूलभूत प्रश्न है। मुझे इस पर पूर्णतया विचार करना चाहिए। आइये हम इसके प्रथम चरण से ही समारम्भ करें।

८४१]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

८४. समाज की उन्नति

पुस्तकालय-विज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग की सतत् साधना पुस्तकालय-आन्दोलन को उचित मार्ग पर लाने में है। पुस्तकालय आन्दोलन क्यों? क्योंकि यह सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक है। फिर वही प्रश्न क्यों? इस “क्यों” का उत्तर देने के लिए हमें सर्वप्रथम पुस्तकालय आन्दोलन को समझना चाहिए। अलग-अलग बड़े या छोटे पुस्तकालयों को स्थापित करना, जहाँ पर प्रकाशित सामग्री एकत्रित एवं सम्भालकर रखी जाय, यही पुस्तकालय आन्दोलन नहीं है। किन्तु पुस्तकालय का जाल फैलाना तथा उन्हें क्रियाशील अवस्था में रखना ही पुस्तकालय आन्दोलन कहलाता है। पुस्तकालय उस संस्थान को कहते हैं जो समाज द्वारा ही समाज के लिए स्थापित किया जाता है। इसका मुख्य सामाजिक उद्देश्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन भर प्रकाशित पुस्तकों द्वारा स्वशिक्षा का सुअवसर प्रदान करना है। इन पुस्तकों का संगठन, प्रबंध एवं सेवा उन लोगों द्वारा होती है जो सोचें हुए विचारों को क्रियाशील एवं वैकल्पिक अवस्था में परिवर्तित करने में प्रवीण होते हैं। इस प्रकार पुस्तकालय एक ऐसा छोटा सा विजली स्टेशन है जो नयी पुस्तकों में बंधी विचार शक्ति को विश्व के मस्तिष्क में डालने, विस्तृत करने तथा प्रसार करने के लिए ही खोला जाता है। आज के मानवीय विकास द्वारा सामाजिक उन्नति केवल प्राणशक्ति अथवा भावशक्ति पर ही आधारित नहीं बरन् इसके लिए विचारशक्ति की भी आवश्यकता होती है। किन्तु भावशक्ति का शुद्धीकरण विचारशक्ति द्वारा ही हो सकता है। साथ ही आध्यात्मिक शक्ति जो किसी समय विशेष में ही उत्पन्न होती है उसे अपनाने या ग्रहण करने के लिए विचार शक्ति की ही आवश्यकता होती है।

८४१. व्यक्तित्व की उन्नति

भावनाओं का यह गट्टर बहुत भारी है। आप लोगों के मुँह पर भ्रान्ति की भलक दिखाई पड़ रही है। आइये! इस भ्रान्ति को दूर करने की चेष्टा करें और समाज की अपेक्षा एक व्यक्तित्व को ही लें। सामाजिक-उन्नति व्यक्तिगत-उन्नति में ही निहित है। एक व्यक्ति की उन्नति व्यक्तित्व के तीनों पक्षों में होनी चाहिए—प्राण पक्ष, बुद्धि पक्ष तथा आध्यात्म पक्ष। ये तीनों पक्ष क्रमानुसार स्थूलता में घटते तथा सूक्ष्मता में बढ़ते हैं। शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा—प्रत्येक पक्ष में एक गुप्त उत्तेजना होती है। उत्तेजना से ही ये बढ़ते हैं और अपने सम्भावित पूर्ण आकार तक

फैलते हैं। शरीर में यह उत्तेजना साधारणतः शीघ्र ही दिखाई पड़ने लगती है। जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता दुर्दमनीय है। अतः शारीरिक वृद्धि भी दुर्दमनीय है। ऐसा ज्ञात होता है कि ये सारी क्रियाएँ जीव-रसायन विज्ञान की भाँति हैं। मस्तिष्क की उन्नति धीमी गति से होती है और बहुत देर में दिखाई पड़ती है। जीव-रसायनिक विज्ञान क्रियात्मक रूप तक ही नहीं सीमित रहता। इसी कारण बहुत से लोगों को दूसरों की वृद्धि से उत्पन्न विचारों द्वारा प्रोत्साहन की आवश्यकता पड़ती है। आज मानव के क्रमिक विकास में आध्यात्मिक उत्तेजना बहुत ही कम पाई जाती है। जिनमें ऐसी उत्तेजना दृष्टिगोचर होती है वे बहुत कम हैं और शताब्दियों के अवकाश के बाद भी नहीं दिखाई पड़ते जैसे : गौतम बुद्ध, श्री शंकराचार्य, ईसा, मुहम्मद, सम्बन्ध, वासव तथा रामकृष्ण। कम प्रकाश वाली आध्यात्मिक आभा भी इतनी जल्दी नहीं उत्पन्न होती। कुछ लोगों में आध्यात्मिक उत्तेजना की थोड़ी सी भी भूलक नहीं दिखाई पड़ती। कभी-कभी कुछ लोगों में इसकी केवल भूलक-सी दिखाई पड़ती है और इसकी सहायता से नीति-शास्त्र अथवा व्यवहार-शास्त्र का निर्माण होता है। ये शास्त्र प्रथाओं की छाप लिए होते हैं। यही कारण है कि नीति तथा व्यवहार द्वारा आध्यात्म के समाप्त हो जाने का मिथ्या-भास होता है। हाँ! कभी-कभी ये आध्यात्म के अनुरूप ही जान पड़ते हैं। उदाहरण-स्वरूप मैं एक घटना का वर्णन करता हूँ : कैंटरबरी के आर्चीबिशप ने हाउस आफ लार्ड्स में इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में भाषण देते हुए कहा था, “मानवता की युद्ध-सम्बन्धी उत्तेजना को आध्यात्मिक शिक्षा की सुविधाओं द्वारा ही दूर किया जा सकता है।” इस व्याख्यान को पढ़ने के लिए आप लोगों से अनुरोध है कि आप सब १९४२ की “हाउस आफ लार्ड्स की डिबेट” देखें।

८४२. बौद्धिक विकास का महत्वपूर्ण प्रभाव

आइये! मानव व्यक्तित्व के इन तीनों पक्षों को एक दूसरे ही दृष्टिकोण से देखें। प्राणी होने के नाते विकास एवं प्रसन्नता के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता तो होती ही है। ऐसा ही समाज के लिए भी है। जब जनसंख्या कम थी तो ये वस्तुएँ सरलता से प्राप्त कर ली जाती थीं किन्तु अब जनसंख्या इस सीमा तक बढ़ गई है कि परम्परागत अनुभवसिद्ध रीतियाँ इसकी पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं। पृथ्वी से पानी द्वारा पर्याप्त भोजन उत्पन्न करने के लिए कृषि को तकनीकी रीतियों से बढ़ावा देना चाहिए। प्रकृति से प्राप्त गृहनिर्माण के साधनों की वृद्धि भी तकनीक द्वारा ही होगी चाहिए। कपड़े भी अधिक मात्रा में बनने चाहिए और इनके लिए भी

तकनीक की आवश्यकता है। तकनीक की ये सारी विधियाँ प्रकृतिप्रदत्त साधनों तथा समाज की सदैव बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अन्तर को दूर करने में काम आती हैं। तकनीकी सहायता से अधिक मात्रा में उत्पादन द्वारा कार्य का बहुत बड़ा विभाजन हो गया है। ऐसी परिस्थितियों में प्रबन्ध कार्यों की प्रेरणा मनुष्य की सामर्थ्य का अतिक्रमण कर गयी है, और वैज्ञानिक एवं तकनीकी बन गयी है। जीवन के स्तर की उन्नति बुद्धि के स्तर की उन्नति पर ही निर्भर है। बौद्धिक स्तर की उन्नति से प्रत्येक की स्मरण शक्ति को सदैव नवीन ज्ञान द्वारा अद्वितीय बनाये रखना चाहिए। अब से बहुत अधिक मात्रा में क्रियात्मक योग्यता तथा बौद्धिक विश्वास होना चाहिए। व्यक्तित्व के प्राण पक्ष की निर्बाध उन्नति से यदि सुख की प्राप्ति होती है तो यह निश्चित है कि बुद्धि पक्ष की उन्नति से स्वतःस्फूर्त ज्ञान एवं क्रियात्मक ज्ञान अर्थात् प्रमोद की अभिवृद्धि होती है। आध्यात्म पक्ष की उन्नति से आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द केवल प्राणभूत अथवा केवल बौद्धिक उन्नति से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह कौन सी परम्परा है जिसने हमें बुद्ध, शंकर, ईसा, मुहम्मद, साम्बन्ध, वासव तथा रामकृष्ण जैसे महापुरुषों को दिया? कहां से आनन्दमयी, अरविन्द, अलीउल्लाह, रामन्-ऋषि तथा स्वयंप्रकाश जैसी उदीयमान आत्माएं आईं? अतः हमें यह मानना पड़ता है कि प्राण पक्ष एवं बुद्धि पक्ष की उन्नति आध्यात्म पक्ष की उन्नति के साथ संलग्न है।

८४३. सर्वप्रधान स्विच

अब मैं इन्हीं विचारों को विद्युत-विज्ञान के शब्दों में रखता हूं। मेरे विचार से व्यक्तित्व के इन तीनों पक्षों में बिजली का एक एक स्विच होता है। इन स्विचों को प्रत्येक पक्ष के विकास के लिए खोलना पड़ता है। आध्यात्म पक्ष का स्विच तो सर्वप्रधान स्विच है। इस सर्वप्रधान स्विच के खुलते ही शेष दो स्विच अपने आप खुल जाते हैं। प्राण पक्ष का स्विच खोलने से केवल वनस्पतियों तथा प्राणियों में प्राण संचार होता है। किन्तु मनुष्य के विकास में कम से कम बौद्धिक विकास तो सम्मिलित है ही। यही कारण है कि बुद्धि पक्ष का स्विच खोलना दुगुना आवश्यक है। केवल प्राण पक्ष के स्विच से मनुष्य की बुद्धि अपूर्ण रहती है। इसे पूर्ण करने के लिए बुद्धि पक्ष का स्विच खोलना ही पड़ेगा। बुद्धि पक्ष का स्विच ही प्रमुख स्विच है। यह स्विच केवल विचारों द्वारा ही खोला जा सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य के प्राण एवं बुद्धि पक्ष को, जिनसे सुख तथा प्रमोद प्राप्त होते हैं,

केवल विचार-शक्ति द्वारा ही प्रोत्साहित किया जा सकता है। सामाजिक उन्नति भी तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति को विचार-शक्ति द्वारा प्रोत्साहित किया जाय। आइये! इन विचारों को एक दूसरे ही ढंग से प्रस्तुत करें। किसी भी गणतंत्र में सामाजिक उन्नति जनता के ठीक मार्ग पर चलने से ही हो सकती है। ठीक मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मानवोन्नति के वर्तमान मौलिक तथ्यों का जानना परम आवश्यक है। मनुष्यमात्र के किसी भी समूह में प्रत्येक व्यवसाय से व्यक्तित्व की उन्नति भूलकर एक सामाजिक दृष्टिकोण से दिखाई देनी चाहिए। इस ध्येय की किसी यंत्र द्वारा एकदम उन्नति नहीं हो सकती। शीघ्रता की क्रियायें मानवता की प्रकृतिप्रदत्त सामर्थ्य तथा जनकल्याण की भावना को भुला देती हैं, अथवा इसके अभिप्राय को नष्ट कर देती हैं। ये क्रियायें ऐसे ढंग से होनी चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओं को मान्यता दिलवायें, प्रत्येक व्यक्ति की विशेषता को प्रकाश में लायें, प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की सहायता करे और आपस में एक-दूसरे के प्रेम में बंधे रहें। अंततोगत्वा मनुष्य को अपना विकास स्वयं ही करना पड़ता है। यह बात सभी जीवधारियों के साथ है, चाहे वे वनस्पतियाँ ही क्यों न हों? माली वास्तव में किसी भी वृक्ष का विकास नहीं करता। वह तो सूर्य के प्रकाश, खाद, पानी, छाया और बचाव द्वारा वृक्ष के विकास में सहायता ही करता है। वृक्ष का विकास तो उसकी प्राण-शक्ति करती है। मनुष्य जाति में यह विकास कुछ कठिन है। क्योंकि इसका व्यक्तित्व तीन पक्षों से बनता है—प्राण, बुद्धि तथा आध्यात्म। प्रत्येक पक्ष में एक एक स्विच होता है और बुद्धि पक्ष में प्रमुख स्विच होता है (क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य में प्राण और बुद्धि का विकास होता है)। आध्यात्म पक्ष में जो सर्वप्रधान स्विच होता है वह आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ मनुष्य के सम्पूर्ण विकास का आधार है। इस सर्वप्रधान स्विच का विज्ञान तथा इसे खोलने की कला बहुत कम लोगों को ज्ञात होती है। निपुण व्यक्ति, भारतीयों के अनुसार ऋषिगण तथा टाउंशैन्ड निवासियों के अनुसार “अर्थमन” बहुत थोड़ी संख्या में हैं। इस प्रकार मानवोन्नति के लिए वर्तमान समय में केवल बुद्धि पक्ष के प्रमुख स्विच का आश्रय अधिक लोग लेते हैं। अतः इस सुविधा का हमें भी पूर्णरूप से लाभ उठाना चाहिए।

८४४. सुधार की रीति

जीवन व्यतीत करने के उन्नत स्तर आवश्यक तो हैं किन्तु पर्याप्त नहीं। अब यह समझा जाने लगा है कि सम्प्रदायों तथा राष्ट्रों को एकाभिमुख करने की प्राचीन

काल की चंष्टा हानिकर है। क्योंकि यह ठीक वैसा ही है जैसे मनुष्यों को पेंड़ या पौधे बनाना। मनुष्यों में अकेले प्राण पक्ष के स्वच की विद्युत-धारा ही धीरे-धीरे बढ़ती रहती है और कालान्तर में इतनी शक्ति एकत्रित कर लेती है कि बिना किसी चिन्ता के सारी वस्तुओं को जला डालती है—चाहे वे मूल्यवान हों या निरर्थक। यह आग अपने बढ़ने के प्रयत्न में बाधा डालने वाली शक्तिशाली वस्तुएं जैसे अभिजात-तंत्र, साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद—इन सबका विनाश कर डालती है। यही कारण है कि अब साधारणतया यह माना जाने लगा है कि बुद्धि पक्ष के प्रमुख स्वच के द्वारा अनुकूल, चिरस्थायी एवं नियंत्रित विकास हो सकता है। क्योंकि प्राण पक्ष का स्वच बुद्धि पक्ष के स्वच के खुलते ही अपने आप खुल जाता है।

दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण मानवता की उन्नति की उपपत्ति विचारों से ही होती है। लोगों में केवल प्राण शक्ति के स्तर को उठाना निरर्थक है। इतिहास साक्षी है कि उन्नति के विचारों को उत्पन्न करना तथा उनका विस्तार करना, प्रकाश द्वारा मार्ग-प्रदर्शन करना, ये ही उन्नति के निश्चित ढंग हैं। यंत्रों की सहायता से शरीर को इस स्थान से उस स्थान पर ले जाना मात्र उन्नति नहीं हो सकती। विचार-शक्ति ही आपूर्ति की आवश्यकता है। शिक्षकों के पढ़ाने के अतिरिक्त, विचारशक्ति की आपूर्ति पुस्तकों में निहित एवं सामान्यीकृत ज्ञान द्वारा भी हो सकती है। वास्तव में पुस्तकों से अधिकतम सहायता ली जाती है। बुद्धि पक्ष का स्वच खोलने की चंष्टा करने वाला सम्प्रदाय, मानवता के वर्तमान क्रमिक विकास की अवस्था में वह शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकता जो प्रत्येक की सहायता कर सके। इधर इस कार्य के लिए पर्याप्त शिक्षक भी नहीं हैं। फिर शिक्षक द्वारा कहे गये शब्द इतने क्षणभंगुर होते हैं कि इनसे कलाकौशल, औद्योगिक विधियों, विविध शिल्पों, राजनीतिक, आर्थिक एवं शिक्षा सम्बन्धी पद्धतियों की स्थापना तथा धर्म में सहायता नहीं मिल सकती। इन कथनों को पुस्तकों में अथवा ध्वनि-चलचित्रों में उतार लेना चाहिए, जिससे कान और आंखें बार-बार सुन या देख सकें। मानवता अभी तक इसके अतिरिक्त कोई ऐसा नवीन ढंग नहीं खोज सकी जो मस्तिष्क की आवश्यकता पूरी करे। अतएव सुधार की रीति में ज्ञान के सारे वर्तमान रूपों जैसे विचारों के प्रत्येक स्तरों की पुस्तकों का उत्पादन और विचारों के विस्तार के लिए पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा ध्वनि-चलचित्रों का उत्पादन भी सम्मिलित है। इसमें राष्ट्र-व्यापी पुस्तकालय सेवा का संगठन भी सम्मिलित है जो इन विचार सम्बन्धी वस्तुओं का प्रदर्शन कराएगा। इसके साथ ही साथ निपुण पुस्तकाध्यक्षों की भी आवश्यकता है। ये शीघ्रातिशीघ्र समय-समय पर निजी ढंग से नागरिकों में विचारों का प्रसार करेंगे। यही कारण है कि पुस्तकालय व्यवसाय की सामर्थ्य

वृद्धाने के लिए निरंतर उन्नति करने की आवश्यकता है। इसकी सामर्थ्य वृद्धि के लिए पुस्तकालय-विज्ञान का डिग्री-कोर्स आवश्यक है। पर्याप्त मात्रा में योग्य एवं नव-युवक नागरिकों को इस विषय में अनुसंधान करने के लिए प्रस्तुत करना है। लोगों को प्रोत्साहन भी देना आवश्यक है, जैसे पुस्तकालय-विज्ञान में डाक्टरेट की डिग्री प्रदान करने वाले संस्थान की स्थापना करना तथा इस संस्थान में अन्य विषयों के ही समान इस नये विषय में अनुसंधान की सुविधाएं प्रदान करना।

८५. ऐहिक मितव्ययिता

समाज की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न विषयों में डिग्री कोर्स की शिक्षा दी जाती है। इसके साथ प्रत्येक मनुष्य की शिक्षण विशेषताओं का भी ध्यान रखा जाता है। किसी राष्ट्र के स्वस्थ एवं साधारण नागरिकों में शिक्षा सम्बन्धी विशेषताओं के प्रसार के अनुपात और राष्ट्र की विभिन्न आवश्यकताओं के बीच साम्य का होना ही ऐहिक मितव्ययिता है। किसी भी राष्ट्र में बुराईयां तभी आती हैं जब वह अपने नागरिकों को उचित मार्ग पर चलाने में असफल हो जाता है। राष्ट्र की इस असफलता के बहुत से बाह्य एवं आन्तरिक कारणों के अतिरिक्त नागरिकों की विभिन्न मौलिक योग्यताओं को शिक्षा पद्धति द्वारा चमकाने की सुविधाओं का अभाव भी है। राष्ट्रीय मितव्ययिता एवं कार्यक्षमता की मांग है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार शक्तिशाली पुस्तकालयों द्वारा अपने को सुदृढ़ बनाने की चेष्टा करे।

८५१. कार्य विभाजन

गत शताब्दी में अनुसंधान कर्तियों ने ज्ञान क्षेत्र का बड़ा ही सूक्ष्म विभाजन कर दिया है। यहाँ तक कि परमाणु के सहस्र भाग हो गये हैं। इसमें कोई संशय नहीं कि इससे सुन्दर परिणाम निकला है। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि अब ज्ञान भी बदला लेने की सोचने लगा है। यह मानव को अज्ञात एवं सूक्ष्म विभागों के लिए ललकारता है तथा इन विभागों को नाना प्रकार से एकीकृत एवं पृथक करने को कहता है। यह अवस्था बहुत समय से अनुभव की जा रही है। उदाहरणार्थ, ऐसा कैसे हो सकता है कि अन्य छोटे-छोटे खेतों से घिरे हुए एक छोटे से खेत की देख-भाल पृथक रूप से हो सके। ये कारण एक दूसरे ही ढंग से कार्य-विभाजन की प्रेरणा देते हैं। फलस्वरूप किसी भी राष्ट्र अथवा विश्व में अनुसंधान कार्य का संगठन अधिक कार्यक्षम रूप में हो सकेगा। आज रिक्त स्थान की पूर्ति की आवश्यकता

८५३]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

हैं। ये पूर्ति करने वाले व्यक्ति एक विशेष प्रकार के विशिष्ट जानकार होने चाहिए। इनमें एक ही बिन्दु पर अन्वेषण करने की अपेक्षा अधिक विस्तृत क्षेत्र के ज्ञान की आवश्यकता है। ये विशिष्ट जानकार, अन्वेषकों को प्रत्येक सम्बन्धित विषय पर पहले से तैयार तथा संयोजित ज्ञान का परिचय देकर सहायता करेंगे। पुस्तकालय के कार्यकर्ताओं को किसी भी तथ्य की साधना में साभीदार बनना चाहिए। यह अनुमान लगाना कठिन है कि एक मनुष्य जो पुस्तकालय-विज्ञान में अपना सारा जीवन व्यतीत करता है वह कितनी शीघ्रता से प्रासंगिक सूचनाओं को प्रकाश में ला सकता है, अन्यथा ये सूचनायें प्रकाश में आने ही न पायें। उपरोक्त विचार के आधार पर अब कार्य-विभाजन का समय आ गया है। इस विभाजन को कार्य रूप में लाने के लिए पुस्तकालय-विज्ञान को भी दूसरे विषयों के समकक्ष रखना होगा। अन्य विषयों के समान इसमें भी डिग्री कोर्स की शिक्षा दी जाए। परिणाम-स्वरूप राष्ट्र तथा विश्व के बौद्धिक कार्यों में मितव्ययिता होगी।

८५२. अनुसंधान की उपाधियां

यें सारी व्याख्याएं पुस्तकालय-विज्ञान में केवल प्राथमिक डिग्री कोर्स की आवश्यकता को सिद्ध करने के लिए ही नहीं हैं किन्तु इनसे डिग्री कोर्स की आवश्यकता भी स्पष्ट हो जाती है। ये बातें पुस्तकालय-विज्ञान की मशाल एवं उसके प्रकाश के लिए आवश्यक हैं जो अब भी सम्भव हैं। मेरी अपनी पुस्तकें जो वर्गीकरण, सूचीकरण तथा पुस्तक सूची पर हैं, विभिन्न क्षेत्र प्रदान करती हैं। इनमें अनुसन्धान की आवश्यकता है, तथा यह उपाधि के लिए अर्थात् अनुसन्धान के अभिलाषियों के लिए, परीक्षण का क्षेत्र प्रदान करेंगी। उदाहरणार्थ, "लाइब्रेरी क्वार्टरली" (जो अमरीका के शिकागो राज्य से निकलता है) मेरी पुस्तक, प्रोलिगोमिना टु लाइब्रेरी क्लासिफिकेशन (मद्रास लाइब्रेरी एसोसि. पब्लि. सिरिज, ६), के संदर्भ में यह लिखता है कि, "इन प्रनियमों के पुनर्निर्माण एवं अध्ययन द्वारा पोस्टग्रेजुएट-कोर्स में डिग्री प्राप्त की जा सकती है।" इसीलिए हमारे विश्वविद्यालयों में ऐसे पुस्तकालय-विज्ञान विभाग की आवश्यकता है, जिसमें प्राचार्य हो, स्वयं अनुसंधान करे, तथा डाक्टरेंट की डिग्री प्राप्त कराने के लिए विद्यार्थियों की सहायता करे।

८५३. राहगीर के लिए इसका मूल्य

विश्वविद्यालयों द्वारा पुस्तकालय-विज्ञान की गहरी खोज नाना प्रकार की पुस्तकालय पद्धतियों में सुधार लाएगी। इससे देश के पुस्तकालयों का कार्य पूर्ण

पुस्तकालय-विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र

[८६]

रूप से चलता रहेगा। यह अनुसंधान राष्ट्र के जीवन स्तर को ऊँचा करने में अपना उपयुक्त योग दे सकेगा। पुस्तकालय-शिक्षा की निम्न श्रेणियों को पर्याप्त स्तर पर लाने के लिए भी इस प्रकार के अनुसंधान के वातावरण की आवश्यकता है। इससे पुस्तकालय व्यवसाय में लगने एक लाख राहगीरों का स्तर भी धीरे-धीरे उन्नत होगा और पुस्तकालयों का उद्धार भी होगा।

८५४. राष्ट्र के लिए इसका मूल्य

राष्ट्रीय केंद्रीय पुस्तकालय पद्धति जब निम्नतम वर्ग की सेवा करने योग्य हो जायगी तब इस व्यवसाय में उच्च मान स्तरों की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगेंगी। इसकी आवश्यकता अभी से अनुभव की जा रही है, क्योंकि आज जो लोग पुस्तकालय का उपयोग करते हैं, वे समाज के उच्चतम वर्ग का चौथा भाग भी नहीं अपितु दस प्रतिशत से भी कम केवल इने-गिने लोग ही हैं। ये लोग सदैव अपनी सहायता स्वयं कर लेते हैं। किन्तु इस पुस्तक में विचार की गई राष्ट्रीय पुस्तकालय पद्धति निम्नतम वर्ग के दस प्रतिशत भाग की भी सेवा करने के लिए उपयुक्त है। जब तक लोगों की व्यक्तिगत रूप अथवा विशिष्ट उपायों द्वारा सहायता न की जायगी तब तक इनमें से बहुत से लोग पुस्तकालयों से लाभ उठाने में असफल रहेंगे। राष्ट्रीय पुस्तकालय पद्धति की योजना में पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसंधान को भी सम्मिलित करना, तथा इस विषय में सुविधाएं देना केवल व्यावसायिक तृप्ति नहीं वरन् यह एक त्रुटिहीन आवश्यकता भी है।

८६. पुस्तकालय-विज्ञान की स्थिति

संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस विषय की महत्ता को तथा इससे होने वाले व्यक्तिगत एवं सामाजिक लाभ को समझ लिया है। इसीलिए वहां इस विज्ञान में डिग्री तथा डाक्टरेट कोर्स की स्थापना हो गई है। देश के धन का एक भाग इसकी उन्नति के लिए प्रस्तुत किया जाता है और देश के नवयुवक शिक्षित होते हैं। इस प्रकार पुस्तकालय-विज्ञान की साधना का क्षेत्र तीनों निम्नलिखित कारणों द्वारा मान लिया गया है। उदाहरणार्थ :

- १) पुस्तकालय विज्ञान की विषयवस्तु के आकर्षण के कारण योग्य व्यक्तियों का जिज्ञासावश अनुसरण करना;

८६]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

- २) ऐसे व्यक्तियों का प्रगट होना जिनमें प्रेम अथवा दैवी जिज्ञासा विद्यमान हो, और उन्हें इस विषय की गहराई में जाकर प्रमोद की प्राप्ति हो; तथा
- ३) समाज का उन लोगों के पोषण में सहयोग देना जो सामाजिक विकास के लिए पुस्तकालय-विज्ञान का अनुसरण कर रहे हों।

व्याख्यान ९

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता

(यह व्याख्यान पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण पर बल देता है। स्वतंत्रता के सदुपयोग के लिए पुस्तकालय जन-शक्ति की आवश्यकता का निरूपण करता है। राष्ट्रव्यापी पुस्तकालय आन्दोलन की मांग करता है और इसी को राष्ट्रीय चेतना का आधार सिद्ध करता है।)

९१. तीन मार्ग

मैंने पिछले व्याख्यान में बताया था कि पुस्तकालय-विज्ञान में विश्वविद्यालयों के स्तर पर कार्य करने के बहुत से अवसर मिल सकते हैं; जैसे स्नातकोत्तर डिग्री कोर्स के द्वारा तथा आजीवन अनुसंधान कार्य द्वारा, जिससे डाक्टरेट की उपाधि मिलती है। यह कार्य कोई भी कर सकता है। मैं इस व्याख्यान में यह बताना चाहूंगा कि आज हमारे देश में इस विषय पर कार्य करने की कितनी आवश्यकता है। इसमें सभी स्तरों पर कार्य करने के तीन मार्ग विचार में आते हैं—स्नातक होने के पूर्व, स्नातक होने के बाद, तथा अनुसंधान का मार्ग। मुझे यह इसलिए बताना है कि कुछ लोग यह समझते हैं कि आज भारतवर्ष में जो पुस्तकालय-विज्ञान की बात करते हैं वे भ्रम में हैं। वास्तव में ये लोग अपने विचारों को हमारे समाज के केवल दसवें भाग पर स्थिर रखे हुए हैं, जिनको ऊंची विद्वत्ता की उपाधि मिली हुई है, जिनको दो सौ वर्षों के विदेशी राज्य में सामान्य से ऊंचे व्यक्तियों से मिलने-जुलने का अवसर मिलता है, और जिन्हें शेष नौ भागों में पैदा हुए व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त हुआ है।

९११. महात्मा गांधी की सेवा

दो सौ वर्षों से भारत में हमारे समाज के सम्मानित उस दसवें भाग की बड़ी देखरेख की गई है, जिसे रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा दूसरों को प्रोत्साहित करने

का भार वहन करना चाहिए था। ये लोग इस भार से ऐसे मुक्त कर दिये गए कि ये अपने उचित कर्तव्य को ही भुला बैठे—जैसे भारत को संसार के अन्य देशों की श्रेणी में रखना। इन लोगों ने कार्यक्षमता को खो दिया, उन्नतिशील कार्यों को छोड़ दिया तथा दूसरों की चिन्ता करनी भी त्याग दी। अपनी क्षमता बढ़ाने तथा उन्नतिशील कार्य करने के लिए पहले इन्हें राष्ट्र के शेष नागरिकों के हितों का विचार करना सीखना चाहिए। महात्मा गांधी में सर्वप्रथम यह चेतना जागृत हुई। उनकी यह चेतना इतनी तीव्र थी कि उन्होंने अपने ही शरीर को समाज के गिरते हुए नौ भागों का ऐसा प्रतीक बना लिया जो सदा उन भागों की याद दिलाता था—विशेषतः उस दसवें भाग की जो समाज के नीचे से नीची तह में डूबा हुआ है। कोपीन से लिपटा उनका आधा नंगा शरीर, भीड़ में तीसरे दर्जे की उनकी रेलयात्रा तथा हरिजनों में उनका आवास, ये ऐसी बातें नहीं थीं जिनको विषम समझा जाय, किन्तु ये समाज के उस दसवें भाग को सुधारने के उनके व्यवहार कौशल का एक अंश मात्र था। यह वही समाज था जो सम्मानित था किन्तु विकृत हो गया था। उनके सांकेतिक जीवनक्रम ने उपेक्षित जन-समुदाय के स्तर को उठाकर उसे एक शक्ति के रूप में परिणित कर दिया। राष्ट्र की शक्ति में इस योगदान से उन्होंने राष्ट्र की श्रृंखलाओं को वास्तविक रूप में भंग कर दिया। श्रृंखलाओं के टूटते ही वे लोग भी लुप्त हो गए जो समाज के केवल दसवें सम्मानित भाग की देख-रेख किया करते थे। यह भाग प्रलोभनों के कारण चेतना भंग होने पर व्यर्थ हो चला था। अपने कार्य का प्रारंभ अब बहुत आवश्यक हो गया है; रोट्टी, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा एक और अनक का स्तर ऊंचा करने का उत्तरदायित्व अब हमारा हो गया है। इसके लिए जीवन के सभी क्षेत्रों में विचारपूर्वक ठोस कार्य करने की आवश्यकता है। हमें स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही यह ज्ञात हुआ कि स्वतंत्रता केवल हमारा माध्यम है, न कि हमारा अंतिम ध्येय। हमने यह भी देखा कि स्वतंत्रता हमारे ऊपर एक भारी उत्तरदायित्व बनकर आई है।

११२. गांधी जी के बलिदान का संदेश

स्वतंत्रता प्राप्ति का पहला परिणाम बड़ा ही दुःखद था। हमारे राष्ट्र का १० में सँ १ भाग संसार की दौड़ में २०० वर्ष पीछे रह गया था। लोगों में मानसिक विकास न होकर केवल उत्कंठा ही शेष रह गई थी। उत्कंठा एक तीव्र भावना है। केवल अभ्यास एवं ज्ञान के द्वारा ही हितकर अथवा अहितकर उत्कंठा का अन्तर जाना जा सकता है। भारत को ज्ञान के अभाव में अपना जन्मसिद्ध अधिकार लेने में दौ

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता [११३]

शताब्दियों तक उत्कंठा पर ही निर्भर रहना पड़ा। भारत को आज का रूप देने में कुछ वर्षों से जो शक्ति लगी हुई थी उसका स्रोत अच्छी भावनाओं से है, वह है— हमारी जाति के गौरव की असीम शक्ति तथा राष्ट्रायकों का सम्मान तथा विश्वास। स्वतंत्रता प्राप्ति के सार्वजनिक ध्येय के कारण जनता की उत्कंठा उच्च भावनाओं की ओर अभिमुख रही, किन्तु जैसे ही ध्येय प्राप्त हुआ, हमारी उत्कंठा अनुचित मार्ग पर चली गई, और जनता की भावना अधोमुखी हो गई। ऐसी दशा में महात्मा गांधी के उस व्यक्तित्व ने, जो अपने शरीर को समाज के गिरते हुए वर्ग का प्रतीक बनाकर कीर्ति प्राप्त कर चुका था, इस धक्के को रोकने में सहायता दी और जनता की भावना ठीक मार्ग पर आ चली।

किन्तु दुःख है कि वह धक्का रोकने वाला भी इस बीच उसी अहितकर उत्कंठा का लक्ष्य बन गया जिसे हटाने में वह व्यस्त था। इस घटना से स्पष्ट होता है कि समाज के चिरस्थायी और क्रमिक विकास के लिए उत्कंठा मात्र पर निर्भर करना कितना भयानक हो सकता है—वह उत्कंठा जिस पर उन्नत एवं परिष्कृत बुद्धि का नियंत्रण भी न हो सके और न ही भावना पर ऐसी बुद्धि का कोई प्रभाव पड़ सके। महात्मा गांधी का शरीर खुला रखना और उनकी हत्या होना, जो कि उत्कंठा-वश हुआ, यह सिद्ध करता है कि स्वतंत्र-भारत का निर्माण मात्र भावना-शक्ति पर नहीं बरन् मानसिक-शक्ति पर होना चाहिये।

क्षोभ-चीकित्सा का यह रूप उतना ही दुःखद है जितना सीता का वनवास अथवा क्राइस्ट का मृत्यु के लिए समर्पण। इस घटना से कुंठित राष्ट्रीय भावनाएं धुल जानी चाहियें और यह चेष्टा होनी चाहिए कि आवेगपूर्ण उत्कंठा-शक्ति का स्थान आवेगहीन किन्तु गतिमान एवं चिरस्थायी मानसिक-शक्ति के स्थान से बदल दिया जाय। यही उनके बलिदान का संदेश है।

११३. मानसिक विकास के साधन

सामूहिक मनोविज्ञान के स्तर पर भावना-शक्ति को उत्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित करने वाले विकासशील एवं बलशाली शब्दों की आवश्यकता है न कि उदासीन एवं कोमल शब्दों की। ऐसे व्यक्तियों को प्रकाश में लाना चाहिये जिनकी वाणी में बल हो, नेत्रों में प्रकाश हो और उनकी विचारधारा समकालीन हो। ये ही समाज में क्षमता उत्पन्न करेंगे। संक्षेप में, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के सीधे सम्पर्क द्वारा प्राप्त, प्रभाव होना चाहिये। किन्तु आज इस प्रकार की शुष्क ज्ञान-शक्ति के प्रसार के लिए शिक्षकों की इतनी आवश्यकता है कि यह कदापि पूर्ण नहीं हो सकती।

इधर कोई भी प्रजातन्त्र समुदाय अपने सदस्यों के प्रधान स्वच पर विशेष रूप से ध्यान नहीं दे रहा है। इसीलिए आज के प्रजातन्त्र में कुशल व्यक्तियों का मिलना दुर्लभ हो गया है। आध्यात्म पक्ष में केवल एक बार सर्वप्रधान स्वच खोल देने के बाद सदैव मनवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु बुद्धि पक्ष में ऐसा नहीं है। इस स्वच को तो बार-बार खोलना पड़ता है। मैंने पिछले व्याख्यान में ही बताया था कि बोले गए शब्द इतने क्षणिक होते हैं कि इनके द्वारा हस्तकौशल, औद्योगिक गतिविधियों तथा कलाकौशल में निपुणता प्राप्त करना, राजनीतिक, आर्थिक तथा शिक्षा पद्धतियों का सूत्रपात करना एवं उन्हें कार्यान्वित करना, अथवा ज्ञान की अनजानी गहराइयों में डुबकी लगाना कभी सम्भव नहीं। इन शब्दों को ध्वनि-चलीचित्रों अथवा पुस्तकों का रूप मिलना चाहिए जिससे आंख व कान इन्हें बार-बार देख और सुन सकें। मानवता के द्वारा मस्तिष्क की इस मांग की पूर्ति के लिए अब तक किसी अन्य साधन की खोज नहीं की जा सकी। अतः पुस्तकों का ही उपयोग किया जाता है। भारत की उन्नति का प्रथम एवं अग्रिम पग ज्ञान की वर्तमान अवस्थाओं की समस्त पुस्तकों का पर्याप्त उत्पादन तथा पुस्तकालयों द्वारा उनका वितरण ही होना चाहिए। इसी से स्वतंत्रता का उपयोग सार्थक सिद्ध होगा। यह एक गहरी चिन्ता का विषय है कि इस निर्णायक स्थिति की तीनों योजनाओं—नेहरू योजना, बम्बई योजना तथा सर्व-साधारण योजना—पुस्तकालय सेवा तथा शिक्षा को कोई महत्व नहीं प्रदान कर सकी; यहां तक कि सार्जेंट योजना जो शिक्षा के ही निमित्त बनाई गई थी, इस बात को अपनाने में चूक गई और इसमें प्रौढ़ों की स्वशिक्षा के संगठन की ओर ही ध्यान दिया गया। मेरी अपनी पुस्तकें, पोस्ट वार रिकन्स्ट्रक्शन आफ लाइब्रेरीज इन इन्डिया (१९४४), लाइब्रेरी डेवलपमेंट प्लान (१९४६) तथा लाइब्रेरी डेवलपमेंट प्लान विद ए ड्राफ्ट लाइब्रेरी बिल (१९४७), इन योजनाओं की पूर्ति का एक छोटा सा प्रयास मात्र हैं। मेरी योजनाओं में उन नाना प्रकार के पुस्तकालयों के संगठन का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है जिनके पुस्तकालय-जाल की स्थापना का अनुरोध मैंने तीसरे व्याख्यान में किया था। बिना योग्य पुस्तकाध्यक्षों के पुस्तकालयों के इस जाल का यथेष्ट एवं लाभदायक प्रतिपादन कैसे संभव हो सकता है? बिना सरकार की इच्छा के और बिना विश्वविद्यालयों द्वारा उपयुक्त दीक्षा के ऐसे पुस्तकाध्यक्ष कैसे बनाए जा सकते हैं? इस प्रकार की शिक्षण-कला कैसे अपनायी जा सकती है? जब तक नतृत्व करने वाले व्यक्ति पुस्तकालय-विज्ञान में अनुसंधान कराने के लिए ऐसे प्रवीण छात्र नहीं उत्पन्न कर पाते कि जिनकी रुचि अनुसंधान में हो तब तक यह कार्य सम्भव नहीं। यदि भारत अपनी

स्वतंत्रता प्राप्ति के द्वारा सर्वसाधारण का सुधार चाहता है तो पुस्तकालय-विज्ञान का अनुसरण परमावश्यक है। इसमें विलम्ब नहीं किया जा सकता। यह कहना कि—“धीरे-धीरे शीघ्रता करो”—सर्वथा अनुचित है। कोई भी ऐसा सुभाव जो बाधा अथवा भ्रम उत्पन्न करे, यदि दोषी नहीं तो शोचनीय अवश्य है।

१२. पिछली कमी की पूर्ति के उपाय

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की प्राथमिकता एक दूसरे दृष्टिकोण से भी आंकी जा सकती है। साधारण शब्दों में चालीस करोड़ लोगों का यह ऐसा राष्ट्र है जिसके सामने कोई अन्य राष्ट्र अपनी बपौती पर गर्व नहीं कर सकता। कुछ शताब्दियों पूर्व यह भ्रान्त अवस्था को प्राप्त हो गया था। कुछ समय के लिए यह अचंतावस्था में पड़ रहा और दूसरों का इस पर अधिकार हो गया। इससे इसके ज्ञान-तन्त्र और भी शिथिल पड़ गए। इन शताब्दियों में अन्य राष्ट्रों ने ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति कर ली और इसे बहुत पीछे छोड़ दिया। वैज्ञानिक उन्नति ने विश्व के विस्तार को संकुचित कर दिया और आपस में अन्य राष्ट्रों के आर्थिक सम्बन्ध बढ़ गए। अब यह राष्ट्र भी अपनी अचंतावस्था को त्याग चुका है। किन्तु जब यह अपनी आंखें खोलता है और अपने चारों ओर दृष्टिपात करता है तो चकित रह जाता है।

यह कहता है कि विश्व परिवर्तित हो गया है। सब मुझसे बहुत आगे बढ़ गए हैं। यदि मैं शीघ्रता से उन सबका साथ नहीं पकड़ लेता तो मुझे इनके साथ खिंचने का दुःख असह्य हो उठेगा। यदि मैं शीघ्र ही उनके स्तर पर नहीं पहुँचता हूँ तो शायद इस खिंचाव में मेरा विनाश ही हो जाय। वे मुझे निर्दयतापूर्वक खींचेंगे क्योंकि अब वे भी अनुभव करने लगे हैं कि विश्व को राष्ट्रों के दो गुटों में बांटना हानिकारक है। एक गुट में कुछ अग्रगामी एवं पराक्रमी राष्ट्र होते हैं जो अन्य राष्ट्रों का नेतृत्व करते हैं और दूसरे में वे सब राष्ट्र होते हैं जो पराक्रमी राष्ट्रों के नेतृत्व में आ जाते हैं। यह बात दोनों ही गुटों के लिए हानिकर है। यही कारण है कि मुझे अपनी सारी शक्ति लगा कर दौड़ना चाहिये तथा ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में उन सबके साथ बराबर पहुँचना चाहिए और अपने नागरिकों के ज्ञान प्राप्ति के साधन तथा ज्ञान क्षेत्र की सीमा को विस्तृत करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। सबको मन, बुद्धि एवं आत्मा की उन्नति के समान अवसर दे सकूँ। ईश्वर ही जाने कि यह सब इतनी शीघ्रता से कैसे सम्भव होगा? बुद्धि से ही प्रत्येक की सर्वांगीण उन्नति का अविर्भाव होता है, अतएव सर्वप्रथम एक ऐसी संस्था की

स्थापना आवश्यक है जो सबके लिए स्वशिक्षा के साधन सदैव उपस्थित करती रहे। इसका अर्थ है, पुस्तकालय आन्दोलन का समारम्भ तथा पुस्तकालय-विज्ञान की राष्ट्रव्यापी उन्नति। इसकी आवश्यकता अत्यधिक है। अतएव अब रुक रुक कर और विश्राम लेकर उन्नति करने का समय नहीं रहा। अब मैं शंका को यह अवसर नहीं दूंगा कि वह मुझसे यह कहे कि पुस्तकालय-विज्ञान अभी बाहर ही प्रतीक्षा करे तथा अपनी योग्यता एवं प्राथमिकता के साक्ष प्रस्तुत करे। यह विज्ञान मुझसे उन्नत देशों में पहले से ही प्रामाणिक माना जाता है। यही कारण है कि वे देश शीघ्रतापूर्वक विश्वव्यापी उन्नति कर सके हैं। इससे कोई लाभ नहीं कि पुस्तकालय-विज्ञान को मान्यता देने की सूचना दी जाय, अथवा मेरे विश्वविद्यालयों में कुछ वर्ष बाद धीरे-धीरे प्रवेश कराया जाय। मुझे तत्काल ही सम्पूर्ण रूप से प्रवेश पाने की आज्ञा मिलनी चाहिए। इसमें सम्पूर्ण उपाधियों की शिक्षा मिलनी चाहिए, जैसे इस व्यवसाय की सबसे कम श्रेणी का वैभासिक सर्टिफिकेट कोर्स, उन्नत कार्यकर्त्ताओं के लिए डिप्लोमा कोर्स, इससे भी अधिक उन्नत कार्यकर्त्ताओं के लिए डिग्री कोर्स तथा इस विषय के लिए समस्त जीवन अर्पण करने वाले व्यक्तियों के लिए चेंबर की स्थापना, इत्यादि। ये सब सुविधाएं एक ही साथ प्रदान की जानी चाहिए, न कि एक के बाद एक। मेरे राज्य कार्य के कुशल अधिकारीगण, मेरे विश्वविद्यालय तथा मेरे जनगण, आप सबसे मेरी प्रार्थना है कि आप सब मिल कर यह चेष्टा करें। पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण का तत्काल ही श्रीगणेश करें। इसकी सहायता से आप सब कहीं पर आगे छलांग लगाइये। आप सब उन देशों से आगे पहुंच जाइये जो पहले से ही सतत् उन्नति कर रहे हैं। अब पुस्तकालय कार्यकर्त्ता, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक, तीनों के दृष्टिकोणों से व्याख्या की जा चुकी है किन्तु राष्ट्र की जनसंख्या का दसवां भाग जो समृद्ध है वह मेरे विचारों से शीघ्र ही सहमत नहीं हो सकता। इन लोगों ने पुस्तकालय-विज्ञान की सहायता के बिना ही अपने आपको समृद्ध पाया है। ये लोग किसी भी पुस्तकालय सेवा से, यहां तक कि अवैतनिक ढंग से संगठित पुस्तकालय सेवा से वंचित रहे हैं। इन लोगों की दृष्टि में पुस्तकालय-विज्ञान एक ऐसा तेजपुंज है जिसका आनन्द संसार में एक या दो व्यक्ति ही उठा सकते हैं। अतः हम भारतीयों के लिए वह अधिक लाभ की वस्तु नहीं। इनका तर्क है "हमारा मुख्य कर्तव्य अपनी पूर्ण-शक्ति लगाकर, किसी भी रूप में अग्रसर होना है। इसके लिए हमें साहस, आकांक्षा एवं विश्वास की आवश्यकता है। अभी तो हमें पूर्व-प्रतिष्ठित विज्ञानों के अनुसरण में धन लगाना है। ऐसी अवस्था में नवीन पुस्तकालयों की स्थापना करके पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण में धन का अपव्यय कैसे करें।" यद्यपि ये लोग इतने अधिक

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता [६३११

असहमत हैं तथापि यह मानने को तैयार हैं कि सर्वसाधारण की इच्छानुकूल देश में पुस्तकालय पद्धति की आवश्यकता है। किन्तु सन्देह यह है कि जन साधारण तथा अधिकारीगण समझते हैं कि पुस्तकालय सेवा किसे कहते हैं और पुस्तकालय से क्या आशा की जा सकती है? यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि पुस्तकालय व्यवसाय में विशेष शिक्षित पुरुषों की आवश्यकता है। इन्हीं के द्वारा पुस्तकालय-विज्ञान का अनुसरण होगा। इन्हीं के द्वारा पुस्तकालय सेवा का संगठन होगा तथा उसके उद्देश्यों की पूर्ति भी होगी। विगत कुछ शताब्दियों में अन्य देशों के आगे बढ़ने के कारण जो अन्तर पड़ गया है उसे यदि भारत शीघ्र ही हटा देना चाहता है तो उसे राष्ट्रव्यापी पुस्तकालय सेवा की स्थापना करनी चाहिए। यही कारण है कि उन्नति की योजनाओं में पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण को सर्वप्रथम स्थान दिया जाना चाहिये। मेरी मनोकामना है कि उन्नति के प्रत्येक कार्यक्रम (जैसे, शैक्षणिक, राजनीतिक, वैधानिक, आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक तथा सामाजिक) को कार्यक्षम एवं प्रचुर पुस्तकालय सेवा से परिपुष्ट बनाया जाय। इसके अभाव में कहीं ये साहसिक कार्य मन्द न पड़ जाय। ऐसी पुस्तकालय सेवा के लिए पुस्तकालय-विज्ञान का अनुसरण आरंभ से ही होना चाहिए।

९३. आवश्यक पुस्तकालय जन-शक्ति की उत्पत्ति

एक अन्य रूप से भी सभी स्तरों पर पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण का परीक्षण किया जा सकता है। यह रूप देश की आवश्यक पुस्तकालय जन-शक्ति को निश्चित करके जाना जा सकता है। आइए! हम सर्वप्रथम वर्तमान् औद्योगिक तथा राजनीतिक संगठनों में पुस्तकालय जन-शक्ति की आवश्यकता पर विचार करें। आज की शिक्षा संस्थाओं में प्राण फूँकने के लिए, सार्वजनिक हित के लिए तथा अनपढ़ प्राँदों को प्रेरणा देने के लिए, उनकी ज्ञान वृद्धि तथा मनोरंजन के लिए तथा उपयुक्त पाठ्य सामग्री प्रदान करने के लिए, आवश्यक पुस्तकालय जन-शक्ति पर भी विचार करना होगा। न्यूनतम आवश्यकता के लिए, मेरा विचार है कि, पुस्तकालयों को प्रतिदिन छः घंटे कार्य करना चाहिए और उनके कर्मचारियों को साप्ताहिक और सार्वजनिक छुट्टियाँ भी मिलनी चाहिए।

९३११. औद्योगिक पुस्तकालय

पहले हम मुख्य उद्योगों के बारे में ही सोचें। प्रत्येक उद्योग से सम्बन्धित उसका एक पुस्तकालय होना चाहिये। इस पुस्तकालय को चाहिये कि अपने कार्यकर्ताओं को

१३११]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

नवीन वृत्तांतों से अवगत कराता रहे चाहे वे वृत्तांत पुस्तकों से प्राप्त हों अथवा पत्रिकाओं से, छोटी पत्रिकाओं से प्राप्त हों अथवा पत्रकों से। आजकल बहुत से उद्योग पुस्तकालय सेवा के अभाव में ही चल रहे हैं। यों उनके कार्य का ढंग ऐसा है जो विदेशों के ढंग पर आधारित है। उद्योगों में अन्वेषण तथा उन्नति की प्रवृत्ति नहीं मिलती। स्वतंत्र भारत में न तो यह ढंग प्रशंसनीय है और न ही फल-दायक है।

उत्पादन के ढंग में सुधार लाने के लिए यह आवश्यक है कि कार्यकर्ताओं के मस्तिष्क को विचार-शक्ति से प्रेरित किया जाय। और यह उचित पुस्तकालय सेवा से ही सम्भव है। हां! इस सेवा से पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्तों की पूर्ति अवश्य हो जानी चाहिये।

पहले मैं लांहे और इस्पात के उद्योग को ही ले लेता हूँ। मान लिया जाय कि देश में २० बड़े-बड़े उत्पादन-केंद्र हैं। तो इन उद्योगों में बीस पुस्तकालयों की आवश्यकता होगी। इन पुस्तकालयों में लगभग १२० कर्मचारी ऐसे होंगे जो पुस्तकालय-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर चुके हों। इसी प्रकार यदि १६६ चीनी उद्योग मिलें हैं तो १६६ पुस्तकालय होंगे और राष्ट्रीय चीनी पुस्तकालय इन सबकी आवश्यकता पूरी करेगा। इनमें लगभग ३५५ पुस्तकालय-विज्ञान में शिक्षा प्राप्त कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार ५३ कागज मिलों में ६२ कर्मचारी, ५५३ रूई तथा कपड़ा मिलों में १३२५ कर्मचारी होंगे। ये उद्योग सदैव बढ़ते रहते हैं। कपड़ा उद्योग के लिए उच्चस्तर पर राष्ट्रीय रूई पुस्तकालय का होना आवश्यक है, क्योंकि इसके होने से व्यय कम होगा। इस पुस्तकालय में भी लगभग १००० कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। ११२ पटसन मिलों के लिए एक राष्ट्रीय पटसन पुस्तकालय उपयुक्त होगा और इसमें भी कर्मचारियों की संख्या लगभग २६५ होगी। ६२ ऊन मिलों में १२५ और ५० सीमेंट मिलों में कम से कम ५० ही कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। हां! फिल्म-उद्योग में पुस्तकालय से केवल तकनीकी कार्य में ही नहीं बरन् सुन्दर प्रसंगों के चुनाव में भी सहायता मिलेगी।

मद्रास में एक बड़े फिल्म-उद्योग के कर्मचारी स्वच्छंदरूप से मद्रास विश्वविद्यालय पुस्तकालय में आया करते थे, यद्यपि वहां की सामग्री और संगठन उनकी आवश्यकता के अनुरूप नहीं थे। इसके अतिरिक्त खान-उद्योग, जहाज-उद्योग, यन्त्र-उद्योग तथा अन्य छोटे-छोटे उद्योग हैं जिनमें अनुमानतः १०,५०० प्रशिक्षित-पुस्तकाध्यक्षों की आवश्यकता तो अवश्य ही होगी। ये कर्मचारी उद्योगों में लगे कार्यकर्ताओं में विचार-शक्ति का प्रसार करेंगे और भविष्य में हमें विदेशों पर निर्भर नहीं रहना होगा।

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता [१३१८

१३१२. समाचारपत्र पुस्तकालय

भारतवर्ष में लगभग ५०० समाचारपत्र तो अवश्य होंगे। इनमें सम्पादकों तथा संचालकों के रूप में कर्मचारियों की संख्या बहुत अधिक होगी। यदि ये कर्मचारी अपने व्यवसाय के पुस्तकालयों से सहयोग प्राप्त करें तो इनका कार्य अधिक उन्नत और विश्वस्त हो सकता है। समाचारपत्रों ने अपने संवाददाता विभाग की पर्याप्त उन्नति कर ली है, किन्तु इनका कार्य पत्रिका का प्रकाशन करना, संवाद देना, अथवा समाचारों का संपादन मात्र नहीं है। अब तक भारत में यह एक सरल कार्य था। क्योंकि विदेशी भार से मुक्त होने के लिए राजनैतिक आन्दोलन चलते रहे, और मानसिक बोध का स्थान कुण्ठाएँ लेती रहीं। इसी कारण समाचारपत्रों ने अपने पुस्तकालयों की ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया। स्वतंत्र भारत में पत्रिका प्रकाशन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक अधिक समाचारों के द्वारा इसकी पूर्ति नहीं होती। ऐसा देखा जाता है कि इसकी क्षतिपूर्ति विश्वविद्यालय के योग्य व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त करके की जा रही है। वास्तव में ये लोग तभी सुचारु रूप से कार्य कर सकते हैं जब ये अपने बराबर के योग्य व्यक्तियों की अपने कार्यालय पुस्तकालय में पायेंगे। इनसे सहयोग मिलने पर ये योग्य व्यक्ति समाचार तथा घटनाओं का संगठन शीघ्रता से और सुचारु रूप से कर सकते हैं। मेरा अनुमान है कि प्रमुख समाचारपत्रों को लगभग ३,००० प्रतिभाशाली पुस्तकाध्यक्षों की आवश्यकता होगी।

१३१५. वाणिज्य पुस्तकालय

इसमें वाणिज्य, बैंकिंग तथा यातायात-सेवा केन्द्र आते हैं। मुख्यरूप से हमारे यहां लगभग २४ बैंक, बीमा कम्पनियां जिनका अब राष्ट्रीयकरण हो गया है, रेलवे व्यवस्था जिसका राष्ट्रीयकरण हो गया है तथा अन्य यातायात-व्यवस्थाएँ हैं। इसके अतिरिक्त "चेम्बर आफ कामर्स" भी है। प्रत्येक श्रेणी के इन व्यापार-केन्द्रों का अपना एक स्वतंत्र पुस्तकालय प्रत्येक राज्य में होना चाहिये। भारत में इस प्रकार के पुस्तकालयों की संख्या लगभग ५०० हो जायेगी और इनके लिए ३,००० पुस्तकाध्यक्षों की आवश्यकता होगी।

१३१८. विभागीय पुस्तकालय

संसार में आजकल सरकार से अधिक जटिल, विस्तृत और वास्तविक अन्य कोई व्यवसाय नहीं है। कोई भी ज्ञान क्षेत्र ऐसा नहीं जो सरकारी विभाग से अछूता रहे

१३२]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

गया हो। अब इन विभागों को प्रशासन कार्य के साथ-साथ शोध कार्य की भी व्यवस्था करनी होगी। विभाग चाहें जैसा हो, उसमें एक अच्छे पुस्तकालय की आवश्यकता अवश्य होगी। कुछ विभागों को उच्च शिक्षा-संस्था के स्तर पर अपने पुस्तकालय बनाने होंगे जो तीव्र शोध कार्य करने की क्षमता रख सकें। इनमें से कुछ विभाग ये हो सकते हैं: कृषि विभाग, वन विभाग, यातायात विभाग, सिसचाई विभाग, वनस्पति विभाग, प्राणीशास्त्र विभाग, मानवशास्त्र विभाग, भाषा-विज्ञान विभाग, अभिलेख विभाग तथा आयुध सर्वेक्षण विभाग। देश के इन विभागीय पुस्तकालयों में अपने ढंग का एक विशिष्ट संग्रह होता है। इनमें से अधिकतर पुस्तकालयों को केन्द्रीय सरकार ही संभालती है। इनमें पुस्तकालय व्यवसाय के लगभग ४,००० कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। प्रशासन, यदि पुस्तकालय प्रशासन में सहयोग दे तो पुस्तकालयों की व्यवस्था केवल केन्द्र में ही नहीं वरन् राज्यों में भी करनी होगी। यदि शिक्षित पुस्तकाध्यक्ष पर्याप्त संख्या में नियुक्त किये जाय तो विभागीय पुस्तकालयों के धीमे विकास में प्रशासन का कार्य बड़ी कुशलता से चल सकता है। उन्हें केवल रिकार्ड क्लर्क समझ कर सामान्य श्रेणी में नहीं रखा जाना चाहिए वरन् ऊंची योग्यता का सामान्य अथवा विशेष तकनीकी कर्मचारी समझना चाहिए। ये कर्मचारी इस बात की क्षमता रखेंगे कि बराबरी के स्तर पर प्रशासन को कोई भी उपयोगी सूचना दे सकें। भारत की सभी राज्य सरकारों में कुल मिलाकर ५,००० पुस्तकाध्यक्षों की आवश्यकता होगी। इससे उनका संचालन कार्य सुचारु रूप से चल सकेगा। लगभग १,००० धारा सभा पुस्तकालयों के लिए चाहिए, तथा ५,००० न्यायपालिका पुस्तकालयों के लिए। इस प्रकार सरकारी विभागों के पुस्तकालयों में लगभग १५,००० पुस्तकाध्यक्षों की आवश्यकता होगी।

१३१९. व्यावसायिक पुस्तकालयों का सार

सरकारी विभागों में आधुनिक व्यापार तथा उद्योग को उचित व्यावसायिक पुस्तकालयों द्वारा उन्नत करने के लिए जितनी पुस्तकालय जन-शक्ति की आवश्यकता है, अब तक उसका हमने वर्णन किया। यह संख्या लगभग ३५,५०० बनती है।

१३२. शैक्षणिक पुस्तकालय

अब मैं आपको यह बताऊंगा कि शैक्षणिक पुस्तकालयों में कितनी पुस्तकालय जन-शक्ति की आवश्यकता है। ५० विश्वविद्यालयों को २,००० शिक्षित पुस्तका-

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता

१३२

ध्यक्षाँ की आवश्यकता होगी। इतनी संख्या से इन पुस्तकालयों की व्यवस्था उचित बनी रहेगी और शिक्षकवर्ग को भी अनुचित रूप से सामग्री खोजने के श्रम से मुक्ति मिलेगी। इन पुस्तकाध्यक्षाँ को चाहिए कि ये उस शिक्षक की जानकारी में ऐसी सूचनाओं को यथाशीघ्र लायें, जिनका सम्बन्ध शिक्षक के विषय क्षेत्र से हो। ये सूचनाएं पुस्तकालय में पुस्तकों अथवा पत्रिकाओं द्वारा समय-समय पर मिलती रहती हैं। इसी प्रकार कालेज पुस्तकाध्यक्षाँ की संख्या भी इतनी होनी चाहिए कि वे सभी विषयों के पठन-पाठन की प्रगति का ध्यान रखें और सामग्री को खोज निकालने की जिज्ञासा को बढ़ायें, बनाये रखें और पूरी करें। यह जानें कि क्या प्रकाशित हो चुका और उसका आनन्द उठायें। १,००० कालेजों में इस कार्य के लिये ५,००० शिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। यदि कालेज पुस्तकालय नाममात्र के हों और कार्य-क्षमता में असफल रहें तो समझिये कि स्कूल पुस्तकालयों का तो अस्तित्व है ही नहीं। अभी तक शायद ही हमारे किसी स्कूल ने अपने को इस योग्य बनाने की बात सोची हो कि छात्र पुस्तकों द्वारा अपने भावी जीवन में शिक्षा स्वतः प्राप्त कर सकें। स्कूलों की इस असफलता पर ध्यान नहीं दिया गया है। अतः हमारे स्कूलों और कालेजों के उत्पादन का एक बड़ा भाग प्रबन्ध कार्यों में ही लगता रहा तथा खपता रहा। इनमें से कुछ लोग अच्छे स्थानों पर थे किन्तु वे भी ठोस कार्य नहीं कर पाये। इसी कारण स्वशिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं रह गया था। अपने छात्रों में पुस्तकालय-स्वभाव उत्पन्न करने में हमारे स्कूल असफल ही रहे। इससे जो राष्ट्रीय समय तथा राष्ट्रीय शक्ति का हास हुआ है इसका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। इन बातों के होने से देश में अकर्म-ण्यता लाने वाली शक्तियों को बल मिलेगा। स्वतंत्र भारत के स्कूलों को एक दूसरे ही ढंग से काम करना है। उन्हें भारत के बालकों को इस योग्य बनाना है कि उनमें पुस्तकालय के उचित उपयोग का स्वभाव उन्नत हो और वे जीवन भर स्व-शिक्षा प्राप्त कर सकें, चाहे वे किसी भी कार्य क्षेत्र में क्यों न हों, उनका विषय कुछ भी क्यों न हो यथा—मूल-विज्ञान, इंजीनियरिंग, तकनीकी-शिक्षा, कृषि, पशु-पालन, औषधि-विज्ञान, अथवा निर्माण, अथवा कोई भी कला या शिल्प, ललित कला, पत्रिका-प्रकाशन कला, साहित्य, शिक्षा, लोक-सेवा अथवा विधि। बालकों को पुस्तकालयों के उपयोग के योग्य बनाने के लिए स्कूलों को अपने पुस्तकालयों का प्रतिपादन करना चाहिए और ऐसे शिक्षित पुस्तकाध्यक्षाँ को नियुक्त करना चाहिए जिनकी शिक्षा तथा स्तर स्कूल के अन्य शिक्षकों जैसा ही हो। ५०,००० सेकेंड्री स्कूलों में लगभग १,५०,००० पुस्तकाध्यक्षाँ की आवश्यकता होगी। शेष इनसे छोटे स्कूलों को तो अभ्यागत पुस्तकाध्यक्षाँ की देखरेख में छोड़ा जा

१३४]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

सकता है। लगभग ३,००,००० मिडिल तथा प्राइमरी स्कूलों की सहायता ३०,००० अभ्यागत पुस्तकाध्यक्षों के द्वारा की जायेगी। इस प्रकार शैक्षणिक पुस्तकालयों में १,५७,००० शिक्षित पुस्तकाध्यक्षों की आवश्यकता होगी।

१३३. सार्वजनिक पुस्तकालय

सर्वसाधारण की सेवा के लिए सम्भवतः हमारे देश में कोई भी अच्छी सार्वजनिक पुस्तकालय पद्धति नहीं है। फिर भी जो थोड़े से पुस्तकालय हैं उनमें शिक्षित पुस्तकाध्यक्ष ही होने चाहिए। इन पुस्तकालयों के शिक्षित कर्मचारियों की संख्या निर्धारित करना बहुत कठिन है। मेरा अनुमान है कि लगभग १,००० की आवश्यकता तो होगी ही।

१३४. कर्मचारियों की संख्या : जिनकी तुरन्त आवश्यकता है

इस प्रकार प्रशिक्षित कर्मचारियों की संख्या जिनकी सेवा व्यवसायों के लिए, सर्व-साधारण के लिए, स्कूल और कालेजों के पुनःस्थापन कार्य, सरकारी तथा औद्योगिक कार्य के लिए चाहिए, वह लगभग ५२,००० होगी। इनमें से लगभग ६,००० विश्व-विद्यालय की अपेक्षा कम शिक्षा प्राप्त अर्थात् ३ मास का सर्टिफिकेट किये हुए हों। लगभग ३०,००० स्नातक छः मास का पुस्तकालय सर्टिफिकेट कोर्स किये हुए हों और शेष १६,००० में से लगभग १५,४०० विश्वविद्यालय के स्नातक, पुस्तकालय-विज्ञान का डिप्लोमा किये हुए होने चाहिए। ये लोग पुस्तकालय व्यवसाय को आगे ले जायेंगे और पुस्तकालय आन्दोलन को चलायेंगे। इसके लिए सभी को पुस्तकालय-विज्ञान का स्नातक होना चाहिए और कुछ को अनुसंधान कार्य का आनन्द भी उठाना चाहिए और पुस्तकालय-विज्ञान में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करनी चाहिए।

यदि इतनी पुस्तकालय जन-शक्ति तुरन्त नहीं जुटाई गई तो भारत के स्कूल औपचारिक तथा निरर्थक रहेंगे, जैसे कि वे अब तक हैं। विश्वविद्यालय देश के मंधावी बालकों को कोई सुविधा नहीं दे सकेंगे। वे अपनी योग्यता के अनुसार ज्ञान क्षेत्र का विस्तार नहीं कर सकेंगे। जनसंख्या का एक बड़ा भाग, जिसको शिक्षित करने में जनता का ही पर्याप्त धन लगता है, फिर से अशिक्षित हो जायेगा। देश के वाणिज्य को नवीन सूचनाओं के अभाव में हानि उठानी पड़ेगी। इसके विपरीत विदेशों में तो सुसंगठित पुस्तकालय सेवा द्वारा लाभ उठाया जाता है।

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता [१३५

हमारे यहां का उद्योग उन देशों की बराबरी में नहीं ठहर सकता जो वैज्ञानिक रीतियों से अपने उद्योग को उन्नत कर रहे हैं। ये वैज्ञानिक रीतियां विशेष रूप से ही प्रतिपादित औद्योगिक पुस्तकालयों से प्राप्त हो सकती हैं। सरकारी विभाग भी काम को टालेंगे या रुकावट डालेंगे। इससे वे उन्नति नहीं कर सकेंगे और व्यर्थ सिद्ध होंगे और इसी कारण भारत को अन्य देशों के बीच उचित स्थान लेने में समय लगेगा।

किन्तु पुस्तकालय सेवा के शीघ्र प्रतिपादित होने में एक भय और है। वह यह कि लोग इसे ठीक प्रकार से समझते नहीं। वे सोचते हैं कि इसके होने या न होने से एकदम कोई विशेष हानि या लाभ नहीं होता। इसी कारण पुस्तकालय सेवा तथा पुस्तकालय-विज्ञान को अपना प्रमाण देने या उचित स्थान प्राप्त करने के लिए उन व्यक्तियों पर निर्भर करना होगा जो केवल प्रशासक ही नहीं वरन् दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी हैं।

१३५. कर्मचारियों की कुल संख्या : जिनकी भविष्य में आवश्यकता होगी

अब मैं आपको उन पुस्तकालय कर्मचारियों की कुल संख्या बताऊंगा जिनकी आवश्यकता भारत में आगे चलकर होगी। ऐसे ही कुछ आंकड़े मेरी पुस्तक लाइब्रेरी डेवलपमेंट प्लान फार इन्डिया में भी दिये गये हैं। अब मैंने इन आंकड़ों को सन् १९६१ की जनसंख्या के आधार पर रखा है; और ठीक आंकड़ों के लिए यह भी मान लिया है कि जनसंख्या २० वर्ष तक नहीं बढ़ेगी। तीस वर्ष एक ऐसी अवधि मानी है जिसमें पुस्तकालय आन्दोलन बढ़ेगा और अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकेगा। कई लोग कहते हैं कि तीस वर्ष की अवधि तो बहुत बड़ी है। वे सम्भवतः यह नहीं सोचते कि तीन मुख्य कारण हैं जिन पर उन्नति निर्भर है—शिक्षित कार्यकर्ता, पुस्तकालय भवन तथा प्रत्येक विषय और प्रत्येक भारतीय भाषा की आधुनिक एवं प्रामाणिक पुस्तकें। इसके बाद अर्थव्यवस्था भी है। जब इसकी बात प्रारम्भ होती है तो लोग कुछ और ही कहने लगते हैं। वे कहते हैं कि मेरी योजना महत्वाकांक्षाओं से भरी हुई है। इसके विपरीत, इसे अधिक वास्तविक होना चाहिये। परन्तु हम भी इसके दोनों ओर नहीं जा सकते। मैंने अपनी योजना की अवधि तीस वर्ष इस विचार से रखी है कि उस समय तक देश में धन बढ़ जायगा। फलस्वरूप लोगों की कर देने की क्षमता भी बढ़ेगी, लोगों में ज्ञान उत्पन्न होना और परिश्रम करने की भावना भी उत्पन्न होगी। यह सब पुस्तकालय

१३५]

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

आन्दोलन के चलने से ही होगा। तीस वर्ष बाद यह आन्दोलन देश के वार्षिक बजट में से एक प्रतिशत अथवा इसके बराबर शिक्षा बजट का षष्ठ प्रतिशत प्राप्त कर लेगा और सारे देश में पुस्तकालयों की स्थापना पूर्णरूप से हो सकेगी। मैं यह अनुमान लगाता हूँ कि अगले तीस वर्षों में धीरे-धीरे राष्ट्रीय आय भी बढ़ जायगी। अतः पुस्तकालयों की संख्या में तथा जनशक्ति में भी विस्तार होगा। मगर यह भी अनुमान है कि तीस वर्ष की समाप्ति तक लोगों में पुस्तकालय स्वभाव बन जायगा तथा पुस्तकालय चेतना भी उत्पन्न हो जायगी। इस कारण पुस्तकालयों को वर्ष में सभी दिन कम से कम १५ई घंटे खुला रखना होगा—प्रातः ६.३० से रात्रि के १०.०० बजे तक। विश्व-युद्ध, राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक दंगों की घटनाओं के भटक के कारण मद्रास विश्वविद्यालय पुस्तकालय की उन्नति मन्द पड़ गई थी। इससे सिद्ध हो गया था कि इन घटनाओं के पूर्व हमारी जनता वर्ष के सभी दिन और दिन के सभी काम करने के घंटों में पुस्तकालय आने की इच्छुक थी। आज यह माना जाता है कि पुस्तकालय प्रणाली पुस्तकालयों के निम्नलिखित वर्गों को भी सम्मिलित करती है। नीचे सारणी में पुस्तकालयों की संख्या अलग-अलग तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की कुल संख्या दीखे। ये संख्याएं इस प्रकार हैं :

सारणी

पुस्तकालय प्रकार	तीस वर्ष बाद	
	कुल संख्या	कर्मचारियों की कुल संख्या
(१) लिब्राशीन अर्थात् चलते फिरते पुस्तकालय जो एक पक्ष में एक बार ३,३०,००० प्रतिपादित स्थानों पर जाएंगे तथा ३३,००,००,००० ग्रामीण जनता की आवश्यकता पूर्ति करेंगे जो ५०,००० ग्रामों तथा ६,००,००० उपग्रामों में बसी हुई है।	१६,५००	३३,०००
(२) शाखा पुस्तकालय जो १,००,००० से कम जनसंख्या वाले उपनगरों के लिए होंगे।	४,५००	१४,०००
(३) ग्रामीण पुस्तकालय जो लिब्राशीन तथा उप-नगरों में स्थित शाखा पुस्तकालयों की आवश्यकता पूर्ति करेंगे।	५००	५,०००

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता

[१३५]

(४) केन्द्रीय नगर पुस्तकालय जो १,००,००० से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में ४,४०,००,००० नागरिकों की आवश्यकता पूर्ति करेंगे।	२५०	२,५००
(५) नगर शाखा पुस्तकालय।	६००	१५,०००
(६) राज्य केन्द्रीय पुस्तकालय।	१८	६००
(७) राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय।	१	१,०००
(८) विश्वविद्यालय पुस्तकालय।	५०	२,०००
(९) कालेज पुस्तकालय।	१,०००	५,०००
(१०) सेकेंडरी स्कूल पुस्तकालय।	५०,०००	१,५०,०००
(११) माध्यमिक तथा प्राथमिक स्कूल पुस्तकालय।	३,००,०००	३०,०००
(१२) सरकारी विभागीय पुस्तकालय।	२,०००	१५,०००
(१३) औद्योगिक पुस्तकालय।	२,०००	१४,५००
(१४) वाणिज्य पुस्तकालय।	५००	३,०००
(१५) समाचारपत्र पुस्तकालय।	५००	३,०००
(१६) विशेष पुस्तकालय, विशेष वर्गों तथा रोगियों, बन्धियों तथा नेत्रहीनों के लिए।	१,०००	३,०००
(१७) विशेष पुस्तकालय, विदेशों में सूचना-सेवा के लिए	५०८	१००
(१८) विशेष पुस्तकालय, विद्वत् संस्थाओं, राजनीतिक दलों तथा क्लबों के लिए	५००	१,०००

कुल अनुमानित संख्या — ३,००,०००

आजकल पुस्तकालय व्यवसाय में प्रशिक्षित कर्मचारी ५,००० से भी कम हैं। तीस वर्षों में यह संख्या ३,००,००० तक पहुँच जायगी और तब सभी प्रकार के पुस्तकालयों में संतोषप्रद उन्नति हो सकेगी। नियोजित विकास की अवस्था में, एक राष्ट्र को प्रतिवर्ष लगभग १०,००० पुस्तकाध्यक्ष प्रशिक्षित करने चाहिएं। ऐसा करने से तीस वर्ष में पूर्ण शक्ति जुटाई जा सकेगी। फिर अवकाश प्राप्त कर्मचारियों का स्थान भरने के लिए भी योग्य व्यक्ति चाहियें। इधर १०,००० पुस्तकाध्यक्षों को प्रतिवर्ष प्रशिक्षण देने के लिए पुस्तकालय-विज्ञान के ३०० अध्यापकों की भी आवश्यकता होगी किन्तु एक वर्ष में इतने सारे अध्यापकों का प्रशिक्षण संभव नहीं। संभवतः ३० अध्यापक प्रतिवर्ष प्रशिक्षित हो सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि

दस वर्ष बाद ही अध्यापकों की संख्या पूरी हो सकती है और प्रशिक्षित पुस्तकाध्यक्षों की वार्षिक संख्या ११ वर्ष बाद १०,००० हो सकती है। यह तभी हो सकता है जब यह योजना सुचारु रूप से कार्यान्वित होने लगे। इस बीच के समय में प्रति वर्ष प्रशिक्षण बहुत छोटी संख्या में ही हो सकता है। मैं इस योजना के कार्यरूप के विस्तार में नहीं जाना चाहता। इसका पूर्ण विवरण आपको आर्थिक और निर्माण सम्बन्धी कार्यक्रमों के साथ मेरी पुस्तक लाइब्रेरी डेवलपमेंट प्लान में मिलेगा। १०,००० प्रशिक्षित पुस्तकाध्यक्षों में लगभग ३०० तो वे स्नातक होने ही चाहिएं जो प्रशिक्षण के तीन महीनों में शीघ्र-पाठ्यक्रम पूर्ण कर लें। तीन हजार स्नातक अध्यापन-डिप्लोमा के साथ होने चाहियें जो ६ महीने के प्रशिक्षण के बाद पुस्तकाध्यक्षता का सर्टिफिकेट प्राप्त करें। शेष ६,७०० में से लगभग ६,००० स्नातक होने ऐसे चाहियें जो एक वर्ष के पाठ्यक्रम के प्रशिक्षण के पश्चात् पुस्तकालय-विज्ञान में विश्वविद्यालय डिप्लोमा प्राप्त करें। लगभग ५५० को कला या विज्ञान के विषय में अच्छी प्राथमिक उपाधि मिलनी चाहिये। पुस्तकालय-विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि (पोस्टग्रेजुएट डिग्री) भी मिलनी चाहिए, जो डिप्लोमा के बाद एक वर्ष के प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त होती है। कम से कम १५० को तो उच्च प्रशिक्षण प्राप्त करने के योग्य होना ही चाहिए। इनमें उच्च एवं संगठित व्यक्तित्व होना चाहिए। कार्यकर्ताओं को पुस्तकालय विज्ञान में डाक्टर की उपाधि से युक्त होना चाहिए और इनमें अनुसंधान करने की योग्यता भी होनी चाहिए। इन्हीं लोगों को केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय और विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में संचालक नियुक्त करना चाहिए। पुस्तकालय-विज्ञान का विकास और मापदंड उनके प्रारंभिक विचारों और संचालन रीति पर ही निर्भर होगा। इनमें सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ही राष्ट्रीय पुस्तकाध्यक्ष होगा। उसका व्यक्तित्व समस्त राष्ट्र के पुस्तकालय कर्मचारियों को प्रभावित कर सकेगा और वही भारत के पुस्तकालय व्यक्तित्वों का प्रतिनिधित्व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में करेगा।

१४. विस्तार

पुस्तकालय-विज्ञान के क्षेत्र के विस्तार में सुचारु पुस्तकालय सेवा इस कारण बढ़ जाती है क्योंकि कुल ३,००,००० पुस्तकालय जन-शक्ति के एक छोर पर हमको ६०,००० व्यक्ति बिल्कुल साधारण कार्यों के लिए चाहिएं जिन्हें छोटे पुस्तकालयों के नित्य कार्यक्रम का ज्ञान अपेक्षित होगा। इसके साथ ४,५०० योग्य व्यक्ति होंगे जो प्रतिनिधित्व के कार्य को दूरदर्शिता एवं योग्यता के साथ करेंगे।

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता [९५

इनमें से थोड़े से ही विशिष्ट व्यक्ति होंगे जिनका अधिकतम समय पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसंधान में लगेगा।

९५. पुस्तकालय-विज्ञान और राष्ट्रीय चेतना

ये तथ्य और संख्याएं, जिनकी रूप रेखा मैंने आपको दिखाई, कई बार ध्यान से निकल जाते हैं। इधर भारत में पुस्तकालय निर्माण की योजनाएं जो समाज की कितनी ही आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती हैं, उनका अनुभव शायद ही कभी होता है। किन्तु क्या हम दीर्घकाल तक इसकी उपेक्षा वास्तव में कर सकते हैं? क्या हमें यह अनुभव नहीं करना चाहिए कि ये तथ्य केवल तीस वर्षों की उन्नति का कार्यक्रम ही प्रस्तुत नहीं करते वरन् उस दूरी को भी तय कर जाते हैं जिसे हमें एक राष्ट्र की ही तरह तय करना है और हमें विश्व में प्रगतिशील राष्ट्रों का उन्नतिशील मार्ग अपनाने में समर्थ होना है? क्या हम यह कह सकते हैं कि स्वाधीन भारत की कोई अभिलाषा नहीं? फिर क्या हम यह नहीं चाहते कि हमारी विभिन्न राष्ट्रीय विकास योजनाएं—शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक—जिन्हें हमें विकसित करना है, उनको पूरा नहीं किया जाय और उनके सफल उद्देश्यों को व्यर्थ रहने दिया जाय? निस्सन्देह हमें बहुत कुछ करना है, किन्तु क्या हमने हानि से बचने का उपाय सोच लिया है? वे तथ्य और संख्याएं, जो आपके सामने रख चुका हूं, उस कार्य को इस प्रकार पूर्ण करते हैं कि हम राष्ट्रीय हानि को विल्कुल घटा या हटा सकते हैं। प्रगतिशील देशों की पुस्तकालय प्रणालियां जड़े हुए बहुमूल्य गहने तो नहीं? फिर भी वे सब असम्बद्ध हैं और शक्ति के वे कार्यशील भाग हैं जिनसे उन्हें अपने ध्येय की प्राप्ति होती है। ये प्रणालियां केवल कल्पना में तैरकर नहीं आईं। ये तो आवश्यकता की कठोर मांगों के बाद अपने रूप में आईं क्योंकि प्रजातंत्र के कारण सामाजिक दबाव कभी हटाया नहीं जा सकता और प्रतिस्पर्धी संसार में निपुणता की आवश्यकताओं को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पुस्तकालय सेवा में राष्ट्रीय कार्यों के साथ आत्मीय सम्बन्ध के जुड़े हुए तारतम्य ने राष्ट्रीय क्षमता की रुकावटों को हटाने में प्रत्येक दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, और सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन को अनुप्रेरित भी किया है। किन्तु यह, सब कुछ तो नहीं है। जीवन की योजना और इतिहास की योजना बनाना तो मूर्खता है और एक भयानक खेल भी। विशेषरूप से यदि योजना विकास के अवश्यम्भावी सिद्धान्तों को अस्वीकार करती है और ऐतिहासिक अनुभवों के सूक्ष्म और आवश्यक तत्वों को कुछ समय के लिए अलग रख देती है। आज

हम योजना के युग में रह रहे हैं। अतः हमें योजना कुदृष्टि से बनानी चाहिए। जो योजनाएं मुख्य परिणामों को नहीं ला सकतीं वे जीवन के सूक्ष्म तत्वों को भी नहीं पकड़ सकतीं (विशेषतः जिनमें मनुष्यमात्र को नाश करने के बीज होते हैं)। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, हमें वह गलती नहीं करनी चाहिए कि हमारे बच्चे और उनके बच्चों के बच्चे जिसका फल भुगतें। जिस समाज में प्रत्येक सदस्य को उस समाज की प्रतिपादित योजना द्वारा सुख नहीं मिलता, वह समाज इतिहास के हाथों कष्ट ही भुगतेंगा। जो पुस्तकालय-कार्यक्रम मैंने आपके सामने प्रस्तुत किया है वह नियोजित जीवन में ऐसे ही दुष्परिणामों से आपकी रक्षा करेगा। क्या अब भी आप इसके आशय एवं आवश्यकता पर ध्यान नहीं देंगे? याद रखिये कि पुस्तकालय योजना की सफलता, अन्य योजनाओं की भांति, उसकी विशेषता और प्रशिक्षित कर्मचारी शक्ति पर निर्भर है। तकनीक, ज्ञान और पुस्तकालय व्यवस्था का उद्देश्य ही पुस्तकालय-विज्ञान का क्षेत्र निर्माण करता है। आइये हम इसका श्रद्धापूर्वक अनुसरण करें। इसका एक साथ गुणगान करें। ऋग्वेद मंत्रों का उच्चारण करके हम इसके अनुसरण से अपने मन को पवित्र एवं शुद्ध बनाएं:

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

समानो मन्त्रः समीतिः समानी समानं मनः सह चित्तमेवाम्॥

समानी य आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो वः सुसहासति॥

साथ मिलकर चलो, साथ मिल कर कहां, भली-भांति जानो।

एक होकर प्रार्थना करो, तुम में एकता तथा ज्ञान हो।

तुम्हारा अभिप्राय एक हो, तुम्हारी भावनाएं अनुरूप हों।

तुम्हारे विचार एकाग्र हों तथा तुममें पूर्ण एकता हो।

शब्द परिचय

अपर-पुस्तकालय-विज्ञान	Meta-Library science
अस्पताल पुस्तकालय	Hospital library
अभ्यागत पुस्तकाध्यक्ष	Visiting librarian
अप्रत्यक्ष समय	Subjective time
अधिकार चिह्न	Make of ownership
अभिलेख पुस्तकालय	Archival library
अनुरक्षा विभाग	Maintenance section
अनुवादक	Translator
अंक	Number
अंक (पत्रिका का)	Issue (of a periodical)
अंकन	Tooling
अन्तर पुस्तकालय लेन-देन	Inter-library loan
अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तकाध्यक्ष	International librarian
आरंभ पृष्ठ	Preliminary pages
उपग्राम	Hamlet
उपनगर पुस्तकालय	Town library
एकीकृत सूचीपत्र	Cumulative index
औद्योगिक पुस्तकालय	Industrial library
कपड़ा उद्योग पुस्तकालय	Textile library
कागज	Paper
कागज जैकेट	Paper jacket
कालेज पुस्तकालय	College library
कृत्रिम पुस्तक	Dummy book
क्रमकरण	Accessioning
क्रमकार्य	Accession work
क्रम रजिस्टर	Accession register
क्रमसंख्या	Serial number
क्रमिकसंख्या	Ordinal number
क्रमांक	Accession number

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

कांग्रेस वर्गीकरण	Congress classification
खण्ड	Volume
गतिशील निरंतरता	Dynamic continuum
ग्राम पुस्तकालय	Village library
ग्रामीण पुस्तकालय	Rural library
चलता फिरता पुस्तकालय	Librachine, i.e. Travelling library
छोटी पत्रिका	Pamphlet
जिल्दबंदी	Binding
जिल्दबंद खण्ड	Bound volume
जिला पुस्तकालय	District library
टाइप	Type
टाइप आकार	Type size
टाइप ढालना	Type casting
टाइप रूप	Type face
टीकाकार	Commentator
निरंतरता	Continuum
तक्नीकी	Technical
तिथिपत्र	Date sheet
तिथि लेबुल	Date label
तैयारी	Preparation work
दीर्घकालीन संदर्भ सेवा	Long-range reference service
द्विविन्दु वर्गीकरण	Colon classification
देय दिनांक	Due date
नगर पुस्तकालय	City library
नाविक पुस्तकालय	Seafarer's library
अंध पुस्तकालय	Library for the blind
पढ़ने का स्वभाव	Reading habit
परिगणन पुस्तक सूची	Enumerative bibliography
परिशिष्ट	Supplement
परिसन्दर्भ प्रविष्टि	Cross reference entry
परीक्षण पुस्तिका	Observation notebook

शब्द परिचय

पत्रक	Leaflet
पत्रिका कार्य	Periodical work
पाठक	Reader
पाठ्य सामग्री	Reading material
पुस्तक आदेश	Book order
पुस्तक कक्ष	Stock room
पुस्तक कार्ड	Book card
पुस्तक चुनाव	Book selection
पुस्तक जेब	Book pocket
पुस्तक ट्राली	Book trolley
पुस्तक पीठिका	Spine of the book
पुस्तक भंडार	Book stock
पुस्तक माला	Series (of books)
पुस्तक मेला	Book fair
पुस्तक रैक	Book rack
पुस्तक लेबुल	Book label
पुस्तक व्यवस्था	Book arrangement
पुस्तक सूची	Bibliography
पुस्तकांक	Book number
पुस्तक संग्रह	Book collection
पुस्तक प्रदर्शनी	Book exhibition
पुस्तकाध्यक्ष	Librarian
पुस्तकाध्यक्षता	Librarianship
पुस्तकालय आन्दोलन	Library movement
पुस्तकालय कोष	Library fund
पुस्तकालय चेतना	Library consciousness
पुस्तकालय जन-शक्ति	Library man-power
पुस्तकालय तकनीक	Library technique
पुस्तकालय परिपाटी	Library routine
पुस्तकालय फर्नीचर	Library furniture
पुस्तकालय भवन	Library building
पुस्तकालय व्यवसाय	Library profession

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

पुस्तकालय व्यवस्थापन	Library provision
पुस्तकालय वर्गीकरण	Library classification
पुस्तकालय विधान	Library legislation
पुस्तकालय-विज्ञान	Library science
पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त	Laws of library science
पुस्तकालय समिति	Library committee
पुस्तकालय सम्मेलन	Library conference
पुस्तकालय सामग्री	Library equipment
पुस्तकालय सूची	Library catalogue
पुस्तकालय सेवा	Library service
पुस्तकालय संगठन	Library organization
पुस्तकालय संचालन	Library administration
पुस्तकालय प्रचार	Library publicity
प्रचार कार्य	Publicity work
प्रतिपादित स्थान	Delivery station
प्रशिक्षित कर्मचारी	Trained staff
प्रशिक्षित पुस्तकाध्यक्ष	Trained librarian
प्रसार कार्य	Circulation work
प्रसार लेखा	Issue record
प्रस्तुत संदर्भ सेवा	Ready reference service
प्रत्यक्ष समय	Objective time
बन्दीगृह पुस्तकालय	Prison library
बाल पुस्तकालय	Children's library
भाग	Part or fascicule
मुखपृष्ठ	Title page
मुख्य प्रविष्टि	Main entry
मुद्रण	Printing
मुद्रणाधिकार नियम	Copyright Act
मुद्रणाधिकार पुस्तकालय	Copyright library
राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय	National central library
राष्ट्रीय चीनी पुस्तकालय	National sugar library
राष्ट्रीय दायक पुस्तकालय	National lending library

शब्द परिचय

राष्ट्रीय पटसन पुस्तकालय	National jute library
राष्ट्रीय पुस्तकालय	National library
लेखक	Author
लेनदेन का टेबुल	Issue counter
वर्गिक	Call number
वर्ग भाग	Classified part
वर्गीकरण	Classification
वर्ण भाग	Alphabetical part
वलय निर्देशक	Tier guide
वाचनालय	Reading room
वाणिज्य पुस्तकालय	Commercial library
वार्षिक पुस्तक	Year book
व्यावसायिक पुस्तकाध्यक्ष	Professional librarian
व्यावसायिक पुस्तकालय	Business library
विभागीय पुस्तकालय	Departmental library
विवरणात्मक पुस्तक सूची	Descriptive bibliography
विश्व पुस्तक सूची	Universal bibliography
विश्व पुस्तकालय केन्द्र	World library centre
विशेष पुस्तकालय	Special library
विश्वविद्यालय पुस्तकालय	University library
विषयक पुस्तक सूची	Subject bibliography
विषय विश्लेषक	Subject analytics
विषय सूची	Contents
शाखा पुस्तकालय	Branch library
शीर्षक	Title or Heading
श्रुत्क	Subscription
शैल्फ कार्य	Shelf work
शैल्फ निर्देशक	Shelf guide
शैक्षणिक पुस्तकालय	Academic library
शोध संस्थान पुस्तकालय	Research institution library
स्कूल पुस्तकालय	School library
स्वच्छंद प्रवेश	Open access

पुस्तकालय-विज्ञान की भूमिका

स्टाक रजिस्टर	Stock register
स्थानीय पुस्तकालय	Local library
स्थायी निरन्तरता	Static continuum
स्थूल पुस्तक सूची	Physical bibliography
स्वशिक्षा	Self-education
सत्त्व	Entity
सदस्य	Member
सदस्यता	Clientele
सम्पादक	Editor
सम्पूर्ण पुस्तक	Finished book
सम्पूर्ण सूची	Finished list
समयातीत	Overdue
समाचारपत्र पुस्तकालय	Newspaper office library
समीकरण (पुस्तकों का)	Assimilation (of books)
सहायक क्रम	Filiatory order
सामयिक पत्र	Periodical bulletin
सामान्यीकरण	Abstraction
सार्वजनिक पुस्तकालय	Public library
सूची	Catalogue
सूचीकरण	Cataloguing
सूचीकर्ता	Cataloguer
सूचीपत्र	Index
सूत्र	Formula
संकेत लेख	Notation
संगठन	Organization
संचालन	Administration
संदर्भ कार्य	Reference work
संदर्भ पुस्तकाध्यक्ष	Reference librarian
संदर्भ पुस्तकालय	Reference library
संदर्भ मूल्य	Reference value
संदर्भ सेवा	Reference service
संस्करण	Edition

अनुक्रमणिका

प्रत्येक प्रविष्टि के साथ का अंक सम्बन्धित अध्याय, खण्ड अथवा उपखण्ड सूचित करता है। शब्द-चिह्नों का प्रयोग इस प्रकार है :

वि. स.	—	विषय से सम्बन्धित
वि. क.	—	विषय में कहा गया
वि. प.	—	विषय पर कहा गया

अखिल भारतीय पुस्तकालय सम्मेलन-६७	इम्पीरियल लाइब्रेरी-३११
अधिकारी परम्परा-६	उच्च शिक्षा संस्था-५१४
अणु-शक्ति-१४	उमर खय्याम-६५४
अपर-पुस्तकालय-विज्ञान-४	
अभिलेख पुस्तकालय-३६१	
अलबर्ट मन्सिंग्रिज-३१२	ऋग्वेद-६५
असम्बद्ध सूचनाएं-६१२	
अस्तव्यस्त-एकत्रीकरण-४४	एकत्रीकरण-अस्तव्यस्त-४४
अस्पताल पुस्तकालय-३५४	एडवर्ड जे. कार्टर-७४८
	एडवर्ड बी. रॉस-७०१
	एसप की लोमड़ी-१६
आइन्स्टाइन-१४	
आक्सफोर्ड-६५१	ऑद्योगिक पुस्तकालय
आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय-६५१	वि. स.
आनन्द-१५	पुस्तकालय-विज्ञान का
आमूवनन्याय-३११	कार्यक्षेत्र-३४१
इंग्लैण्ड	पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण
वि. स.	की आवश्यकता-६३११
देशीय धर्म-१४	कर्जन-३११

अनुक्रमणिका

कर्ट लीबन-६८
कर्मचारी, जिनकी भविष्य में
आवश्यकता होगी-६३५
कर्मचारी, जिनकी तुरन्त आवश्यकता

होगी-६३४

कर्मचारी-सूत्र-७५४

क्लासीफाइड कौटलाग कोड-८२३

काकाक्षिगोलकान्याय-३११

कागज बनाना-४२१

कार्ल पियर्सन

सांख्यिकी विश्लेषण-६७

वि. क.

सांख्यिकी विश्लेषण का

अनुसरण क्षेत्र-८१२

वि. प.

विज्ञान की सामग्री-६५

कांग्रेस पुस्तकालय-३११

दीखिये लाइब्रेरी आफ कांग्रेस

किरण, पहली-६१३

कै. आर. पौपर-३६२

केंद्रीकरण-७४८

कैन्सूट-६६

कैपलर-६२

कोलन क्लासिफिकेशन-८२३

दीखिए द्विबिन्दु-वर्गीकरण

कौवे की आंख की पुतली का

सिद्धान्त-३११

दीखिये काकाक्षिगोलकान्याय

क्रमकरण

वि. स.

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-३४४

पुस्तकालय-विज्ञान से

सम्बन्धित विषय-५६

क्राइस्ट चर्च कालेंज-११

क्रायडन

वि. प.

तीसरा सिद्धान्त-७३१

क्रायडन सार्वजनिक पुस्तकालय-६१३

गति का सिद्धान्त-६२

गणित

वि. स.

अन्य विषयों को बल देना-८१२

अनुसरण का क्षेत्र-८११

देशीय धर्म-१४

विज्ञान-६७

गांधी

वि. स.

देशीय धर्म-१४

बलिदान-६१२

भारत की सेवा-६११

गांधी जी का बलिदान-६१२

गैलीलियो-६८

ग्लासगो-७४२

वि. स.

घटना-७१२

ग्लैडस्टोन-६५१

ग्रामीण पुस्तकालय-३२३

ग्रेट ब्रिटेन-३११

घड़ी का वृत्तान्त-७४२

अनुक्रमणिका

चौथा सिद्धान्त-७४, ७५

ज्यामिति-६५

जयपुर सम्मेलन-६७

जर्मनी

वि. स.

द्वैतीय धर्म-१४

जान माले-६५१

जिल्दबन्दी-४३२

जीन्स-६६

जेनुंग-६६

जैवन्स-६५२

राउन्शेन्ड-५४३

टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फन्डामेंटल

साइन्सज-५१३

टाटा इन्स्टीट्यूट फार

सोशल वर्क-५१३

डारविन-१४

डिबेट इन द हाउस आफ

लार्ड्स-५४१

ड्यूयी

दोखिये मौल्वल ड्यूयी

वि. स.

द्वैतीय धर्म-१४

वि. प.

स्वार्थ-११

ड्रैपर्स कम्पनी रिसर्च

मैमायर्स-५१२

ताचो ब्राहे-६१४, ६२

तीसरा सिद्धान्त-७३

वि. स.

अर्थशास्त्रिक दृष्टिकोण-६६

पुस्तकालय-विज्ञान में

शाोध-६५, ५१४, ५२४

दूसरा सिद्धान्त-७२

वि. स.

वर्गीकरण-७२

दूसरे सिद्धान्त का समूहगान-७२१

द्वैतीय धर्म-१४

द्विविन्दु वर्गीकरण-७४५१

नगर पुस्तकालय-३२१

नगरीकरण-४४

नाविक पुस्तकालय-३५५

नार्वे-७४५

नेशनल लाइब्रेरी सिस्टम : ए प्लान

फार इन्डिया-६१३

न्यू इंगलिश डिक्शनरी-६५२

न्यू फाउन्डेशन आफ लाजिक-६३

न्यूटन-६२

पढ़ने का स्वभाव-७३२

पत्रिका कार्य

वि. स.

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-२४३

अनुक्रमणिका

पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित
विषय-५४२-६४२
परतयुक्त रचना-४४
सांख्यिक विश्लेषण-६७
पहला सिद्धान्त-७१

वि. स.

वर्गीकरण-७४५१
पहली किरण-६१३
पाठकों की ओर से दृष्टि-३
पाणिनी-१४
पोस्टवार रिकन्सट्रक्शन आफ
लाइब्रेरीज इन इन्डिया-६१३
पुस्तक की तैयारी

वि. स.

पुस्तकालय-विज्ञान का
कार्यक्षेत्र-२४४
पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित
विषय-५४२-६४२

पुस्तक चुनाव

वि. स.

दूसरा सिद्धान्त-७२३
पुस्तकालय-विज्ञान का
कार्यक्षेत्र-४२१
पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित
विषय-५४१

पुस्तक वर्ग संख्या-२५१

पुस्तक सूची

वि. स.

परिगणन-४२
स्थूल-४२
पुस्तकालय जन-शीलता-६३

पुस्तकालय फर्नीचर

वि. स.

पहला सिद्धान्त-७१३
पुस्तकालय-विज्ञान का
कार्यक्षेत्र-२१

पुस्तकालय भवन

वि. स.

पहला सिद्धान्त-७१४
पांचवा सिद्धान्त-७५३
पुस्तकालय-विज्ञान का
कार्यक्षेत्र-२१
पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित
विषय-५१

पुस्तकालय वर्गीकरण

वि. स.

चौथा सिद्धान्त-७४५
तीसरा सिद्धान्त-७४५३
दूसरा सिद्धान्त-७४५२
पुस्तकालय-विज्ञान का
कार्यक्षेत्र-२१
पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित
विषय-५१

पुस्तकालय विधान-७२२

पुस्तकालय-विज्ञान

वि. स.

अनुसरण का क्षेत्र-८
अनुसरण की आवश्यकता-६
अपर-पुस्तकालय-विज्ञान-४५
अस्पताल पुस्तकालय-३४५
इसका अस्तित्व-६
इसका निर्माण-५६१

अनुक्रमणिका

इसकी समस्याओं का

सारांश-२६

इसके सिद्धान्त-७

इसके क्षेत्र का विस्तार-२५

इससे सम्बन्धित विषय-५

कागज बनाना-२८

क्रमकरण-२८

गणित-६७

ग्रामीण पुस्तकालय-३२२

ज्यामिति-६८

जिल्दबन्दी-४२२, ४२३

देशीय धर्म-१४

नगर पुस्तकालय-३२१

नाविक पुस्तकालय-३५५

नेत्रहीन या अन्ध

पुस्तकालय-३५६

परिगणन पुस्तक सूची-४३

पत्रिका कार्य-२४३

पुरुषार्थ-१७

पुस्तक-४२४

पुस्तक आदेश-२४२

पुस्तक चुनाव-२४१

पुस्तक विवरण-४२५

पुस्तकालय संगठन-४१

पुस्तकों की तैयारी-२४५

प्रचार-२७२

प्रमाद-१३

प्रसार कार्य-२६

फनीचर-२१

बन्दीगृह पुस्तकालय-३५३

बाल पुस्तकालय-३५१

भवन-२१

मितव्ययिता-८५

मुक्ति-१५

राष्ट्रीय चेतना-६५

राष्ट्रीय पुस्तकालय-३११

वर्गीकरण-२५१

विभागीय पुस्तकालय-३४२

विशेष पुस्तकालय-३५

व्यक्तिगत सुधार-८४१

शक्ति-१८, ८२३

शैल्फ कार्य-२८

संतुष्टि-१६, ८२

सामाजिक सुधार-१८, ८४

सामूहिक सुख-१८

सूची-२२५

संदर्भ संवा-२७

स्थूल पुस्तक सूची-४२

स्वार्थ-११

ज्ञान क्षेत्र-४४

पुस्तकालय-विज्ञान का अस्तित्व-६

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र

वि. स.

पाठकगण-३

पुस्तकें-२

पुस्तकालय-विज्ञान का निर्माण-५६१

पुस्तकालय-विज्ञान का क्षेत्र-८

पुस्तकालय-विज्ञान की शक्ति

वि. स.

अनुसरण का क्षेत्र-८२३

मूल सिद्धान्त-१८

पुस्तकालय-विज्ञान की

विषय-सूची-८२

पुस्तकालय-विज्ञान की समस्याएं-२६ .

अनुक्रमणिका

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता-६	आदेश-२४१
पुस्तकालय-विज्ञान के पांच सिद्धान्त	पहला सिद्धान्त-७१२
वि. प.	पुनरुद्धार-७१३
विज्ञान के सिद्धान्तों की लघुता-६३१	पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-४२४
उत्पत्ति-७०, ५२	प्रदर्शन-७३४
पुस्तकालय-विज्ञान की विषय-सूची-५२	प्रदर्शनी-७११
वि. क.	विवरण-४२५
पुस्तकालय-विज्ञान के प्रति सन्देश-६३१	पुस्तकों की ओर से दृष्टि-२
पुस्तकालय-विज्ञान के पांच सिद्धान्तों की उत्पत्ति-७०	प्रचार
पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त-७	वि. स.
पुस्तकालय-विज्ञान में विशिष्ट-विषय-५	तीसरा सिद्धान्त-७३१
पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित तत्त्व-५	पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-२७२
पुस्तकालय साहित्य-६१२	पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित विषय-५७२
पुस्तकालय सूची	प्रजातन्त्र-७५१
वि. स.	प्रणाली की विभिन्नताएं-६११
पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-२५५	प्रत्यक्ष समय-७४२
पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त-७४६	प्रमोद-१३
पुस्तकालय-विज्ञान की शक्ति-५२३	प्रसार-कार्य
पुस्तकालय संगठन-४१	वि. स.
पुस्तकें	चौथा सिद्धान्त-७४४
वि. स.	पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-२६
	पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित विषय-५६
	प्रस्तुत संदर्भ सेवा-३४२
	प्रिस्टन-५१४
	प्रोलिगांमिना टु
	लाइब्रेरी साइन्स-५५३

अनुक्रमणिका

फनीचर

वि. स.

पहला सिद्धान्त-७१३

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-२१

फ्रांस-३११

बन्दीगृह पुस्तकालय-३५३

बम्बई विश्वविद्यालय-५२३

बकर्वैक-१२

बाल पुस्तकालय-३५१

बैम्बर्जर-५१४

देखिये लुई बैम्बर्जर

ब्रिटिश संग्रहालय पुस्तकालय-३११

देखिये ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी

ब्रेल पुस्तकें-३५६

भवन

वि. स.

पहला सिद्धान्त-७१४

पांचवां सिद्धान्त-७५३

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-२१

पुस्तकालय-विज्ञान से

सम्बन्धित विषय-५१

भारत की स्थिरता-६२

भारतीय परम्परा-१६

मद्रास-३५४

मद्रास पुस्तकालय संगम-७३२

मद्रास मेल-५२२

मद्रास विश्वविद्यालय-५२, ५२१

मद्रास विश्वविद्यालय पुस्तकालय

वि. स.

पांचवां सिद्धान्त-७५३

पुस्तकालय प्रणाली-६

वि. प.

पुस्तकालय-विज्ञान की

विषय-सूची-५२१, ५२२

मद्रास सरकार-७२२

माइन्ड-६३

मार्क पैटीसन-६५१

मानकीकरण-७४७

वि. स.

मानकीकरण का साधन-६१३

मानसिक विकास-५४१

मिर्जा इस्माइल-६७

मितव्ययिता-५५

मीमांसा-३११

मुद्रण-४२२

मुद्रणाधिकार नियम-४१

मुद्रणाधिकार पुस्तकालय-३१३

मूल सिद्धान्त-१५

मेमोरेण्डम आन द्

नेशनल सेंट्रल लाइब्रेरी-३११

मैलिक् ड्यूवी

वि. स.

देशीय धर्म-१४

स्वार्थ-११

मांक्ष-१५

मौरिस ग्वायर-१२

अनुक्रमणिका

युनाइटेड स्टेट्स इन्फार्मेशन	रूस-३११
सर्विस-७१३	रंगनाथन्
युनिवर्सिटी कालेज	देखिये
वि. स.	क्लासिफाइड कैंटलाग कांड
पुस्तकालय खुलने के घंटे-६११	कोलन क्लासिफिकेशन
पढ़ाने का ढंग-६१२	नेशनल लाइब्रेरी सिस्टम-
युनेस्को-४१	ए प्लान फार इन्डिया
यूरेंस-६२	प्रोलिगोमिना टु लाइब्रेरी
	क्लासिफिकेशन
	फाइव लाज आफ
	लाइब्रेरी साइन्स
	मेमोरेन्डम आन द नेशनल
	सेन्ट्रल लाइब्रेरी
रामानुजन्	
वि. स.	
विज्ञान का क्षेत्र-६३२	
शाोध-५१४	
रामायण-२	
राष्ट्र	
वि. स.	लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन
पुस्तकालय-विज्ञान-५५४	लाइब्रेरी डेवलपमेंट प्लान
धर्म-१५	स्कूल एण्ड कालेज
राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय	लाइब्रेरीज
वि. स.	लय-१५
पुस्तकालय-विज्ञान का	लाइब्रेरी आफ कांग्रेस-३११
कार्यक्षेत्र-३११	लाइब्रेरी एडमिनिस्ट्रेशन
भवन-७५	वि. प.
राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय पर	पुस्तकालय-विज्ञान का
स्मरण पत्र-३११	प्रसंग-५२३
देखिये मेमोरेन्डम आन द	पुस्तकालयों की शक्ति-५३३
नेशनल सेन्ट्रल लाइब्रेरी	लाइब्रेरी क्वार्टर्ली-५५२
राष्ट्रीय चेतना-६५	लाइब्रेरी डेवलपमेंट प्लान-६३५
राष्ट्रीय दायक पुस्तकालय-३१२	लाइब्रेरी डेवलपमेंट प्लान विद् ए
राष्ट्रीय पुस्तकाध्यक्ष-६३५	इफ्ट लाइब्रेरी बिल फार बाम्बे-६१३
रिसर्च डिग्री-५५२	लाइब्रेरी ला-६३१
	देखिये पुस्तकालय विधान

अनुक्रमणिका

लुई वेम्बर्जर-८१४

लेनदेन कार्य की रीति

वि. स.

चौथा सिद्धान्त-७४४

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-२६

पुस्तकालय-विज्ञान से

सम्बन्धित विषय-५६

वर्कर्स एज्यूकेशनल

एसोशियेशन-३१२

वर्गीकरण

चौथा सिद्धान्त-७४५

तीसरा सिद्धान्त-७४५३

दूसरा सिद्धान्त-७४५२

पहला सिद्धान्त-७४५१

वि. स.

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-२५१

पुस्तकालय-विज्ञान से

सम्बन्धित विषय-५४२-५५५

वर्गीकरण प्रणाली-७४५१

वरुण-६२

वाणिज्य पुस्तकालय

वि. स.

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-३४५

पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसार

की आवश्यकता-६३१५

वाल्मीकि-२

विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय केन्द्रीय

पुस्तकालय-६१३

विभागीय पुस्तकालय

वि. स.

पुस्तकालय-विज्ञान का

कार्यक्षेत्र-३४८

पुस्तकालय-विज्ञान की

आवश्यकता-६३१२

विशेष पुस्तकालय-३५

विश्व पुस्तकालय केन्द्र-४१

विज्ञान

वि. स.

अध्ययन सामग्री-६५

गणित सम्बन्धी व्यवहार-६७

ढंग-६४

विज्ञान का सौदा-८१३

विज्ञान का स्तर-६४२

विज्ञान की प्रणाली-६६

विज्ञान की सामग्री-६५

विज्ञान के सिद्धान्त-६१, ६२

वि. स.

लघुता-६३

वैज्ञानिक दृष्टिकोण-६६

शिवास्वामी अय्यर

वि. क.

पुस्तकालय-विज्ञान का

अस्तित्व-६३२

पुस्तकालय-विज्ञान की

विषय-सूची-८२

शिक्षा निदेशक-७३२

शैल्य कार्य

वि. स.

अनुक्रमणिका

पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-२५	सामूहिक कल्याण-५४
पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित विषय-५५	सामूहिक सुख-१२
शैक्षणिक पुस्तकालय वि. स.	सार्वजनिक पुस्तकालय वि. स.
पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-३३	पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-३२२
पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता-६३२	पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता-६३३
शांघ का मनाविज्ञान-५१४	सिद्धान्तों की लघुता-६३
	सी. आर. सन्डरसन-६३१
	सूची वि. स.
समाचारपत्र पुस्तकालय वि. स.	पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-२५५
पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-३४२	पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्त-७४६
पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसरण की आवश्यकता-६३१२	पुस्तकालय-विज्ञान के सिद्धान्तों की शक्ति-५२३
समूहगान-७२१	सूक्ष्म परीक्षण-४४
देखिये दूसरे सिद्धान्त का समूहगान	सासाइटी फार द डिफ्यूजन आफ यूजफुल नालेज-१२
सम्बन्धित समस्याएं	संदर्भ पुस्तकाध्यक्ष-७४१
सर्वप्रधान स्वच-५४३	संदर्भ सेवा
वि. स.	चौथा सिद्धान्त-७४
पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-४	पहला सिद्धान्त-७१३
पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित विषय-५६	वि. स.
सरलीकरण-७४७	पुस्तकालय-विज्ञान का कार्यक्षेत्र-२६
साउथ इन्डिया टीचर्स यूनिशन-५२	पुस्तकालय-विज्ञान से सम्बन्धित विषय-५७
सामग्री-५१	संयुक्त राज्य अमेरिका वि. स.

अनुक्रमणिका

देशीय धर्म-१४	स्थानीय पुस्तकालय-४१
पुस्तकालय-विज्ञान में	स्थूल पुस्तक सूची-४२
डाक्टरेट-८६	स्पेशल लाइब्रेरीज एसोसियेशन-४१
पुस्तकालय-विज्ञान में	स्वार्थ-६८
शोध-८३	स्वाधीनता
राष्ट्रीय पुस्तकालय-३११	वि. स.
संवारना-४४	तीसरा सिद्धान्त-७३५
स्कूल एण्ड कालेज	
लाइब्रेरीज-७३२	
स्कूल पुस्तकालय-३५१	हनुमान-२



Entered in Database

Signature with Date

